"અહો ! શ્રુતજ્ઞાનમ્" ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર ૧૭૫

મુહૂર્ત ચિંતામણિ સટીક

: દ્રવ્ય સહાયક :

પૂ. આ. શ્રી પ્રેમ-ભુવનભાનુસૂરીશ્વરજી મ.સા.ના સમુદાયના
દીક્ષા દાનેશ્વરી પૂ. આ. શ્રી ગુણરત્નસૂરીશ્વરજીના આજ્ઞાવર્તિની
પ્રવર્તિની સાધ્વી શ્રી પુણ્યરેખાશ્રીજી મ.સા.ની શિષ્યા
પૂ. સાધ્વી શ્રી રક્ષિતરેખાશ્રીજી મ.સા.ની પ્રેરણાથી
શ્રી અર્બુદગિરિ સોસાયટીની આરાધક શ્રાવિકાઓના
સં. ૨૦૬૮ ના ચાતુર્માસની જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી

: સંયોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા
શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર
શા. વિમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-૫
(મો.) 9426585904 (ઓ.) 22132543

સંવત ૨૦૬૯ ઈ. ૨૦૧૩

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६५ (ई. 2009) सेट नं.-१

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रमांक	पुस्तकनुं नाम	कर्त्ता-टीकाकार-संपादक	पृष्ठ
001	श्री नंदीसूत्र अवचूरी	पू. विक्रमसूरिजी म.सा.	238
002	श्री उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णी	पू. जिनदासगणि चूर्णीकार	286
003	श्री अर्हद्गीता-भगवद्गीता	पू. मेघविजयजी गणि म.सा.	84
004	श्री अर्हच्चूडामणि सारसटीकः	पू. भद्रबाहुस्वामी म.सा.	18
005	श्री यूक्ति प्रकाशसूत्रं	पू. पद्मसागरजी गणि म.सा.	48
006	श्री मानतुङ्गशास्त्रम्	पू. मानतुंगविजयजी म.सा.	54
007	अपराजितपृच्छा	श्री बी. भट्टाचार्य	810
008	शिल्प स्मृति वास्तु विद्यायाम्	श्री नंदलाल चुनिलाल सोमपुरा	850
009	शिल्परत्नम् भाग-१	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	322
010	शिल्परत्नम् भाग-२	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	280
011	प्रासादतिलक	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	162
012	काश्यशिल्पम्	श्री विनायक गणेश आपटे	302
013	प्रासादमञ्जरी	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	156
014	राजवल्लभ याने शिल्पशास्त्र	श्री नारायण भारती गोंसाई	352
015	शिल्पदीपक	श्री गंगाधरजी प्रणीत	120
016	वास्तुसार	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	88
017	दीपार्णव उत्तरार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	110
018	જિનપ્રાસાદ માર્તણ્ડ	શ્રી નંદલાલ ચુનીલાલ સોમપુરા	498
019	जैन ग्रंथावली	श्री जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रन्स	502
020	હીરકલશ જૈન જ્યોતિષ	શ્રી હિમ્મતરામ મહાશંકર જાની	454
021	न्यायप्रवेशः भाग-१	श्री आनंदशंकर बी. ध्रुव	226
022	दीपार्णव पूर्वार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	640
023	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-१	पू. मुनिचंद्रसूरिजी म.सा.	452
024	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-२	श्री एच. आर. कापडीआ	500
025	प्राकृत व्याकरण भाषांतर सह	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	454
026	तत्त्पोपप्लवसिंहः	श्री जयराशी भट्ट, बी. भट्टाचार्य	188
027	शक्तिवादादर्शः	श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री	214
028	क्षीरार्णव	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	414
029	वेधवास्तु प्रभाकर	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	192

030	**शिल्परत्नाकर**	**श्री नर्मदाशंकर शास्त्री**	**824**
031	**प्रासाद मंडन**	**पं. भगवानदास जैन**	**288**
032	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-१**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**520**
033	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-२**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**578**
034	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-३ (१)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**278**
035	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-3 (२) (३)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**252**
036	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-५**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**324**
037	વાસ્તુનિઘંટુ	પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા	302
038	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૧	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	196
039	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૨	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	190
040	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૩	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	202
041	સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યમ્	પૂ. વિજયઅમૃતસૂરિશ્વરજી	480
042	સપ્તભઙ્ગીમિમાંસા	પૂ. પં. શિવાનન્દવિજયજી	228
043	ન્યાયાવતાર	સતિષચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ	60
044	વ્યુત્પત્તિવાદ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	218
045	સામાન્યનિર્યુક્તિ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	190
046	સપ્તભઙ્ગીનયપ્રદીપ બાલબોધિનીવિવૃત્તિઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	138
047	વ્યુત્પત્તિવાદ શાસ્ત્રાર્થકલા ટીકા	શ્રીવેણીમાધવ શાસ્ત્રી	296
048	નયોપદેશ ભાગ-૧ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	210
049	નયોપદેશ ભાગ-૨ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	274
050	ન્યાયસમુચ્ચય	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	286
051	સ્યાદ્યાર્થપ્રકાશઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	216
052	દિન શુદ્ધિ પ્રકરણ	પૂ. દર્શનવિજયજી	532
053	બૃહદ્ ધારણા યંત્ર	પૂ. દર્શનવિજયજી	113
054	જ્યોતિર્મહોદય	સં. પૂ. અક્ષયવિજયજી	112

શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર

સંયોજક – બાબુલાલ સરેમલ શાહ

શાહ વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન

હીરાજૈન સોસાયટી, રામનગર, સાબરમતી, અમદાવાદ-૦૫.

(મો.) ૯૪૨૬૫૮૫૯૦૪ (ઓ) ૨૨૧૩૨૫૪૩ (ઇ-મેલ) ahoshrut.bs@gmail.com

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૬ (ઈ. ૨૦૧૦) – સેટ નં-૨

પ્રાયઃ જીર્ણ અપ્રાપ્ય પુસ્તકોને સ્કેન કરાવીને ડી.વી.ડી. બનાવી તેની યાદી.

આ પુસ્તકો www.ahoshrut.org વેબસાઇટ પરથી પણ ડાઉનલોડ કરી શકાશે.

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	ભાષા	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
055	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहद्न्यास अध्याय-६	सं	पू. लावण्यसूरिजी म.सा.	296
056	विविध तीर्थ कल्प	सं	पू. जिनविजयजी म.सा.	160
057	ભારતીય જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ અને લેખનકળા	ગુજ.	पू. पूण्यविजयजी म.सा.	164
058	सिद्धान्तलक्षणगूढार्थ तत्त्वलोकः	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	202
059	व्याप्ति पञ्चक विवृत्ति टीका	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	48
060	જૈન સંગીત રાગમાળા	ગુ.	श्री मांगरोळ जैन संगीत मंडळी	306
061	चतुर्विंशतीप्रबन्ध (प्रबंध कोश)	सं	श्री रसिकलाल एच. कापडीआ	322
062	व्युत्पत्तिवाद आदर्श व्याख्यया संपूर्ण ६ अध्याय	सं	श्री सुदर्शनाचार्य	668
063	चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी	सं	पू. मेघविजयजी गणि	516
064	विवेक विलास	सं/ગુ.	श्री दामोदर गोविंदाचार्य	268
065	पञ्चशती प्रबोध प्रबंध	सं	पू. मृगेन्द्रविजयजी म.सा.	456
066	सन्मतितत्त्वसोपानम्	सं	पू. लब्धिसूरिजी म.सा.	420
067	ઉપદેશમાલા દોઘટ્ટી ટીકા ગુર્જરાનુવાદ	ગુજ.	पू. हेमसागरसूरिजी म.सा.	638
068	मोहराजापराजयम्	सं	पू. चतुरविजयजी म.सा.	192
069	क्रियाकोश	सं/हिं	श्री मोहनलाल बांठिया	428
070	कालिकाचार्यकथासंग्रह	सं/ગુ.	श्री अंबालाल प्रेमचंद	406
071	सामान्यनिरुक्ति चंद्रकला कलाविलास टीका	सं.	श्री वामाचरण भट्टाचार्य	308
072	जन्मसमुद्रजातक	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	128
073	मेघमहोदय वर्षप्रबोध	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	532
074	જૈન સામુદ્રિકનાં પાંચ ગ્રંથો	ગુજ.	श्री हिम्मतराम महाशंकर जानी	376

075	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	374
076	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	238
077	સંગીત નાટ્ય રૂપાવલી	ગુજ.	**श्री विद्या साराभाई नवाब**	194
078	ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પસ્થાપત્ય	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	192
079	શિલ્પ ચિન્તામણિ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री मनसुखलाल भुदरमल**	254
080	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	260
081	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	238
082	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૩	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	260
083	આયુર્વેદના અનુભૂત પ્રયોગો ભાગ-૧	ગુજ.	**पू. कान्तिसागरजी**	114
084	કલ્યાણ કારક	ગુજ.	**श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री**	910
085	**विश्वलोचन कोश**	सं./हिं	**श्री नंदलाल शर्मा**	436
086	કથા રત્ન કોશ ભાગ-1	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	336
087	કથા રત્ન કોશ ભાગ-2	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	230
088	હસ્તસઞ્જીવનમ્	સં.	**पू. मेघविजयजीगणि**	322
089	ઐન્દ્રચતુર્વિંશતિકા	સં.	**पू.यशोविजयजी, पू. पुण्यविजयजी**	114
090	સમ્મતિ તર્ક મહાર્ણવાવતારિકા	સં.	**आचार्य श्री विजयदर्शनसूरिजी**	560

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६७ (ई. 2011) सेट नं.-३

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्ता / टीकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
91	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-१	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाधाजी पुना	272
92	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-२	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाधाजी पुना	240
93	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-३	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाधाजी पुना	254
94	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-४	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाधाजी पुना	282
95	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-५	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाधाजी पुना	118
96	पवित्र कल्पसूत्र	पुण्यविजयजी	सं./अं	साराभाई नवाब	466
97	समराङ्गण सूत्रधार भाग-१	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	342
98	समराङ्गण सूत्रधार भाग-२	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	362
99	भुवनदीपक	पद्मप्रभसूरिजी	सं.	वेंकटेश प्रेस	134
100	गाथासहस्त्री	समयसुंदरजी	सं.	सुखलालजी	70
101	भारतीय प्राचीन लिपीमाला	गौरीशंकर ओझा	हिन्दी	मुन्शीराम मनोहरराम	316
102	शब्दरत्नाकर	साधुसुन्दरजी	सं.	हरगोविन्ददास बेचरदास	224
103	सुबोधवाणी प्रकाश	न्यायविजयजी	सं./गु	हेमचंद्राचार्य जैन सभा	612
104	लघु प्रबंध संग्रह	जयंत पी. ठाकर	सं.	ओरीएन्ट इन्स्टीट्युट बरोडा	307
105	जैन स्तोत्र संचय-१-२-३	माणिक्यसागरसूरिजी	सं,	आगमोद्धारक सभा	250
106	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-१,२,३	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	514
107	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-४,५	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	454
108	न्यायसार – न्यायतात्पर्यदीपिका	सतिषचंद्र विद्याभूषण	सं.	एसियाटीक सोसायटी	354
109	जैन लेख संग्रह भाग-१	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	337
110	जैन लेख संग्रह भाग-२	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	354
111	जैन लेख संग्रह भाग-३	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	372
112	जैन धातु प्रतिमा लेख भाग-१	कांतिविजयजी	सं./हि	जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार	142
113	जैन प्रतिमा लेख संग्रह	दौलतसिंह लोढा	सं./हि	अरविन्द धामणिया	336
114	राधनपुर प्रतिमा लेख संदोह	विशालविजयजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	364
115	प्राचिन लेख संग्रह-१	विजयधर्मसूरिजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	218
116	बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचंद नाहटा	सं./हि	नाहटा ब्रधर्स	656
117	प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-१	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	122
118	प्राचिन जैन लेख संग्रह भाग-२	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	764
119	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-१	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
120	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-२	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
121	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-३	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	540
122	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-१	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	274
123	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-४	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	414
124	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-५	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	400
125	कलेक्शन ऑफ प्राकृत एन्ड संस्कृत इन्स्क्रीप्शन्स	पी. पीटरसन	अं.	भावनगर आर्चीऑलॉजीकल डिपा.	320
126	विजयदेव माहात्म्यम्	जिनविजयजी	सं.	जैन सत्य संशोधक	148

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६८ (ई. 2012) सेट नं.-४

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। ***यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।***

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	भाषा	प्रकाशक	पृष्ठ
127	महाप्रभाविक नवस्मरण	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	754
128	जैन चित्र कल्पलता	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	84
129	जैन धर्मनो प्राचीन इतिहास भाग-२	हीरालाल हंसराज	गुज.	हीरालाल हंसराज	194
130	ओपरेशन इन सर्च ओफ सं. मेन्यु. भाग-६	पी. पीटरसन	अंग्रेजी	एशियाटीक सोसायटी	171
131	जैन गणित विचार	कुंवरजी आणंदजी	गुज.	जैन धर्म प्रसारक सभा	90
132	दैवज्ञ कामधेनु (प्राचिन ज्योतिष ग्रंथ)	शील खंड	सं.	ब्रज. बी. दास बनारस	310
133	करण प्रकाशः	ब्रह्मदेव	सं./अं.	सुधाकर द्विवेदि	276
134	न्यायविशारद महो. यशोविजयजी स्वहस्तलिखित कृति संग्रह	यशोदेवसूरिजी	गुज.	यशोभारती प्रकाशन	69
135	भौगोलिक कोश-१	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	100
136	भौगोलिक कोश-२	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	136
137	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	266
138	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	244
139	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	274
140	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	168
141	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	282
142	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	182
143	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-१	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	384
144	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-२	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	376
145	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-३	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	387
146	भाषवति	शतानंद मारछता	सं./हि	एच.बी. गुप्ता एन्ड सन्स बनारस	174
147	जैन सिद्धांत कौमुदी (अर्धमागधी व्याकरण)	रत्नचंद्र स्वामी	प्रा./सं.	भैरोदान सेठीया	320
148	मंत्रराज गुणकल्प महोदधि	जयदयाल शर्मा	हिन्दी	जयदयाल शर्मा	286
149	फक्कीका रत्नमंजूषा-१, २	कनकलाल ठाकूर	सं.	हरिकृष्ण निबंध	272
150	अनुभूत सिद्ध विशायंत्र (छ कल्प संग्रह)	मेघविजयजी	सं./गुज	महावीर ग्रंथमाळा	142
151	सारावलि	कल्याण वर्धन	सं.	पांडुरंग जीवाजी	260
152	ज्योतिष सिद्धांत संग्रह	विश्वेश्वरप्रसाद द्विवेदी	सं.	ब्रीजभूषणदास बनारस	232
153	ज्ञान प्रदीपिका तथा सामुद्रिक शास्त्रम्	रामव्यास पान्डेय	सं.	जैन सिद्धांत भवन	160
	नूतन संकलन				
१	आ. चंद्रसागरसूरिजी ज्ञानभंडार – उज्जैन	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	
२	श्री गुजराती श्वे.मू. जैन संघ-हस्तप्रत भंडार – कलकत्ता	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६९ (ई. 2013) सेट नं.-५

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
154	उणादि सूत्रो ओफ हेमचंद्राचार्य	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	जोहन क्रिष्टे	304
155	उणादि गण विवृत्ति	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	पू. मनोहरविजयजी	122
156	प्राकृत प्रकाश-सटीक	भामाह	व्याकरण	प्राकृत	जय कृष्णदास गुप्ता	208
157	द्रव्य परिक्षा और धातु उत्पत्ति	ठक्कर फेरू	धातु	संस्कृत /हिन्दी	भंवरलाल नाहटा	70
158	आरम्भसिध्धि – सटीक	पू. उदयप्रभदेवसूरिजी	ज्योतीष	संस्कृत	पू. जितेन्द्रविजयजी	310
159	खंडहरो का वैभव	पू. कान्तीसागरजी	शील्प	हिन्दी	भारतीय ज्ञानपीठ	462
160	बालभारत	पू. अमरचंद्रसूरिजी	काव्य	संस्कृत	पं. शीवदत्त	512
161	गिरनार माहात्म्य	दौलतचंद परषोत्तमदास	तीर्थ	संस्कृत /गुजराती	जैन पत्र	264
162	गिरनार गल्प	पू. ललितविजयजी	तीर्थ	संस्कृत/गुजराती	हंसकविजय फ्री लायब्रेरी	144
163	प्रश्नोत्तर सार्ध शतक	पू. क्षमाकल्याणविजयजी	प्रकरण	हिन्दी	साध्वीजी विचक्षणाश्रीजी	256
164	भारतिय संपादन शास्त्र	मूलराज जैन	साहित्य	हिन्दी	जैन विद्याभवन, लाहोर	75
165	विभक्त्यर्थ निर्णय	गिरिधर झा	न्याय	संस्कृत	चौखम्बा प्रकाशन	488
166	व्योम वती-१	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत युनिवर्सिटी	226
167	व्योम वती-२	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत विद्यालय	365
168	जैन न्यायखंड खाद्यम्	उपा. यशोविजयजी	न्याय	संस्कृत /हिन्दी	बद्रीनाथ शुक्ल	190
169	हरितकाव्यादि निघंटू	भाव मिश्र	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	शीव शर्मा	480
170	योग चिंतामणि-सटीक	पू. हर्षकीर्तिसूरिजी	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	लक्ष्मी वेंकटेश प्रेस	352
171	वसंतराज शकुनम्	पू. भानुचन्द्र गणि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	खेमराज कृष्णदास	596
172	महाविद्या विडंबना	पू. भुवनसुन्दरसूरि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	सेन्ट्रल लायब्रेरी	250
173	ज्योतिर्निबन्ध	शिवराज	ज्योतिष	संस्कृत	आनंद आश्रम	391
174	मेघमाला विचार	पू. विजयप्रभसूरिजी	ज्योतिष	संस्कृत/गुजराती	मेघजी हीरजी	114
175	मुहूर्त चिंतामणि-सटीक	रामकृत प्रमिताक्षय टीका	ज्योतिष	संस्कृत	अनूप मिश्र	238
176	मानसोल्लास सटीक-१	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	166
177	मानसोल्लास सटीक-२	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	368
178	ज्योतिष सार प्राकृत	भगवानदास जैन	ज्योतिष	प्राकृत/हिन्दी	भगवानदास जैन	88
179	मुहूर्त संग्रह	अंबालाल शर्मा	ज्योतिष	गुजराती	शास्त्री जगन्नाथ परशुराम द्विवेदी	356
180	हिन्दु एस्ट्रोलोजी	पिताम्बरदास त्रीभोवनदास	ज्योतिष	गुजराती	पिताम्बरदास टी. महेता	168

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७१ (ई. 2015) सेट नं.-६

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची ।

यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं ।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
181	काव्यप्रकाश भाग-१	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	364
182	काव्यप्रकाश भाग-२	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	222
183	काव्यप्रकाश उल्लास-२ अने ३	उपा. यशोविजयजी		संस्कृत	यशोभारति जैन प्रकाशन समिति	330
184	नृत्यरत्न कोश भाग-१	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	156
185	नृत्यरत्न कोश भाग-२	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	248
186	नृत्याध्याय	श्री अशोकमलजी		संस्कृत /हिन्दी	श्री वाचस्पति गैरोभा	504
187	संगीरत्नाकर भाग-१ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	448
188	संगीरत्नाकर भाग-२ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	444
189	संगीरत्नाकर भाग-३ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	616
190	संगीरत्नाकर भाग-४ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	632
191	संगीत मकरन्द	नारद		संस्कृत	श्री मंगेश रामकृष्ण तेलंग	84
192	संगीत नृत्य अने नाट्य संबंधी जैन ग्रंथो	श्री हीरालाल कापडीया		गुजराती	मुक्ति-कमल-जैन मोहन ग्रंथमाला	244
193	न्यायबिंदु सटीक	पूज्य धर्मोतराचार्य		संस्कृत	श्री चंद्रशेखर शास्त्री	220
194	शीघ्रबोध भाग-१ थी ५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	422
195	शीघ्रबोध भाग-६ थी १०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	304
196	शीघ्रबोध भाग-११ थी १५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	446
197	शीघ्रबोध भाग-१६ थी २०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	414
198	शीघ्रबोध भाग-२१ थी २५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	409
199	अध्यात्मसार सटीक	पूज्य गंभीरविजयजी		संस्कृत/गुजराती	नरोत्तमदास भानजी	476
200	छन्दोनुशासन	एच. डी. वेलनकर		संस्कृत	सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ	444
201	मग्गानुसारिया	श्री डी. एस शाह		संस्कृत/गुजराती	ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ट्रस्ट	146

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७२ (ई. 201६) सेट नं.-७

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
202	आचारांग सूत्र भाग-१ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	285
203	आचारांग सूत्र भाग-२ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	280
204	आचारांग सूत्र भाग-३ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	315
205	आचारांग सूत्र भाग-४ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	307
206	आचारांग सूत्र भाग-५ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	361
207	सुयगडांग सूत्र भाग-१ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	301
208	सुयगडांग सूत्र भाग-२ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	263
209	सुयगडांग सूत्र भाग-३ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	395
210	सुयगडांग सूत्र भाग-४ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	386
211	सुयगडांग सूत्र भाग-५ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	351
212	रायपसेणिय सूत्र	श्री मलयगिरि	गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	260
213	प्राचीन तीर्थमाळा भाग-१	आ.श्री धर्मसूरि	सं./गुजराती	श्री यशोविजयजी ग्रंथमाळा	272
214	धातु पारायणम्	श्री हेमचंद्राचार्य	संस्कृत	आ. श्री मुनिचंद्रसूरि	530
215	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-१	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	648
216	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-२	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	510
217	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-३	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	560
218	तार्किक रक्षा सार संग्रह	आ. श्री वरदराज	संस्कृत	राजकीय संस्कृत पुस्तकालय	427
219	वादार्थ संग्रह भाग-१ (स्फोट तत्त्व निरूपण, स्फोट चन्द्रिका, प्रतिपादिक संज्ञावाद, वाक्यवाद, वाक्यदीपिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	88
220	वादार्थ संग्रह भाग-२ (षट्कारक विवेचन, कारक वादार्थ, समासवादार्थ, वकारवादार्थ)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	78
221	वादार्थ संग्रह भाग-३ (वादसुधाकर, लघुविभक्त्यर्थ निर्णय, शाब्दबोधप्रकाशिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	112
222	वादार्थ संग्रह भाग-४ (आख्यात शक्तिवाद छः टीका)	रघुनाथ शिरोमणि	संस्कृत	महादेव शर्मा	228

Aho ! Shrutgyanam

अथ मुहूर्तचिंतामण्यनुक्रमणिकाप्रारंभः।

ंकाः प्रकरणानि

शुभाशुभप्रकरणम् १

१ मंगलाचरणम्
१ ग्रंथप्रयोजनम्
२ ज्योतिःशास्त्राध्ययनफलम्
३ नक्षत्रसूचकस्य श्राद्धभोजने निषेधः
४ मुहूर्तप्रयोजनम्
६ तिथीशाः
६ तिथीनां संज्ञाः फलं च
६ सिद्धियोगाः
७ रव्यादिवारेषु यथाक्रमं निषिद्धतिथयः
७ दग्धनक्षत्राणि
७ क्रकचादिनिंद्ययोगाः
८ कृत्यविशेषेषु निषिद्धतिथयः
८ दग्धादियोगचतुष्टयम्
९ चैत्रादिमासे शून्यतिथयः
१० तिथिनक्षत्रसंबंधिदोषाः
१० चैत्रादिमासेषु शून्यनक्षत्राणि
११ चैत्रादिषु शून्यराशयः
११ विषमतिथिषु दग्धलग्नानि
११ दुष्टयोगानां शुभकृत्यावश्यकत्वे परिहारः
१२ शुभकार्येषु सिद्धिदानामपि हस्तार्कादियोगानां निंद्यत्वम्
१२ भौमाश्विनीत्यादिकानां सिद्धियोगानां कार्यविशेषेऽतिनिंद्यत्वम्
१२ आनंदाद्यष्टाविंशतियोगाः
१२ आनंदादियोगानां गणनोपायः
१३ आनंदादिषु कियतां दुष्टयोगानां आवश्यककृत्ये परिहारः

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

१३ दोषापवादभूता रवियोगाः
१३ सूर्यादिवारेषु नक्षत्रविशेषैः सिद्धियोगाः
१४ उत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगाः
१४ दुष्टयोगानां देशभेदेन परिहारः
१४ समस्तशुभकृत्ये वर्ज्यपदार्थाः
१५ ग्रहणनक्षत्रे ग्रासभेदेन निंद्या मासा दिवसाश्च
१६ सामान्यतोऽवश्यं वर्ज्यानि पंचांगदूषणादीनि
१६ पक्षरंध्रातिथय आवश्यकत्वे तन्निष्ठवर्ज्यघटिकाश्च
१७ कुलिकादिदोषाः
१७ सूर्यादिवारे दुर्मुहूर्ताः
१८ विवाहादिशुभकृत्ये होलिकाष्टकनिषेधः
१८ मृत्युक्रकचादीनां परिहारः
१८ तेषां पुनरपवादः
१९ भद्रा
१९ चतुर्थ्यादितिथिषु भद्राया मुखपुच्छविभागः
१९ भद्रापरिहारः
२० भद्रानिवासस्तत्फलं च
२० कालाशुद्धौ (गुरुशुक्रास्तादिके) निषेध्य वस्तूनि
२२ सिंहमकरस्थगुर्वादिष्वतिदेशः
२३ सिंहमकरस्थगुरोः प्रकारत्रयेण परिहारः
२४ सिंहराशिगतगुरुनिषेधवाक्यानां प्रतिप्रसववाक्यानां च निर्गलितार्थः
२४ मकरस्थितगुरोः प्रकारद्वयेन परिहारः
२४ लुप्तसंवत्सरदोषोऽपवादसहितः

Aho ! Shrutgyanam

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

२५ वारप्रवृत्तिः
२५ वारप्रवृत्तिप्रयोजनपुरस्सरं कालहोरा
२६ कालहोराप्रयोजनमन्यच्च
२६ मन्वादयो युगादयश्च

अथ नक्षत्रप्रकरणम् २

२७ नक्षत्रस्वामिनः
२७ ध्रुवनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च
२७ चरनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च
२८ उग्रनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च
२८ मिश्रनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च
२८ लघुनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च
२८ मृदुनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च
२८ तीक्ष्णनक्षत्रगणस्तत्कृत्यं च
२८ अधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखनक्षत्राणि
२९ प्रवालदंतशंखसुवर्णवस्त्रपरिधानमुहूर्तः
२९ नवधा विभक्तस्य वस्त्रस्य दग्धादिदोषे शुभाशुभफलम्
३० क्वचिद्दुष्टदिनेऽपि वस्त्रपरिधानम्
३० लतापादपारोपणराजदर्शनमद्यगोक्रय-विक्रयमुहूर्ताः
३१ पशूनां रक्षामुहूर्तः
३१ स्थितिनिवेशनिषेधमुहूर्तश्च
३१ औषधसूच्योर्मुहूर्तः
३२ क्रयविक्रयनक्षत्राणि
३२ विक्रयविपण्योर्मुहूर्तः
३३ अश्वहस्तिकृत्यमुहूर्तः
३३ भूषाघटनादिमुहूर्तः
३४ मुद्रापातननववस्त्रक्षालनमुहूर्तः
३४ खड्गादिधारणं शय्याद्युपभोगमुहूर्तश्च
३५ अंधादिनक्षत्राणि

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

३५ अंधादिनक्षत्राणां फलम्
३५ धनप्रयोगे निषिद्धनक्षत्राणि
३६ जलाशयखनननृत्यारंभयोर्मुहूर्तः
३६ सेवकस्य स्वामिसेवायां मुहूर्तः
३७ द्रव्यप्रयोग ऋणग्रहणमुहूर्तः
३७ हलप्रवहणमुहूर्तः
३८ बीजोप्तिमुहूर्तः फणिचक्रं च
३९ शिरामोक्षविरेकादिधर्मक्रियामुहूर्तः
३९ धान्यच्छेदमुहूर्तः
३९ कणमर्दनसस्यरोपणमुहूर्तः
४० धान्यस्थितिर्धान्यवृद्धिश्च
४० शांतिकपौष्टिकादिकृत्यमुहूर्तः
४० होमाहुतिशुद्धिः
४१ वन्हिनिवासस्तत्फलं च
४१ प्रतिवर्षोत्पन्ननवान्नभक्षणमुहूर्तः
४१ नौकाघटनमुहूर्तः
४२ वीरसाधनाभिचारयोर्मुहूर्तः
४२ रोगनिर्मुक्तस्नानमुहूर्तः
४२ शिल्पविद्यामुहूर्तः
४२ संधानमुहूर्तः
४३ परीक्षामुहूर्तः
४४ सामान्यतः शुभकार्येषु लग्नशुद्धिः
४४ नक्षत्रेषु ज्वरोत्पत्तौ सत्यां तन्निवृत्तौ दिनसंख्या
४४ शीघ्रं रोगिमरणे विशिष्टयोगः
४५ प्रेतदाहमुहूर्तः प्रेतदाहादिनिषेधश्च
४५ काष्ठगोमयपिंडानां संग्रहमुहूर्तः
४५ त्रिपुष्करयोगस्तत्फलं च
४६ शवप्रतिकृतिदाहेनिषिद्धकालः
४७ वर्ज्यांतराणि

Aho ! Shrutgyanam

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

४७ त्रिपादनक्षत्राणि द्विपादनक्षत्राणि च
४८ अभुक्तमूलस्वरूपम्
४८ मूलाश्लेषानक्षत्रोत्पन्नस्य चरणवशेन शुभाशुभफलम्
४९ मूलवृक्षविचारः
४९ मूलनिवासस्तत्फलं च
५० मूलप्रसंगाद्दुष्टगंडांतनिमित्तेषु जातस्य परिहारः
५० मूलशांतिः
५४ आश्लेषाशांतिविधिः
५४ गंडांतशांतिविधिः
५५ ज्येष्ठाशांतिविधिः
५५ दिनक्षयव्यतीपातयोगादिशांतिः
५६ कुहूसिनीवालीदर्शनिर्णयः
५६ सिनीवालीकुहूशांतिः
५८ दर्शशांतिः
५८ कृष्णचतुर्दशीजननशांतिः
५९ एकनक्षत्रजननशांतिः
६० गोमुखप्रसवशांतिः
६० त्रीतरशांतिः
६१ सूर्यचंद्रग्रहणजननशांतिः
६१ ज्वराद्युत्पत्तिकालीननक्षत्रशांतिः
६२ नक्षत्रदेवताध्यानानि
६३ काकमैथुनदर्शनशांतिः
६३ कपोतादिशांतिः
६४ पल्लीसरठशांतिः
६४ अश्विन्यादिनक्षत्राणां तारकामानम्
६४ अश्विन्यादिनक्षत्राणां स्वरूपम्
६५ जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्तः
६५ देवप्रतिष्ठायां सामान्यतो लग्नशुद्धिः

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

संक्रांतिप्रकरणम् ३

६७ नक्षत्रवारवशेन संज्ञाफलं च
६७ दिनरात्रिविभागेन संक्रांतिफलं उत्तरायणदक्षिणायनसंज्ञा च
६८ अवशिष्टसंक्रांतिषु षडशीतिमुखादिसंज्ञाः
६८ संक्रांतौ गौणमुख्यक्रमेण कालः
६९ अर्धरात्रसंक्रांतिषु मकरकर्कटयोश्च विशेषः
६९ उदयास्तादिवचनस्यापवादः
७० विष्णुपदादिविशेषः
७१ सायनांशसंक्रांतिस्तत्पुण्यकालश्च
७२ जघन्यबृहत्समनक्षत्राणि
७२ संज्ञाप्रयोजनम्
७२ कर्कसंक्रांतावब्दविंशोपकाः
७३ कीदृशस्य रवेः संक्रमो जातस्तत्फलम्
७३ संक्रांतेः करणपरत्वेन वाहनादि
७४ संक्रांतिवशेन प्रतिमनुष्यशुभाशुभफलम्
७४ कार्यविशेषे ग्रहविशेषबलं सामान्यतो ग्रहबलं च
७५ अधिमासक्षयमासलक्षणम्

अथ गोचरप्रकरणम् ४

७६ रव्यादिग्रहाणां गोचरफलम्
७७ वामवेधः शुक्लपक्षे चंद्रबलं च
७७ द्विविधवेधे मतद्वयम्
७८ ग्रहणीयनक्षत्रफलं ग्रहणीयराहुगोचरफलं ग्रहाणां शुभप्रतीकारो दुष्टग्रहणदर्शननिषेधश्च
८२ चंद्रबले विशेषः

Aho ! Shrutgyanam

पृष्ठांकाः प्रकरणानि
८२ चंद्रबलस्य विधानांतरम्
८२ ग्रहाणां नवरत्नसमुदायधारणम्
८२ असति द्रव्यसामर्थ्ये तत्तद्ग्रहरत्नधारणम्
८३ अल्पमूल्यरत्नानि ताराबलं च
८३ शेषक्रमेण सफलास्ताराः
८३ अवश्यकृत्ये दुष्टताराणां परिहारः
८४ चंद्रावस्थागणनोपायः
८४ द्वादशावस्थानामानि
८४ ग्रहाणां वैकृतपरिहारार्थं सौषधजलस्नानं दक्षिणाश्च
८५ सूर्यादयो ग्रहाः गंतव्यराशेः कियद्भिर्दिनैः फलं दद्युरित्येतत्
८५ प्रसंगादावश्यकृत्ये दुष्टे तिथ्यादौ दानम्
८५ सूर्यादिग्रहाणां राश्यंतरगमे फलम्

संस्कारप्रकरणम् ५

८६ शुभफलसूचकप्रथमरजोदर्शनम्
८६ प्रथमरजोदर्शने शुभमध्याऽशुभनक्षत्राणि
८६ निंद्यरजोदर्शनम्
८७ प्रथमरजस्वलायाः स्नानमुहूर्तः
८७ गर्भाधानम्
८८ गर्भाधाने लग्नम्
८८ सीमंतोन्नयनमुहूर्तः
८९ मासेश्वराः स्त्रीणां चंद्रबलं च
८९ पुंसवनमुहूर्तः विष्णुबलिमुहूर्तश्च
९० जातकर्मनामकरणयोर्मुहूर्तः
९० सूतिकास्नानमुहूर्तः
९१ प्रथमादिमासोत्पन्नदंतफलम्
९१ दोलाचक्रं दोलारोहणमुहूर्तः निष्क्रमणमुहूर्तश्च

पृष्ठांकाः प्रकरणानि
९२ जलपूजामुहूर्तः दुग्धपानमुहूर्तश्च
९२ अन्नप्राशनमुहूर्तः
९३ लग्नबलं ग्रहाणां स्थानवशात्फलानि च
९४ भूम्युपवेशनमुहूर्तः
९४ जीविकापरीक्षा
९५ शिशोस्तांबूलभक्षणमुहूर्तः
९५ कर्णवेधमुहूर्तः
९५ कर्णवेधे लग्नशुद्धिः
९६ चूडाकर्मनिषेधकालः
९६ तत्प्रसंगतोऽन्यकर्मनिषेधकालश्च
९६ गुरुशुक्रयोर्बाल्यवार्धकदिनसंख्या
९७ परमते बाल्यवार्धकदिनसंख्या
९७ चौलमुहूर्तः
९८ मातरि सगर्भायां चौले विशेषः
९९ चौले दुष्टतारापवादः
९९ चौलादिकृत्ये कालविशेषनिषेधः
९९ सामान्यक्षौरादिमुहूर्तस्तन्निषेधकालश्च
१०० क्षौरस्य विधिनिषेधौ
१०० राज्ञां क्षौरे विशेषः वर्ज्यनक्षत्राणि च
१०१ अक्षरारंभमुहूर्तः
१०१ विद्यारंभमुहूर्तः
१०२ व्रतबंधः
१०२ तस्य कालत्रयं नित्यकाम्यगौणभेदेन
१०३ व्रतबंधे नक्षत्रादि
१०४ व्रतबंधे सामान्यतो लग्नभंगयोगः
१०४ व्रतबंधे लग्नशुद्धिः
१०४ वर्णाधीशाः शाखेशाश्च
१०४ वर्णेशशाखेशप्रयोजनम्
१०५ सामान्यतो निषिद्धजन्ममासादेः प्रतिप्रसवः

पृष्ठांकाः प्रकरणानि
१०६ गुरुबलम्
१०६ गुरुदौष्ट्यापवादः
१०७ व्रतबंधे वर्ज्यपदार्थाः
१०७ व्रतबंधे रव्याद्यंशफलम्
१०८ चंद्रनवांशफलं सापवादम्
१०८ केंद्रस्थसूर्यादिग्रहाणां फलम्
१०८ चंद्रगुरुशुक्राणां ग्रहयोगे फलम्
१०९ चंद्रादिवशेन शुभाशुभयोगौ
१०९ व्रते अनध्यायाः
११० प्रदोषलक्षणम्
११० बह्वृचां ब्रह्मौदनसंस्कारः
१११ वेदपरत्वेन नक्षत्रविशेषः
१११ धर्मशास्त्रीयविशेषः
११२ छूरिकाबंधनमुहूर्तः
११२ केशांतसमावर्तनमुहूर्तौ

अथ विवाहप्रकरणम् ६

११३ प्रश्नलग्नाद्विवाहयोगद्वयम्
११४ अन्यद्विवाहयोगद्वयम्
११४ प्रश्नलग्नाद्वैधव्ययोगत्रयम्
११४ प्रश्नलग्नात्कुलटामृतवत्सायोगः
११४ विवाहभंगयोगः
११५ प्रश्नलग्नाद्वैधव्यमृतापत्यादियोगः
११५ बालवैधव्ययोगे परिहारः
११५ सावित्रीव्रतम्
११५ पिप्पलव्रतम्
११६ कुंभविवाहः
११६ अश्वत्थविवाहः
११६ विष्णुप्रतिमादानविधिः
११७ अस्याः कन्यायाः कीदृशं प्रथमापत्यं भवितेति प्रश्ने उत्तरम्

पृष्ठांकाः प्रकरणानि
११८ कन्यावरणमुहूर्तः
११८ वरवरणमुहूर्तः
११८ कन्याविवाहकालः ग्रहशुद्धिश्च
११९ विहितमासाः
१२० मासप्रसंगाज्जन्ममासादिनिषेधविधयः
१२० ज्येष्ठमासप्रयुक्तविशेषः
१२१ अन्यविशेषः
१२३ प्रतिकूलनिर्णयः
१२४ विवाहानंतरं पुरुषत्रये चूडादिनिषेधः
१२४ मूलादिदुष्टनक्षत्रोत्पन्नयोर्वधूवरयोः श्वशुरादिपीडकत्वम्
१२४ तदपवादः
१२५ राशिकूटानां नामानि
१२५ वर्णकूटं वश्यकूटं ताराकूटं योनिकूटम्
१२७ ग्रहमैत्री
१२७ गणकूटं तत्फलं च
१२८ राशिकूटं तत्फलं च
१२८ दुष्टभकूटस्य परिहारः
१२९ दुष्टानां गणकूटभकूटग्रहकूटानां परिहारः
१२९ नाडीकूटं तदपवादश्च
१३१ प्राच्यसंमतं वर्गकूटम्
१३१ नक्षत्रराश्यैक्ये विशेषः
१३२ राशिस्वामिनः नवांशविधिश्च
१३२ होराविधिः
१३३ त्रिंशांशाः
१३३ द्रेष्काणकांशाः
१३३ द्वादशांशाः
१३३ त्रिंशांशकाः
१३४ गंडांतदोषः
१३४ नक्षत्रगंडांतः

Aho ! Shrutgyanam

पृष्ठांकाः	प्रकरणानि
१३४	लग्नगंडांतः
१३४	तिथिगंडांतः
१३४	कर्तरीदोषः
१३५	सग्रहदोषः
१३५	अष्टमलग्नदोषः सापवादः
१३६	अन्यदपि
१३६	विषघटीदोषः
१३७	दिवामुहूर्ताः
१३७	रात्रिमुहूर्ताः
१३७	वारभेदेन मुहूर्ताः
१३८	वेधदोषविवक्षया विहितनक्षत्रादिकमभिजिन्मानं च
१३८	वेधदोषः
१३८	पंचशलाकाचक्रम्
१३९	सप्तशलाकावेधः
१३९	क्रूराक्रांतादिनक्षत्रदोषः सापवादः
१३९	लत्तादोषः
१४०	पातदोषः
१४०	सूर्यचंद्रक्रांतिसाम्यापरपर्यायो महापातदोषः
१४०	खार्जूरदोषः
१४०	उपग्रहदोषः
१४१	पातोपग्रहलत्तास्वपवादः
१४१	वारदोषभेदकुलिकः
१४२	दग्धतिथ्याख्यदोषः
१४२	जामित्रदोषः
१४२	एकार्गलदोषाणामपवादः
१४२	केषां चिद्दोषाणां देशविशेषेण परिहारः
१४३	दशयोगदोषाः दशयोगफलं तदपवादश्च
१४४	बाणदोषः पंचकाख्यः

पृष्ठांकाः	प्रकरणानि
१४४	प्राच्यमतेन बाणः सापवादः
१४४	समयभेदेन त्रिविधो बाणपरिहारः
१४५	ग्रहाणां दृष्टिः
१४५	उदयास्तशुद्धिः
१४७	सूर्यसंक्रमणाख्यदोषः
१४७	सर्वग्रहाणां संक्रांतिघट्यः
१४७	पंग्वंधकाणबधिराख्यलग्नदोषाः
१४७	परमते पंग्वंधलग्नदोषाः
१४८	येषां प्रयोजनं सापवादं
१४८	विहितनवांशाः
१४८	विहितनवांशे काचिन्निषेधः
१४८	सर्वथा लग्नभंगयोगः
१४८	रेखाप्रदग्रहाः
१४९	कर्तर्यादिमहादोषापवादः
१४९	विवाहेऽब्ददोषाद्यनेकदोषापवादः
१५०	उक्तानुक्तदोषपरिहारः
१५०	सामान्यतो दोषसमूहपरिहारः
१५१	लग्नविंशोपकाः
१५१	ग्रहवशेन श्वशुरादिविभागज्ञानम्
१५१	संकीर्णजातीनां विवाहे विशेषः
१५२	गांधर्वादिविवाहे विशेषः
१५२	विवाहात्प्राक् कर्तव्यानामावश्यककृत्यानां दिनशुद्धिः
१५२	वेदीलक्षणं मंडपोद्वासनदिननियमश्च
१५३	तैलादिलापने संख्यानियमः
१५३	मंडपादौ स्तंभनिवेशनम्
१५३	गोधूलिप्रशंसा
१५४	गोधूलिभेदाः
१५४	गोधूलिसमयेऽवश्यवर्ज्यानि
१५४	सूर्यस्पष्टगतिः

Aho ! Shrutgyanam

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

१९४ सूर्यस्य तात्कालिकीकरणम्
१९५ इष्टकालिकलग्नानयनम्
१९५ रविलग्नाभ्यां इष्टघटिकानयनम्
१९५ घटिकानयनविशेषः
१९६ विवाहादौ आवश्यकवर्ज्यानि

वधूप्रवेशप्रकरणम् ७

१९७ वधूप्रवेशमुहूर्तः
१९८ वधूप्रवेशे नक्षत्रशुद्धिः

द्विरागमनप्रकरणम् ८

१९८ द्विरागमनमुहूर्तः
१९९ संमुखशुक्रदोषः
१९९ प्रतिशुक्रापवादः

अग्न्याधानप्रकरणम् ९

१६० अग्न्याधानादिमुहूर्तः
१६० अग्न्याधाने लग्नशुद्धिः
१६१ यागकर्तृत्वयोगाः

राजाभिषेकप्रकरणम् १०

१६१ कालशुद्धिः
१६२ राजाभिषेकनक्षत्राणि लग्नशुद्धिश्च
१६२ राजाभिषेके विशेषः

यात्राप्रकरणम् ११

१६३ यात्राधिकारिणः
१६३ प्रश्नादेव फलम्
१६४ अन्यौ प्रश्नौ
१६४ अशुभफलदप्रश्नः

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

१६५ प्रश्नलग्ने विशेषः
१६५ योगांतरम्
१६५ यात्राकालः
१६६ तिथ्यादिशुद्धिः
१६७ वारशूलनक्षत्रशूलौ
१६७ वारशूलनक्षत्रशूलापवादः कालशूलश्च
१६७ मध्यमानां निषिद्धानां च कियतां भानां वर्ज्यघटिकाः
१६८ मतांतरेण वर्ज्यघटिकाः
१६८ भानां जीवपक्षादिकाः संज्ञाः
१६८ जीवपक्षादीनां फलम्
१६९ सफलोऽकुलकुलाकुलकुलगणः
१७० पथि राहुचक्रम्
१७० पथि राहुचक्रफलम्
१७० तिथिचक्रं सफलम्
१७३ सर्वांकज्ञानम्
१७३ अडलभ्रमणदोषौ
१७३ हिंवराख्ययोगः
१७३ घबाडं टेलकं गौरवं च
१७३ घातचंद्रस्तत्परिहारश्च
१७४ घाततिथयः घातवाराश्च
१७५ घातनक्षत्राणि घातलग्नानि च
१७५ योगिनीदोषः
१७५ कालपाशाख्ययोगौ
१७६ परिघदंडदोषः
१७६ विदिक्षु गमने नक्षत्राणि परिघदंडापवादश्च
१७६ अन्यदपि
१७७ अयनशुद्धिः
१७७ संमुखशुक्रदोषः तत्परिहारदानं शांतिश्च

Aho ! Shrutgyanam

पृष्ठांकाः प्रकरणानि
१७८ शुक्रस्य वक्रास्तादिदोषः सापवादः
१७८ अन्यदनिष्टलग्नं शुभलग्नं च
१७९ अन्यदनिष्टलग्नम्
१८० अन्यच्छुभलग्नम्
१८० शुभलग्नानि
१८१ दिक्स्वामिनः
१८१ दिगीशप्रयोजनम्
१८१ लालाटिकयोगाः
१८२ पर्युषितयात्रायोगचतुष्टयम्
१८२ समयबलम्
१८२ लग्नादिभावानां संज्ञाः
१८२ रेषाप्रदग्रहाः
१८३ योगयात्रा तदारंभप्रयोजनं च
१८३ योगयात्रा
१८३ योगयात्रालग्नानि
१९१ विजयादशमीमुहूर्तः
१९१ अन्यदपि
१९२ यात्रायामवश्यनिषिद्धनिमित्तानि
१९२ एकदिनसाध्यगमनप्रवेशे विशेषः
१९२ प्रयाणे नवमीदोषः
१९३ यात्रादिनीयविधिः
१९३ नक्षत्रदोहदाः
१९४ दिग्दोहदम्
१९४ वारदोहदम्
१९४ तिथिदोहदम्
१९५ गमनसमये विधिः
१९५ दिश्ययानानि
१९६ निर्गमनस्थानानि
१९६ गमनविलंबे वर्णक्रमेण प्रस्थानवस्तूनि
१९६ प्रस्थानपरिमाणम्

पृष्ठांकाः प्रकरणानि
१९६ मतभेदेन प्रस्थानपरिमाणम्
१९७ प्रस्थानदिनसंख्या
१९८ प्रस्थानकर्तुर्नियमाः
१९८ अकालवृष्टिदोषः
१९९ दुष्टशकुनशांतिर्दानं च
१९९ शुभसूचकशकुनाः
२०१ अशुभसूचकशकुनाः
२०१ अन्यशकुनाः
२०२ कोकिलादीनां वामभागे श्रेष्ठत्वम्
२०२ छिक्करादीनां दक्षिणभागे शुभत्वम्
२०३ उक्तव्यतिरिक्तानां सामान्यतः प्रादक्षिण्येन शकुनः
२०३ विरुद्धशकुने परिहारः
२०३ यात्रानिवृत्तौ गृहप्रवेशमुहूर्तः
२०४ विवाहप्रकरणोक्तदोषा यात्रायां वर्ज्याः
२०४ अन्ये दोषाः

वास्तुप्रकरणम् १२

२०५ ग्रामपुरादिषु गृहनिर्माणे स्वस्य शुभाशुभम्
२०६ राशिपरत्वेन ग्रामनिवासे निषिद्धस्थानानि
२०७ इष्टनक्षत्रेष्टायाभ्यां इष्टभूम्या विस्तारायामौ
२०८ आयैर्वर्णपरत्वेन च द्वारनिवेशनम्
२०८ गृहारंभे विशिष्टकालनिषेधः
२०९ व्ययकथनपुरःसरमंशकज्ञानं सफलम्
२०९ शालाध्रुवाद्यानयनम्
२१० ध्रुवादीनां नामाक्षरसंख्या
२११ गृहस्यायादिनवकम्

Aho ! Shrutgyanam

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

२१२ गृहारंभेवृषवास्तुचक्रम्
२१२ सौरचांद्रमासैक्येन प्राच्यादिदिक्षु द्वाराणि गृहनिर्माणनक्षत्राणि सूतिकागृहनिर्माणप्रवेशौ च
२१४ प्रागभिहितसौरचांद्रमासानां प्रकारांतरेणैकवाक्यता
२१५ तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधः
२१५ गृहारंभे पंचांगशुद्धिः लग्नशुद्धिश्च
२१५ देवालये गृहारंभे जलाशये च विदिगवस्थितराहुमुखं सफलम्
२१६ गृहकूपनिर्माणे दिगवस्थित्या फलम्
२१७ कूपे कृते गृहमध्ये करिष्यमाणानां उपकरणगृहाणां दिक्परत्वेन करणम्
२१७ गृहस्य आयुर्दाययोगद्वयम्
२१८ अन्ययोगद्वयम्
२१८ अन्यत् योगत्रयम्
२१८ गृहस्य परहस्तगामित्वे योगः

पृष्ठांकाः प्रकरणानि

२१८ फलविशेषाच्छुभसूचकं योगद्वयम्
२१९ अन्ययोगद्वयमशुभम्
२१९ द्वारचक्रं सफलम्

गृहप्रवेशप्रकरणम् १३

२२० तत्र प्रवेशश्चतुर्विधः
२२० कालशुद्ध्यादिकम्
२२१ जीर्णगृहप्रवेशे विशेषः
२२२ गृहप्रवेशादिनात् प्राग्वास्तुपूजाविधिः
२२३ लग्नशुद्धिस्तिथिवारशुद्धिश्च
२२४ वामरविः
२२४ प्रवेशे कलशवास्तुचक्रम्
२२५ प्रवेशोत्तरकालीनकर्तव्यविधिः
२२६ ग्रंथसमाप्तौ पितामहवर्णनम्
२२६ क्रमप्राप्तं स्वपितृवर्णनम्
२२७ स्वनामकथनपूर्वकं ग्रंथसमाप्तिः

इति अनुक्रमणिका समाप्ता ॥

Aho ! Shrutgyanam

॥ श्रीः ॥

॥ मुहूर्तचिंतामणिः ॥

॥ रामकृतप्रमिताक्षराटीकासहितः ॥

शुभाशुभप्रकरणम् ॥ १ ॥

कैलासे पूर्णराकाहिमकररुचिरे वीक्ष्य बिंबं स्वकीयं
भूयोभूयोऽपि धावन्प्रतिभटकरटिस्पर्धया चंडशुंडः ॥
मा धाव त्वं त्वदंघ्रिप्रहतिभिरभितो धूयतेऽसौ धरित्री-
त्यंबावाग्भिर्निरुद्धाः कपटकरटिनः केलयो नः पुनंतु ॥ १ ॥
मुहूर्तचिंतामणिसंज्ञकस्य स्वयं कृतस्य प्रमिताक्षराख्याम् ॥
रामो विधत्ते विवृतिं प्रणम्य विष्ण्वर्करुद्रान् पितरौ गुरूंश्च ॥ २ ॥

प्रारिप्सितस्य ग्रंथस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकं स्वाभीष्टगणेशदेवताशीर्वादरूपं मंगलमिंद्रवज्रयोपनिबध्नाति—

गौरिश्रवःकेतकपत्रभंगमाकृष्य हस्तेन ददन्मुखाग्रे ॥
विघ्नं मुहूर्ताकलितद्वितीयदंतप्ररोहो हरतु द्विपास्यः ॥ १ ॥

गौरिश्रव इति ॥ द्विपस्य गजस्यास्यं मुखं यस्येति द्विपास्यो गणेशो विघ्नं हरतु नाशयतु । युष्माकमिति शेषः । कीदृशो गणेशः गौरिश्रवःकेतकपत्रभंगं हस्तेनाकृष्य मुखाग्रे ददत् । गौरी पार्वती तस्याः श्रवणयोः कर्णयोः स्थितं केतक्याः पुष्पं केतकं तस्य पत्रं पर्णं तस्य भंगं खंडं हस्तेन शुंडादंडेनाकृष्य हठाद्गृहीत्वा स्वमुखाग्रे स्वमुखौष्ठे ददाति स्थापयतीति ददत् । अनेन गणेशस्य बाललीला सूचिता । बालोऽपि मातृसमीपवर्ति यत्किंचित्स्वेष्टं वस्तु बलात्कारेण गृहीत्वा मुखे निक्षिपतीति । अतएव मुहूर्ताकलितद्वितीयदंतप्ररोहः । मुहूर्तं क्षणमात्रमाकलितोऽनुसृतो द्वितीयदंतप्ररोहो द्वितीयदंतोद्गमो येन सः । अनेन केतकपत्रस्य मुखस्थापनसमये यावन्निगरणं न करोति तावद्गणेशोऽपि द्विदंत एवालोकि । लोकैरित्यभूतोपमेयम् ॥ १ ॥

अथ ज्योतिषग्रंथमारभमाणो विषयप्रयोजनसंबंधाधिकारिणः सूचयन्कर्तव्यमुपजातिकया प्रतिजानीते—

क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम् ॥
अनंतदैवज्ञसुतः स रामो मुहूर्तचिंतामणिमातनोति ॥ २ ॥

Aho ! Shrutgyanam

क्रियाकलापेति ॥ अनंताख्यज्योतिर्वित्पुत्रः स प्रसिद्धो रामो मुहूर्तचिंतामणिं मुहूर्तानां दिनशुद्धिविशेषाणामथवा दिनस्य रात्रेर्वा पंचदशो विभागस्तत्र लक्षणया तदुपलक्षितः कालो मुहूर्तशब्देनोच्यते । तस्य चिंता शुद्ध्यशुद्धिरूपो विचारस्तस्य मणिरिव मुहूर्तचिंतामणिः । यथा मणिर्हीरिकादिः समस्तकांतीनामाधारस्तथायमपि ग्रंथो निखिलमुहूर्तानामाधार इत्यन्वर्थनामानं मुहूर्तचिंतामणिं ज्योतिषग्रंथमातनोति । निषेधविध्यादिसन्निवेशविशेषेण निरूपयतीत्यर्थः । ननु जीर्णग्रंथैरेव मुहूर्तविचारे सिद्धे किमनेनेत्यत आह । कीदृशं मुहूर्तचिंतामणिं क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुम् । क्रिया जातकर्मादिकास्तासां कलापः समूहस्तस्यामुकस्मिन् शुभदिने कार्यमेतदस्मिन्नशुभदिने न कार्यमित्येवंरूपा द्रुततरं प्रतिपत्तिः सम्यग्ज्ञानं तस्य हेतुं कारणम् । अयमर्थः । अन्यग्रंथेषु तिथ्यादिप्रकरणेषु तिथ्यादिशुद्धिरुक्ता तज्ज्ञानं तत्प्रकरणानां पुनःपुनरालोडनेन सिद्ध्येदिति गौरवम् । अत्रत्वेकस्मिन्नेव पद्ये यो यो मुहूर्तो विचार्यते तस्य तस्य तत्रैव निर्वाह इति लाघवम् । नन्वन्येष्वपि ग्रंथेष्वेवंविधमुहूर्तनिरूपणाद्व्यर्थोऽयं श्रम इत्यत आह । पुनः कीदृशं मुहूर्तचिंतामणिं संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम् । संक्षिप्तश्चासौ सारार्थविलासगर्भश्च तं सारार्थो निष्कृष्टार्थस्तस्य विलासः प्रकाशः स गर्भे यस्यासौ अत्र शब्दलाघवेन निष्कृष्टार्थस्य निरूपणात् यथा गुरुमुखं विनैवार्थज्ञानं सद्यो मनसि जागर्ति तथा नान्यग्रंथेषु । तत्र शब्दकाठिन्याद्गुरुमुखादपि झटित्यर्थज्ञानं न भवतीत्येतदर्थमस्यारंभ इति । ननु संबंधादिचतुष्टयकथनं विना कथं श्रोतृप्रवृत्तिः । उक्तं च । सिद्धिः श्रोतृप्रवृत्तीनां संबंधकथनाद्यतः । तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु संबंधः पूर्वमुच्यते ॥ किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यत इति ॥ उच्यते । मुहूर्तचिंतामणिमित्यनेन पदेनैव सर्वं सूचितम् । तथाच नारदः । अस्य शास्त्रस्य संबंधो वेदांगमिति धातृत इति । यद्वा । अत्राभिधेयपदार्थानां मुहूर्तानां ग्रंथस्य च प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः संबंधः । प्रयोजनं तु शुभाशुभनिरूपणं विवाहादिकालनिर्णयश्च । यदाह नारदः । प्रयोजनं च जगतः शुभाशुभनिरूपणमिति । कश्यपोऽपि । ग्रहणग्रहसंक्रांतियज्ञाध्ययनकर्मणाम् । प्रयोजनं व्रतोद्वाहक्रियाणां कालनिर्णय इति । तज्जिज्ञासुरधिकारी । स च द्विज एव नान्यः । उक्तं च नारदेन । सिद्धांतसंहिताहोरारूपस्कंधत्रयात्मकम् । देवस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम् ॥ विनैतदखिलं श्रौतस्मार्तकर्म न सिद्ध्यति । तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ अतएव द्विजैरेतदध्येतव्यं प्रयत्नतः । अत्रैवकारस्य पाठक्रमेण योजने प्रयोजनं विनैव ज्योतिःशास्त्राध्ययनस्यावश्यकत्वं प्रतीयते । द्विजैरेवेति व्याख्याने द्विजव्यतिरिक्तैः शूद्रैर्नाध्येयमिति च प्रतीयते । व्याख्यानद्वयमपि युक्तमेव । ननु कथं श्रौतस्मार्तकर्मोपयोगि ज्योतिषमिति चेदुच्यते । अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत वसंते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेतेत्या-

दिश्रुतयः संति । तत्र वर्षादिज्ञानं वसंताद्यृतुज्ञानं दर्शपूर्णमासयोर्ज्ञानं च ज्योतिषं विना सर्वथा न निर्वहतीत्यवश्यमध्येतव्यं ज्योतिःशास्त्रम् । उक्तंच वेदांगज्योतिषे । वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः । तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥ यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा । तद्वद्वेदांगशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥ तस्मात्कर्मौपयोगिकतयाऽवश्यमध्येतव्यं ज्योतिःशास्त्रम् । तच्च सुपरीक्षितशिष्याय देयम् । तदुक्तं श्रुतौ । विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम । गोपाय मा शेव-धिष्टेऽहमस्मि । असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् । अन्यच्च । नैत-द्देयं दुर्विनीताय जातु ज्ञानं गुप्तं तद्विसम्यक्फलाय । अस्थाने हि स्थाप्यमानैव वाचां देवी कोपान्निर्दहेत्तं चिराय ॥ विनयावनताय दीयमानं प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय । उपकृत्यनु-चिंतकानि शास्त्राण्युपकारस्य पदं हि साधुरेवेति । शूद्रपाठे च महान्दोषः । गर्गः । स्नेहा-ल्लोभाच्च मोहाच्च यो विप्रोऽज्ञानतोऽपि वा । शूद्राणामुपदेशं तु दद्यात्स नरकं व्रजेदिति । ज्योतिःशास्त्राध्ययने फलमाह मांडव्यः । एवंविधस्य श्रुतिनेत्रशास्त्रस्वरूपभर्तुः खलु दर्शनं वै । निहंत्यशेषं कलुषं जनानां षडब्दजं धर्मसुखास्पदं स्यात् ॥ अत्र ज्ञानविशेषेण ज्यो-तिर्विदः पूजातारतम्यं जीर्णैरभ्यधायि । दशदिनकृतपापं हंति सिद्धांतवेत्ता त्रिदिनजनित-दोषं तंत्रविज्ञः स एव । करणभगणवेत्ता हंत्यहोरात्रदोषं जनयति घनमंहस्तत्र नक्षत्रसूची ॥ नक्षत्रसूचिलक्षणं वराहसंहितायाम् । अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते । सपंक्तिदूष-कः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ तिथ्युत्पत्तिं न जानंति ग्रहाणां नैव साधनम् । परवाक्येन वर्तंते ते वै नक्षत्रसूचकाः ॥ नक्षत्रं सूचयतीति नक्षत्रसूची । नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं क-रोति यः । स व्रजत्यंधतामिस्रं सार्धमृक्षविडंबिना ॥ नक्षत्रसूचकं पापं भिषजं शुल्कजीवि-नम् । तादृक्पौराणिकादींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ ऋक्षविडंबिना नक्षत्रसूचकेन सहांध-तामिस्रं नरकं व्रजति अतश्चायथाशास्त्रमादेशक एव नक्षत्रसूचको न तु संपूर्णशास्त्रपरिज्ञाता। दैवज्ञत्वं प्रपद्यत इत्युक्तत्वात् । पूर्वकर्मार्जितसदसत्कर्मविपाको दैवं तज्जानातीति दैवज्ञस्तस्य भावो दैवज्ञत्वम् । गुरुः । दैवज्ञैः शास्त्रतत्त्वज्ञैर्मुहूर्तोऽन्विष्यते यदि । सन्मुहूर्तः समन्वेष्यो नान्यैर्नक्षत्रसूचकैरिति । अतएव कश्यपो वेदपारगसाहित्येनैव नक्षत्रसूचकस्य श्राद्धभोजनमाह । अरिर्विश्रंभहंता च व्यंगो नक्षत्रसूचकः काणः कुब्जश्च मंदश्च श्वित्री मूर्खश्च कुष्ठवान् ॥ सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैरिति । वसिष्ठः । त्रिस्कंधपारंगम एव पूज्यः श्राद्धे सदा भूसुरवृंदमध्ये । नक्षत्रसूची खलु पापरूपो हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये । वराहोऽपि । नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता । चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥ मुहूर्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायनानि च । सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात्सांवत्सरो यदि ॥ अतो गणकानां यदपांक्तेयत्वमभ्यधायि धर्मशास्त्रे तच्च सूचकाभिप्रायेण ज्ञेयम् । महाप्रयोजनं

Aho ! Shrutgyanam

त्वेतच्छास्त्रस्य सम्यग्ज्ञानाद्ब्रह्मसायुज्यमिति । तथाच गर्गः । ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम् । ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम् ॥ सूर्यसिद्धांते । दिव्यं चक्षुर्ग्रहाणां तु दर्शितं ज्ञानमुत्तमम् । विज्ञायार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ वराहः । न सांवत्सरपाठी च नरके परिपच्यते । ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिंतक इति । तस्माज्ज्योतिःशास्त्रमवश्यमध्येतव्यमिति स्थितम् । तत्राप्यार्षवाक्यानां पाठमात्रेणापि फलमस्ति स्मृत्यादिपठनवदिति । अथ मुहूर्तप्रयोजनमाह सत्याचार्यः । शुभक्षणक्रियारंभजनितापूर्वसंभवाः । संपदः सर्वलोकानां ज्योतिस्तत्र प्रयोजनमिति । तेन शुभमुहूर्तारब्धं कार्यं सिध्येदशुभमुहूर्तारब्धं तु न सिद्ध्येदिति । नन्वेतन्न युज्यते । येन तु यत्प्राप्तव्यं तस्य विपाकं सुरेशसचिवोऽपि । यः साक्षान्नियतिज्ञः सोऽपि न शक्तोऽन्यथा कर्तुमिति शौनकोक्तेः । प्राचीनसदसत्कर्मरूपदैवस्यावश्यंभावित्वादिति चेन्न । विवाहादिषु विहितकालस्य पुरुषप्रयत्नसाध्यत्वादुभययोगे सत्येव कार्यसिद्धिर्न केवलदैवेनेति । तदुक्तं केशवार्किणा । फलेद्यदि प्राक्तनमेव तत्किं कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः । श्रुतिः स्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णेति । यदि तु दैवमेव फलेत्तदा सर्वो जनः कृष्याद्युपायेषु कथं प्रवर्तेतेति । किंच श्रुतिस्मृत्यादयोऽपि निषेधविध्यात्मका निरर्थकाः स्युः । न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेन्न प्राणसंशयमभ्यापद्येतेत्यादीनामाश्वलायनादिवचनानां चिकित्साशास्त्रस्येव वैयर्थ्यप्रसंगः स्यादित्यर्थः । याज्ञवल्क्योऽपि । दैवे पुरुषकारेऽपि कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता । तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदैहिकमिति । कर्मसिद्धिः फलावाप्तिरिष्टानिष्टलक्षणा सा च केवलदैवे न व्यवस्थिता अपि तु पुरुषकारेऽपि । पुरुषकारः प्रयत्नः पुरुषकाराभावे दैवमेव नास्तीत्याह । तत्र दैवमिति । पूर्वदेहार्जितपौरुषमेव दैवमित्युच्यते तच्चाल्पपुरुषप्रयत्नानंतरं महाफलोदयेनाऽभिव्यक्तं भवति । अतएव वसंतराजः । पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति संप्रचक्षते । उद्यमेन समुपार्जितं तदा वांछितं फलति नैव केवलमिति । दैवप्रयत्नयोरन्यतरेण सिद्धिर्न भवतीत्यत्र दृष्टांतमाह याज्ञवल्क्यः । यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत् । तद्वत्पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥ केशवार्कोऽपि । प्राक्कर्मबीजं सलिलानलोर्वीसंस्कारवत्कर्म विधीयमानम् । शोषाय पोषाय च यस्य तस्य तस्मात्सदाचारवतां न हानिरिति ॥ यत्प्राक्कर्म जन्मांतरोपार्जितं कर्म दैवरूपं तस्य विधीयमानमधुना क्रियमाणं कर्म शोषाय पोषाय च भवति । बीजं सलिलानलोर्वीसंस्कारवत् । यथा सद्बीजं शुभसलिलादिसंस्कारैः संस्कृतं सदुदेति वर्धते च तद्वत्प्राक्कर्माप्यैहिकेन सत्प्रयत्नेन वर्धतेऽन्यथा क्षीयते इत्यर्थः । तस्माज्ज्योतिःशास्त्रविहितकाले विवाहादिकुर्वतां शांतिचिकित्सादिसदाचारवतां पुरुषाणां सदा न हानिः स्यात् । अन्यच्च । दैवं हि पुरुषनिष्ठं तद्देशकालवशत एव विपच्यते । दुष्टमपि दुष्टांतरसाहित्येनैतद्दुष्टकारि भवति । यथा दुर्जनो रंध्रान्वेषणेन । अतएव वसंतराजः । सर्पवह्निविषकंटकादिकं

Aho ! Shrutgyanam

येन दैवशरणोऽपि मानवः । दूरतस्त्यजति पौरुषं तदा तेन न स्फुरति दैवतोऽधिकम् ॥ पौरुषेण हृदयेप्सितां गतिं प्राप्नुवंति पुरुषाः सुमेधसः । यांति देवशरणा लयं यथा पादपा ज्वलति दावपावके इति ॥ शकुननिमित्तादिभिः सूचितमशुभं दैवफलं शुभेन प्रयत्नेन वंच्यत एव । यथा च वसंतराजः । तन्निरूप्य शकुनेन दुःखदं वंचयंति नियतं समुद्यतम् । पौरुषेण पुरुषाः सुमेधसः संश्रयंति पुनरात्मनो हितमिति । तद्दैवफलं दुःखं समुद्यतं शकुनेन निरूप्य ज्ञातारः पुरुषाः पौरुषेण वंचयंतीत्यर्थः । यथा येन ग्रहेण यावती दशांतर्दशा वा दत्ता तस्याः फलपरिपाकस्तावंतं कालमभिव्याप्य भवेदेवेति स्थिते दशाप्रवेशकालीनचंद्राद्यच्छुभाशुभफलनिरूपणं यथा तस्य दशाफलस्यान्यथात्वमल्पत्वमाधिक्यं वा रुंधयति तद्वदेतदपि बोद्धव्यम् । नन्वनंतरोक्तसर्पविषवैद्यादिदृष्टांतेन पौरुषमेव फलसाधनं कथं न स्यात् । तथा च बृहद्यात्रायां वराहः । तथा परमुपेक्ष्यैव दैवं धैर्यावलंबिनः । प्रत्यक्षतः क्रियासिद्धौ केवलं जगुरुद्यमम् ॥ उत्थानहीनो राजा हि बुद्धिमानपि सर्वदा । प्रधर्षणीयः शत्रूणां भुजंग इव निर्विषः ॥ विधानगणनाजडः पुरुषकारमुक्तादरो मनोरथपरिश्रमैर्न परिचुंबति श्रीमुखम् । पराक्रमविनिश्चितैकसुनयो हि सद्यः कृतं हरिर्मदसुवासितं पिबति कुंजरासृङ्मधु इत्यादि । उच्यते । समानभूमिषु समानसलिलादिप्रयत्नेऽपि फलवैचित्र्यदर्शनात् कारणांतरं कल्प्यते तदेव दैवमिति । अत उभयोर्योगे सत्येव फलसिद्धिरिति । एतदपि तत्रैव । कृषिवृष्टिसमायोगाद्दृश्यंते फलसिद्धयः । अस्मिन्नर्थे शृणु श्लोकान्द्वैपायनमुखोद्गतान् ॥ कृषिः पौरुषं वृष्टिर्दैवं कर्षकः पौरुषेण कृषिं करोति तां दैवं वृष्ट्या साधयति । अथ कृषिं करोति चेत्तदा वृष्ट्या विना न किंचित्फलमाप्नोति । यदि पुनः कर्षको बीजं वपति दैवं च वर्षति तदा फलमधिकमुत्पद्यते । एवं दैवपुरुषकारयोः समयोर्यत्फलसिद्धयो दृश्यंते । अत्रार्थे श्रीव्यासमुखोद्गता इमे श्लोकाः । न विना मानुषं दैवाद्दैवं वा मानुषाद्विना । नैको निवर्तयत्यर्थमेकारणिरिवानलमिति । केचिद्बुद्धिः कर्मनुसारिणीति मान्यमानाः प्रयत्नोऽपि दैवरूप इति कृत्वा दैवमेव फलसिद्धेः कारणमिति वदंति तन्न । अनवस्थादोषप्रसंगात् । तथाहि । प्राक्कर्मार्जितपौरुषमेव किल दैवशब्देनोच्यते । अत्रत्यः प्रयत्नः प्राचीनपौरुषलक्षणेन दैवेन जन्यते । तदपि तत्प्राचीनपौरुषजन्यमित्यनवस्थाऽतः प्रयत्नोऽपि दैवप्रेरित इत्यनुपपन्नम् । ननु बीजांकुरन्यायेनानवस्थादोषो न भवतीतिचेन्न । नहि बीजांकुरन्यायेन दैवमेव मूलमिति निश्चीयते नापि प्रयत्नः । अतः सत्युभययोगे फलसिद्धिरिति तत्त्वम् । एवं चेत्तर्हि पूर्वोक्तानां शौनकादिवाक्यानां । येन तु यत्प्राप्तव्यं तस्य विपाके सुरेशसचिवोऽपि । यः साक्षान्नियतिज्ञः सोऽपि न शक्तोऽन्यथा कर्तुमित्यादिकानां का गतिः । उच्यते । दैवं तु दृढकर्मजमदृढकर्मजं चेति द्विविधम् । तत्र दृढकर्मजस्यावश्यंभावित्वात् ग्रहशांत्यादिरूपापूर्वप्रयत्नादपि तन्निवारयितुं न शक्यते । दृढमूलत्वात् प्रबलवाताघातेऽपि दृढमूलपादपवत् । अदृ-

Aho ! Shrutgyanam

ढकमज तु दैवं प्रयत्नेन निवर्त्यमतिशिथिलमूलपादपवत् । तथाच जातके । ये धर्मकर्मनिरता विजितेंद्रिया ये ये पथ्यभोजनजुषो द्विजदेवभक्ताः । लोके नरा दधति ये कुलशीललीलां तेषामिदं कथितमायुरुदारधीभिरिति । प्रयत्नाभावे तु विपच्यंते । तथा च तत्रैव । पापिष्ठा ये दुराचारा देवब्राह्मणनिंदकाः । अपथ्यभोजिनस्तेषामकाले मरणं ध्रुवमिति । वैद्यकेऽपि । पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधत इति । सर्वव्याधीनां साधारण्येन कर्मजत्वेऽपि साध्यासाध्यत्वेन द्वैविध्यम् । तत्रापि । कृच्छ्रोपायः सुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते । असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो साध्यो यश्चाप्रतिक्रियः । साध्या याप्यत्वमायांति याप्याश्चासाध्यतां तथा ॥ घ्नंति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावतामित्यादिनाऽचिकित्स्यव्याधेर्दृढकर्ममूलत्वमन्येषामदृढकर्ममूलत्वं निश्चीयते । ततो दैवस्येदृशं द्वैविध्यमस्ति । अतः शौनकवाक्यानामयमर्थः । येन त्विति । येन पुरुषेण यत्प्राप्तव्यमवश्यंभोक्तव्यं दृढकर्मोपार्जितमिति यावत् । तदन्यथा कर्तुं बृहस्पतिरपि न शक्तः । अर्थादन्यददृढकर्मोपार्जितमन्यथा कर्तुं शक्त इत्यर्थः । अतो निमित्तशकुनादिभिर्दुष्टफले ज्ञाते बौधायनादिविहितेन तच्छांतिदानादिरूपधर्मेण प्रयत्नेन तन्निवर्तते शुभं वर्धते । अतएव तेनैवोक्तम् । सुपरीक्षितं विलग्नं धर्मार्थसुखाय दंपत्योः । अपरीक्षितं विलग्नं नहि देयं पंडितेन दैवविदा । अयशोंऽबुनिधौ मज्जति शास्त्रमविज्ञाय यो दद्यादिति । बृहस्पतिरपींद्रं प्रत्याह । स्वभावादेव कालोऽयं शुभाशुभसमन्वितः । अनादिनिधनः सर्वो न निर्दोषो न निर्गुणः ॥ तस्मान्निर्दोषकालार्थे मुहूर्तमधिगच्छताम् । कालः शुभो गुणैर्युक्तो बलवद्भिः शुभप्रदः ॥ दोषैर्युक्तोऽपि चाप्राप्यैर्बहुभिर्व्यत्ययं द्वयोरिति । अतः शुभमुहूर्तबलेन पूर्वकर्मार्जितमशुभमपि दैवफलं निवार्यते इत्यनवद्यम् ॥ २ ॥

अथ तिथीशाननुष्टुभाह—

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः ॥
शिवो दुर्गांतको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी ॥ ३ ॥

तिथीशा इति ॥ एते तिथीशास्तिथीनां स्वामिनः । वह्निश्च कश्च । को ब्रह्मा शेषं स्पष्टम् । प्रयोजनं तु तत्तद्देवतापूजाप्रतिष्ठादि । अथ मुहूर्तविचारस्य प्रतिज्ञातत्वात्संवत्सरप्रकरणं नोक्तं तदन्यत एवावधार्यम् ॥ ३ ॥

अथ तिथीनां संज्ञां सफलामाह—

नंदा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः ॥
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ॥४॥

नंदेति । प्रतिपदादि पंच तिथयो नंदाभद्राजयारिक्तापूर्णासंज्ञाः स्वस्वनामसदृशफलदाः स्युरिति । एवंप्रकारेण सर्वाः षष्ठ्यादयो ज्ञेयाः ताः शुक्लपक्षे अशुभमध्यशुभफलदाः स्युः ।

Aho ! Shrutgyanam

असिते कृष्णपक्षे शुभमध्याधमफलदाः स्युः । ता एव नंदादितिथयः शुक्रबुधमंगलशनिगुरुवारेषु सिद्धिकराः स्युः । यथा नंदाशुक्रवारे एवं भद्रा बुधवारे जया भौमे रिक्ता शनौ पूर्णा गुराविति ॥ ४ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु यथासंख्यं निषिद्धतिथीर्दग्धनक्षत्राणि च शालिन्याह—

नंदा भद्रा नंदिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा पूर्णसंज्ञाऽधमार्कात् ॥
याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यम्णं ज्येष्ठांत्यं रवेर्दग्धभं स्यात् ॥ ५ ॥

नंदेति ॥ अर्कादिति ल्यब्लोपे पंचमी । अर्कमारभ्य नंदादिका तिथिरधमा स्यात् । यथा सूर्यवारे नंदाधमा एवं सोमे भद्रा भौमे नंदा बुधे जया गुरौ रिक्ता शुक्रे भद्रा शनौ पूर्णेति । इदमाधुनिकानां प्राच्यानां मतम् । वस्तुतस्तु ते शुभा अमृतयोगाः । तथा च वसिष्ठः । नंदा भौमार्कयोर्भद्रा शुक्रेंद्वोश्च जया बुधे । शुभयोगा गुरौ रिक्ता पूर्णा मंदेऽमृताह्वया ॥ गुरुरपि । आदित्यभौमयोर्नंदा भद्रा शुक्रशशांकयोः । जया ज्ञे च गुरौ रिक्ता पूर्णार्कौ चामृता शुभेति । नारदवाक्ये शनौ पूर्णा च मृत्युदेति कल्पितः पाठः । वसिष्ठादिवचनविसंवादात् । बहुषु पुस्तकेषु शनौ पूर्णाऽमृताशुभेति पाठाच्च । पूर्णसंज्ञाऽमृतार्कादिति पाठः साधुः । तथा रविवारादिषु याम्यं भरणी तदादीनि नक्षत्राणि यथाक्रमेण दग्धनक्षत्राणि स्युः । यथा रविवारे भरणी दग्धा सोमे चित्रा भौमे उत्तराषाढा बुधे धनिष्ठा गुरावुत्तराफल्गुनी शुक्रे ज्येष्ठा शनौ रेवती । नारदः । आदित्यभौमयोर्नंदा भद्रा शुक्रशशांकयोः । जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णाऽमृताशुभेति । नारदः । यमर्क्षमर्कवारेऽब्जे चित्रा भौमे तु विश्वभम् । बुधे श्रविष्ठार्यम्णर्क्षं गुरौ ज्येष्ठा भृगोर्दिने । रेवती शनिवारे तु दग्धयोगा भवंत्यमी । एतान्येव नक्षत्राणि रव्यादीनां जन्मभानीत्युक्तानि तान्यपि निषिद्धान्येव । लल्लः । याम्यं त्वाष्ट्रोत्तराषाढे धनिष्ठोत्तरफल्गुनी । ज्येष्ठा च रेवती चैव जन्मर्क्षं भानुतः क्रमात् । क्रमात्सप्तेंद्रदिक्सूर्यनवाष्टौ पौर्णमास्यमा ७,१४,१०,१२,९,८,१५,३० । सूर्यादिजन्मतिथयः संत्याज्याः शुभकर्मणि । जन्मर्क्षे जन्मातिथिषु शुभकर्म विवर्जयेत् । बलाच्चेत्कुरुते कर्म न तत्फलमवाप्नुयादिति ॥ ५ ॥

अथ क्रकचादिनिंद्ययोगाननुष्टुभाह—

षष्ठ्यादितिथयो मंदाद्विलोमं प्रतिपद्बुधे ॥
सप्तम्यर्केऽधमाः षष्ठ्याद्यामाश्च रदधावने ॥ ६ ॥

षष्ठ्यादीति ॥ क्रमेण षष्ठ्यादितिथयः मंदाच्छनैश्चराद्विलोमं विपरीतगणनयाऽधमाः स्युः । यथा शनौ षष्ठी अधमा शुक्रे सप्तमी गुरावष्टमी बुधे नवमी भौमे दशमी सोमे एकादशी रवौ द्वादशी एते योगाः क्रकचाख्या ज्ञेयाः । तथा प्रतिपद्बुधवासरे सप्तमी रवि-

Aho ! Shrutgyanam

वारे संवर्तयोगा अधमा स्यात् । अथ षष्ठी आद्या प्रतिपत् अमा अमावास्या रदधावने दंतानां काष्ठादिभिर्मलनिराकरणेऽधमा निषिद्धाः स्युः । क्वचिन्नवमीरविवारयोरपि निषेधः । काशीखंडे । प्रतिपद्दशमी षष्ठी नवम्यां रविवासरे । दंतानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलमिति ॥ ६ ॥

अथ कृत्यविशेषेषु निषिद्धतिथीरिंद्रवंशाछंदसाह—

षष्ठयष्टमीभूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतम् ॥
नाभ्यंजनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत् ॥७॥

षष्ठीति ॥ षष्ठ्यष्टम्यौ प्रसिद्धे भूतश्चतुर्दशी विधुक्षयोऽमावास्या एतासु तिथिषु ना पुरुषः तैलं पलं मांसं क्षुरं क्षौरम् रतं मैथुनं नो सेवेत । यथा षष्ठ्यां तैलम् अष्टम्यां मांसम् चतुर्दश्यां क्षौरम् अमावास्यायां मैथुनम् न सेवेतेत्यर्थः । विधुक्षयः पर्वोपलक्षकः । वसिष्ठः । स्त्रीसेवनं पर्वसु पक्षमध्ये पलं च षष्ठीषु च सर्वतैलम् । नृणां विनाशाय चतुर्दशीषु क्षुरक्रिया स्यादसकृत्तदाशु । नारदः । व्यतीपाते च संक्रातावेकादश्यां च पर्वसु । अर्कभौमदिने विष्ट्यां नाभ्यंगं न च वैधृताविति । पर्वाणि वसिष्ठ आह । चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावास्या च पौर्णिमा । पुण्यानि पंच पर्वाणि संक्रांतिर्दिनपस्य चेति । अत्र तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या । उक्तं च । स्नाने चाभ्यंजने चैव दंतधावनमैथुने । तिथिस्तात्कालिकी ग्राह्या तथा मरणजन्मनोरिति । अथ विश्वे त्रयोदशी दश दशमी द्विका द्वितीया एतासु तिथिषु अभ्यंजनमभ्यंगं मलापहार्थं न सेवेत । अयं निषेधो ब्राह्मणव्यतिरिक्तस्य । तथा च भट्टभास्करो निर्णयामृते । त्रयोदश्यां द्वितीयायां सप्तम्यां च विशेषतः । शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं नाचरेयुः कदाचनेति । अथ धात्रीफलैरामलकैः स्नानममाद्रिगोषु अमासप्तमीनवमीषु असत् निषिद्धमित्यर्थः । अत्र वसिष्ठादिमते त्रयोदश्यादितिथिष्वामलकस्नानस्यैव निषेधो नाभ्यंगस्य । वसिष्ठः । कामदुर्गातकरविनष्टेंद्वर्कदिनेषु च । सकृदामलकस्नानं संपत्पुत्रविनाशनम् । भट्टभास्करस्तु नवम्यादिष्वेवामलकस्नानं निषेधति । सप्तम्यचंद्रानवमीषु देहश्रीसंततीरामलकैर्नरस्य । स्नानं निहंत्यंत्यदिने तु धत्ते तिलैः श्रियं पुण्यकरं सदैवेति ॥ ७ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु दग्धादियोगचतुष्टयमिंद्रवज्रोपजातिकाभ्यामाह—

सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनंदा वेदांगसप्ताश्विगजांकशैलाः ॥
सूर्यांगसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनाश्च ॥ ८ ॥
सूर्यादिवारे तिथयो भवंति मघा विशाखा शिवमूलवह्निः ॥
ब्राह्मं करोऽर्काद्यमघंटकाश्च शुभे विवर्ज्या गमने त्ववश्यम् ॥ ९ ॥

सूर्येशेति ॥ सूर्यादीति च ॥ सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनंदाः तिथयः सूर्यादिवारे दग्धसंज्ञा

Aho ! Shrutgyanam

भवंति । यथा । द्वादशी रविवारे दग्धा सोमे एकादशी भौमे पंचमी बुधे तृतीया गुरौ षष्ठी शुक्रेऽष्टमी शनौ नवमी । उक्तं च नारदेन । एकादशी चेंदुवारे द्वादशी चार्कवासरे । षष्ठी बृहस्पतेर्वारे तृतीया बुधवासरे ॥ अष्टमी शुक्रवारे च नवमी शनिवासरे । पंचमी भौमवारे च दग्धयोगाः प्रकीर्तिताः ॥ अथ विषयोगाः ॥ वेदेति ॥ चतुर्थ्यादितिथयोऽर्कादिवारेषु विषाख्या भवंति । यथा । रवौ चतुर्थी विषाख्या । चंद्रे षष्ठी भौमे सप्तमी बुधे द्वितीया । बुधे भद्रारूपः सिद्धियोगस्तु सप्तमीद्वादश्योश्चरितार्थः । एवं नवमीशन्यादावपि । गुरावष्टमी शुक्रे नवमी शनौ सप्तमी । तथा च गुरुः । षष्ठी शशांके नवमी च शुक्रे बुधे द्वितीया तपने चतुर्थी । जीवेऽष्टमी सौरिकुजेऽह्नि सप्तमी योगा विषाख्याः कुलनाशनाः स्युः ॥ अथ हुताशनाख्याः ॥ सूर्यांगेति ॥ द्वादश्यादितिथयः सूर्यादिवारेषु हुताशनाख्याः स्युः । यथा रवौ द्वादशी सोमे षष्ठी भौमे सप्तमी बुधेऽष्टमी गुरौ नवमी शुक्रे दशमी शनावेकादशी । वसिष्ठः । सप्तषष्ठ्यादितिथयः सोमवारादिभिर्युताः । अग्निजिह्वाः सप्त योगा मंगलेष्वतिगर्हिताः ॥ अथ यमघंटाः । मघाविशाखादिनक्षत्राणि रविवारादिषु यमघंटसंज्ञानि स्युः । यथा । अर्कवारे मघा यमघंट एवं सोमवारे विशाखा इत्यादि । गर्गः । मघा विशाखा आर्द्रा च मूलमृक्षं च कृत्तिका । रोहिणी हस्त इत्युक्ता यमघंटाः क्रमाद्रवेः ॥ एते दग्धादियोगाः शुभे विवाहादिकार्ये वर्ज्याः । गमने तु यात्रायामवश्यं वर्ज्याः । एषामपवादो वसिष्ठेनोक्तः । दिवा मृत्युप्रदाः पापदोषास्त्वेते न रात्रिषु । शुभकार्ये प्रसूतौ च सर्वदा परिवर्जयेदिति ॥ आवश्यककृत्ये दीपिकायाम् । यमघंटे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादश नाडिका इति । अन्येषां पापयोगानां मध्याह्नात्परतः शुभमिति ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ चैत्रादिमासे शून्यतिथीः शार्दूलविक्रीडितेनार्धानुष्टुभाह—

भाद्रे चंद्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी पौषे वेदशरा इषे दश शिवा मार्गेऽद्रिनागा मधौ ॥ गोष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथयः शून्या बुधैः कीर्तिता ऊर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कृष्णे शरांगाब्धयः ॥ १० ॥

शक्राः पंच सिते शक्राद्र्यग्निविश्वरसाः क्रमात् ॥

भाद्र इति । शक्रा इति च ॥ भाद्रपदादिश्लोकोक्तमासेषु चंद्रदृशौ प्रतिपद्द्वितीये इत्यादिक्रमोक्ततिथय उभयपक्षगाः शुक्लकृष्णपक्षगताः शून्यसंज्ञका बुधैः कीर्तिताः कथिताः । यथा । भाद्रपदे प्रतिपद्द्वितीये उभयपक्षे शून्ये । एवं नभसि श्रावणे उभयपक्षे तृतीयाद्वितीये शून्ये इत्यादि । अनुक्तमासानामूर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कार्तिकाषाढज्येष्ठफाल्गुनमाघानां कृष्णपक्षे क्रमेण शरांगाब्धयः शक्राः पंच एतास्तिथयः शून्याः । यथा । कार्तिककृष्णे पंचमी शून्या एवमाषाढकृष्णे षष्ठी फाल्गुनकृष्णे चतुर्थी ज्येष्ठकृष्णे चतुर्दशी माघ-

२

Aho ! Shrutgyanam

कृष्णे पंचमी । अथैषामेव कार्तिकादिमासानां शुक्लपक्षे शक्राद्रच्यग्निविश्वरसाः क्रमाच्छून्याः । यथा । कार्तिकशुक्ले चतुर्दशी शून्या । आषाढशुक्ले सप्तमी फाल्गुनशुक्ले तृतीया ज्येष्ठशुक्ले त्रयोदशी माघशुक्ले षष्ठी चेति । वसिष्ठः । अष्टमी नवमी चैत्रे पक्षयोरुभयोरपि । माधवे द्वादशी त्याज्या पक्षयोरुभयोरपि ॥ ज्येष्ठे त्रयोदशी निंद्या सिते कृष्णे चतुर्दशी । आषाढे कृष्णपक्षस्य षष्ठी शुक्ले तु सप्तमी ॥ द्वितीया च तृतीया च श्रावणे सितकृष्णयोः । प्रथमा च द्वितीया च नभस्ये मासि निंदिते ॥ दशम्येकादशी निंद्या मार्गीषे शुक्लकृष्णयोः । ऊर्जे चतुर्दशी शुक्ला कृष्णपक्षे तु पंचमी ॥ सप्तमी चाष्टमी सौम्ये पक्षयोरुभयोरपि । पौषे पक्षद्वये चैव चतुर्थी पंचमी तथा ॥ माघे तु पंचमी षष्ठी शुक्ले कृष्णे यथाक्रमम् । तृतीया च चतुर्थी च फाल्गुने सितकृष्णयोः ॥ तिथयो मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशनाः । आसु श्राद्धं प्रकुर्वीत नैव मंगलमाचरेदिति ॥ १० ॥

अथ नक्षत्रसंबंधिदोषान् सार्धानुष्टुब्द्वयेनाह—

तथा निंद्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे ॥ ११ ॥
अनुराधा द्वितीयायां पंचम्यां पित्र्यभं तथा ॥
त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी ॥ १२ ॥
स्वातीचित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे ॥
नवम्यां कृत्तिकाष्टम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी ॥ १३ ॥

तथेति । अनुराधेति । स्वातीति च ॥ शुभे कृत्ये द्वादश्यां सार्पमाश्लेषा निंद्या । आदिमे प्रतिपदि वैश्वमुत्तराषाढा । राक्षसं मूलम् । लल्लः । द्वितीयया चानुराधा त्र्युत्तराश्च तृतीयया । पंचम्या च मघा युक्ता चित्रास्वात्योस्त्रयोदशी ॥ प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि । सप्तम्यां हस्तमूले च षष्ठ्यां ब्राह्मं भवेद्यदि ॥ पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्यां च रोहिणी । द्वादश्यां च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदीत्यादि । एषु कार्ये कृते चेत्स्यात्षण्मासान्मरणं ध्रुवमिति ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ चैत्रादिमासेषु शून्यनक्षत्राण्यनुष्टुब्द्वयेनाह—

कदास्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ ॥
वैश्वश्रुती पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे ॥ १४ ॥
चित्राद्वीशे शिवाश्व्यर्काः श्रुतिमूले यमेंद्रभे ॥
चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः ॥ १५ ॥

कदास्रेति । चित्रेति च ॥ कदास्रभे रोहिण्यश्विन्यौ चैत्रे शून्ये नक्षत्रे । एषु शुभकार्यं न कार्यम् । यतो वित्तविनाशदाः धननाशकरा इत्यर्थः । एवं वैशाखे त्वाष्ट्रवायू

Aho ! Shrutgyanam

चित्रास्वात्यौ शून्यभे । पाशी वरुणस्तद्भं शततारा अजपात्पूर्वाभाद्रपदा । वासिष्ठः । अश्विनी रोहिणी चैत्रे शून्यभे परिकीर्तिते । चित्रा स्वाती च वैशाखे ज्येष्ठे विश्वेज्यतारके ॥ भगवासवमाषाढे श्रावणे हरिविश्वभे । नभस्ये वारुणात्यर्क्षमजपादाश्वयुज्यपि ॥ कार्तिके पितृवह्न्यृक्षे सौम्ये चित्राह्निदैवते । पौषे दस्त्रकरार्द्राः स्युर्माघे मूलं च विष्णुभम् ॥ तपस्ये शक्रभरणी शून्यभान्याहुरग्रजाः । एषु यत्तु कृतं कर्म धनैः सह विनश्यतीति ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ चैत्रादिमासेषु शून्यराशीननुष्टुभाह—

घटो झषो गौर्मिथुनं मेषकन्यालितौलिनः ॥
धनुः कर्को मृगः सिंहश्चैत्रादौ शून्यराशयः ॥ १६ ॥

घट इति ॥ वसिष्ठः । घटमत्स्यवृषा युग्ममेषकन्याः सवृश्चिकाः । तुला चापकुलीराख्या मृगसिंहाश्च राशयः । चैत्रादौ मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशना इति ॥ १६ ॥

अथ विषमतिथिषु दग्धलग्नानींद्रवज्रयाह—

पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ मृगेंद्रनक्रौ मिथुनांगने च ॥
चापेंदुभे कर्कहरी हयांत्यौ गोंऽत्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने ॥ १७ ॥

पक्षादित इति ॥ शुक्लपक्षकृष्णपक्षादितः प्रतिपदमारभ्य ओजतिथौ विषमतिथौ प्रतिपत्तिथौ घटैणौ तुलामकरौ तृतीयायां मृगेंद्रनक्रौ सिंहमकरौ पंचम्यां मिथुनकन्ये सप्तम्यां चापेंदुभे धनुःकर्कौ नवम्यां कर्कहरी कर्कसिंहौ एकादश्यां हयांत्यौ धनुर्मीनौ त्रयोदश्यां गोंऽत्यौ वृषमीनौ एते तिथिशून्यलग्ने तस्यां तस्यां तिथौ नेष्टे निषिद्धे । वसिष्ठः । मृगसिंहौ तृतीयायां प्रथमायां तुलामृगौ । पंचम्यां बुधराशी द्वौ सप्तम्यां चापचंद्रभे ॥ नवम्यां सिंहकीटाख्यावेकादश्यां गुरोर्गृहे । वृषमीनौ त्रयोदश्यां दग्धसंज्ञास्त्वमी ग्रहाः । दग्धसद्मनि यत्कर्म कृतं सर्वं प्रणश्यति ॥ १७ ॥

अथैषां दुष्टयोगानां शुभकृत्यावश्यकत्वे सति परिहारमाह—

तिथयो मासशून्याश्च शून्यलग्नानि यान्यपि ॥
मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु तु ॥ १८ ॥
पंग्वंधकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः ॥
गौडमालवयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिताः ॥ १९ ॥

तिथयो मासशून्या इति द्वाभ्याम् ॥ पंग्वंधकाणलग्नानि विवाहप्रकरणे वक्ष्यंते । नारदः । चंद्रे चैव त्रिकोणे च शुभे ह्युपचयेऽपि वा । एकोऽपि बलवांश्चापि शून्यतिथ्युडुनाशक इति ॥ १८ ॥ १९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ हस्तार्कादिसिद्धियोगानां तिथिविशेषेणातिनिंद्यत्वमनुष्टुब्द्वयेनाह–

वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्कं पंचमीतिथौ ॥
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठ्यां चंद्रैंदवं तथा ॥ २० ॥
बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम् ॥
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादश्यां शनिरोहिणीम् ॥ २१ ॥

वर्जयेदिति । बुधानुराधामिति च ॥ श्रीपतिः । हस्ते रवौ शशधरे च मृगोत्तमांगं भौमेऽश्विनी बुधदिने च तथानुराधा । पुष्यो गुरौ भृगुसुतेऽपि च पौष्णधिष्ण्यं रोहिण्यथार्कतनयेऽमृतसिद्धियोगाः ॥ एते पंचम्यादितिथिषु चेद्भवंति तदा वर्ज्याः । यथा । पंचम्यां हस्तार्को वर्ज्यः एवमग्रेऽपि सप्तमीषष्ठ्यादौ । उक्तं च । अर्के हस्तः पंचमी च सोमे षष्ठी च चंद्रभम् । अश्विनी सप्तमी भौमे बुधे मैत्रं तथाष्टमी ॥ गुरौ पुष्यं च नवमी दशमी रेवती भृगौ । एकादशी शनौ ब्राह्मं वर्जयेत्सर्वदा बुध इति ॥ २० ॥ २१ ॥

अन्यदप्याह–

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम् ॥
भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

गृहप्रवेश इति ॥ ननु भौमाश्विन्यादीनां गृहप्रवेशादौ स्वत एव वा नक्षत्रदोषादप्राप्तेः किमर्थमिदं वचनम् । उच्यते । यदि विष्टिर्व्यतीपातो दिनं वाप्यशुभं भवेत् । हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथेति वचनात् । कार्यमात्रे प्राशस्त्यप्राप्तेरावश्यकत्वे प्रवेशादिसंभावना स्यात्तदर्थमपवादवचनं युक्तमेव ॥ २२ ॥

अथानंदादियोगान् शालिन्युपजातिकाभ्यामाह–

आनंदाख्यः कालदंडश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतू क्रमेण ॥
श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुंबौ ॥ २३ ॥
उत्पातमृत्यू किल काणसिद्धी शुभोऽमृताख्यो मुसलं गदश्च ॥
मातंगरक्षश्चरसुस्थिराख्यः प्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना ॥ २४ ॥

आनंद इति । उत्पात इति च ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथैषां गणनोपायमनुष्टुभाह–

दास्रादर्के मृगादिंदौ सार्पाद्भौमे कराद्बुधे ॥
मैत्राद्गुरौ भृगौ वैश्वाद्गण्या मंदे च वारुणात् ॥ २५ ॥

दास्रादिति ॥ अथ नक्षत्राणां साभिजितां गणना कार्या । यतोऽष्टाविंशतियोगाः । यथार्कदिने दिननक्षत्रं श्रवणस्तदश्विनीतः साभिजिद्गणनया त्रयोविंशतिसंख्यमस्ति । तथा

Aho ! Shrutgyanam

सत्यानंदादियोगेषु त्रयोविंशतिसंख्यो गदयोगो जातः । एवमिंदुवारे मृगशीर्षाद्गणनयाऽनंदादयो ज्ञेयाः ॥ २९ ॥

अथैतेषु कियतां दुष्टयोगानामावश्यककृत्ये परिहारं शालिन्याह—

ध्वांक्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्यो वर्ज्या वेदाः पद्मलुंबे गदेऽश्वाः ॥
धूम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे ॥ २६ ॥

ध्वांक्ष इति ॥ ध्वांक्षवज्रमुद्गरयोगेषु आद्या इषुनाड्यः पंच घटिका वर्ज्याः । पद्मलुंबयोर्वेदाश्चतस्रः एवं गदेऽश्वाः सप्त धूम्रे भूरेकैव काणे घटिकाद्वयं मुसले द्वे घटिके । राक्षसमृत्यूत्पातकालाः सर्वे षष्टिघटिकात्मका वर्ज्याः । कालः कालदंडः । अत्रानुक्तेऽपि चरे योगे घटिकात्रयं वर्ज्यम् । उक्तं च ज्योतिःसागरे । ध्वांक्षेंद्रायुधमुद्गरेषु घटिकास्त्यज्यास्तु पंचादितः पद्मालुंबकयोश्चतस्र उदिता धूम्रे सदैका पुनः । द्वे काणे मुसलाह्वयेऽपि च गदे सप्तैव तिस्रश्चरे मृत्यूत्पातकरक्षसां दिनगतास्ताः कालदंडे तथा ॥ २६ ॥

अथ दोषापवादभूतान्नव योगाननुष्टुभाह—

सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसंमिते ॥
चंद्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसंघविनाशकाः ॥ २७ ॥

सूर्यभादिति ॥ सूर्यो यत्र तन्नक्षत्रमारभ्य चंद्रर्क्षे दिननक्षत्रे चतुर्नव षड् दश त्रयोदश विंशतिसंख्याके सति रवियोगाः स्युस्ते च दोषसमूहानां नाशकराः । उक्तं च । सूर्याच्चतुर्थे दशमे च षष्ठे विश्वर्क्षके विंशतिमे नवर्क्षे । भवंति षड्भानुसदृक्षयोगाः कुयोगविध्वंसकराः शुभेषु ॥ २७ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु नक्षत्रविशेषैः सिद्धियोगानिंद्रवज्रोपजातिकाभ्यामाह—

सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चंद्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम् ॥
भौमेऽश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचांद्रम्॥२८॥
जीवेऽत्यमैत्राश्व्यदितीज्यधिष्ण्यं शुक्रेऽत्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम्।
शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः ॥ २९ ॥

सूर्य इति । जीव इति च ॥ रविवारे हस्तमूलत्र्युत्तरापुष्याश्विनीनक्षत्राणि पूर्वैराचार्यैः सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि । एवं चंद्रे श्रवणादीनि । एते सिद्धियोगा दास्रादर्के मृगादिंदावित्यादिप्रकारेणानंदादिसमीचीनयोगसंबंधिनक्षत्रैरुपनिबद्धाः । भीमपराक्रमेण कुयोगा अप्युक्ताः । ज्येष्ठावह्निमघाविशाखवसवो मैत्रं यमाख्यं रवौ सोमे शैवविशाखपुष्यपवनाश्चित्रा त्वषाढाद्वयम् । भौमे विश्वजलेशमित्रवसवः प्राग्भाद्रसार्पौ शिवः शूलीरेवतिपूर्वयोनिभरणीवस्त्वश्विमूला बुधे ॥ जीवे मूलमघार्द्रयाम्यवरुणाः पूषा शशी रोहिणी शुक्रे स्वा-

Aho ! Shrutgyanam

तिभुजंगदैवतमघापुष्योत्तरा रोहिणी । सौरावर्यममूलहस्तवरुणाषाढाद्वयं रेवती चित्राविष्णु-मघाश्च सर्वसमये त्याज्या अयोगा बुधैरिति ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथावश्यकवर्ज्यत्वेन झटित्युपस्थित्यर्थमुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगान् शालिन्याह—

द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्याद्र्यमर्क्षाच्चतुर्भैः ॥
स्यादुत्पातो मृत्युकाणौ च सिद्धिर्वारेऽर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम्॥३०॥

द्वीशादिति ॥ विशाखादिचतुर्नक्षत्रैरुत्पातमृत्युकाणसिद्धियोगा रविवारे स्युः । यथा रवौ विशाखा उत्पातः अनुराधा मृत्युः ज्येष्ठा काणः मूलं सिद्धिरिति । एवं सोमवारादौ पूर्वाषाढादितो ज्ञेयम् । तत्फलं नामसदृशम् । उत्पातमृत्युकाणा निषिद्धाः सिद्धिः शुभ इत्यर्थः । नारदः । विशाखादिचतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात् । उत्पातमृत्युकाणाख्ययोगाश्चामृतसंयुता इति ॥ ३० ॥

अथ देशविशेषेण कुयोगानां परिहारमनुष्टुभाह—

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ॥
हूणवंगखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ३१ ॥

कुयोगा इति ॥ तिथिवारोत्थाः कुयोगाः क्रकचादयः तिथिभोत्था अनुराधा द्वितीयायामित्यादयः भवारजा याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवमित्यादयः तथा त्रितयजास्तिथिवारनक्षत्रजाः वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्के पंचमीतिथावित्येवमादयस्ते सर्वे हूणवंगखशदेशेष्वेव वर्ज्याः अन्यदेशे न निषिद्धा इत्यर्थः । नारदः । तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसंभवाः । हूणवंगखशेभ्योऽन्यदेशेष्वेते शुभप्रदा इति ॥ ३१ ॥

अथ समस्तशुभकृत्ये वर्ज्यान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सर्वस्मिन्विधुपापयुक्तनुलवावर्धे निशाह्नोर्घटी-
त्र्यंशं वै कुनवांशकं ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयम् ॥
उत्पातग्रहतोऽद्र्यहांश्च शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं
षण्मासं ग्रहभिन्नभं त्यज शुभे यौद्धं तथोत्पातभम् ॥ ३२ ॥

सर्वस्मिन्निति ॥ सर्वस्मिन्शुभे कार्ये एतानि वै निश्चयेन त्यज परिहरेत्यर्थः । विधुना पापेन वा पापैः क्षीणेंद्वर्कमहीसुतार्कतनयैर्वा युजौ युक्तौ तनुलवौ लग्ननवांशौ त्याज्यौ । पूर्णः क्षीणोऽपि वा चंद्रो लग्ने सर्वत्र गर्हित इति कश्यपोक्तेः । पापेंदू लग्नगौ वांशगतौ वर्ज्यौ शुभे सदेति च । निशाह्नोरर्धे रात्र्यर्धे दिनार्धे च घटीत्र्यंशं विंशतिपलानि दश पूर्वं दश पश्चाच्च परिहर । उक्तं च । मूर्तः कालो निवसति महानिशायां च दिनदले यस्मात् । दश पूर्वं दश परतस्तस्माद्वर्ज्यानि च पलानि । कुनवांशकं पापग्रहनवांशकं परिहर । अथ ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयं परिहर । उत्पातग्रहतः उत्पाता दिव्यभौमांतरिक्षास्ते यस्मिन् दिने भवंति ततो

Aho ! Shrutgyanam

ग्रहांश्च सप्त दिनानि वर्ज्यानि । ग्रहो ग्रहणं तस्मादपि सप्त दिनानि वर्ज्यानि । उक्तं च । चंद्रसूर्योपरागेषु त्र्यहं पूर्वं शुभे त्यजेत् । सप्ताहमशुभं पश्चात्स्मृतं ग्रहणसूतकम् ॥ त्रिविधोत्पाततश्चोर्ध्वं सिंहिकासूनुदर्शने । सप्तरात्रं न कुर्वंति यात्रोद्वाहादि मंगलमिति ॥ अंगिरा अपि । सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम् । त्रिद्व्येकांगुलतो ग्रासे दिनमेकं विवर्जयेत् ॥ वसिष्ठः । सर्वग्रासे दिनान्यष्टौ सर्वकार्ये विवर्जयेत् । षट् दिनानि त्रिभागोने अर्धग्रासे चतुर्दिनम् ॥ चतुर्थांशे त्रिरात्रं स्याद्ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । अत्र कार्यस्यावश्यकत्वे परिहारो ज्योतिर्निबंधे । पंच दिनानि वसिष्ठस्त्रिदिनं गर्गश्च कौशिकस्त्वेकम् । यवनाचार्यस्य मतं पंच मुहूर्तानि दूषयति राहुरिति । अयं च निषेधो नित्यनैमित्तिकादिकृत्यातिरिक्तविषयः । गुरुः । नित्ये नैमित्तिके काम्ये जपहोमक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यत इति । शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनमिति । शुभदोत्पाता वराहसंहितायाम् । चंडाशनिमहीकंपसंध्यानिर्वातनिःस्वनाः । परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमनोदयाः ॥ दुर्मेध्यान्नरसस्नेहमधुपुष्पफलोद्गमाः । गोपक्षिमदवृद्धिश्च शुभाय मधुमाधवे ॥ इत्यादय ऋतुपरत्वेनोक्ताः । एते यद्दिने भवंति तद्दिनमेव त्यज । अथ ग्रहभिन्नभं ग्रहैर्भौमादिभिर्भिन्नं भेदितं तथा यौद्धं ग्रहयोर्युद्धं यस्मिन् दिननक्षत्रे जातं तथोत्पातभं यस्मिन्नक्षत्रे दिव्यांतरिक्षभौमास्त्रिविधोत्पाताः संभूताः । एतानि ग्रहभिन्नयौद्धोत्पातनक्षत्राणि षण्मासं त्यज । भेदस्ताराखेटयोर्यत्र वा स्यादिति विवाहवृंदावने नारदः । ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मंगलेषु ऋतुत्रयमिति । ननु नक्षत्रसंधौ जायमाने ग्रहणे किं नक्षत्रं दूषयेदित्यत्राह । शार्ङ्गधरः । यस्मिन् विधुं राहुरिनं च धिष्ण्ये गृह्णाति तत्त्याज्यमृतुत्रयं स्यात् । पाणिग्रहे पुंमरणं विधत्ते द्वयोर्भयोश्चेद्द्वयमेव जह्यात् ॥ अन्यच्च । पक्षांतरेण ग्रहणद्वयं स्याद्यदा तदा तद्ग्रहणोपगं भम् । पक्षाद्विशुद्धं भवति द्वितीयं पाणिग्रहे शुध्यति भोगषट्कादिति ॥ ३२ ॥

अथ ग्रहणनक्षत्रे ग्रासभेदेन निंद्यान्मासान् दिवसांश्चेंद्रवज्रयाह—

नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेंदुमासान् ॥
पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्रा ग्रस्तेऽस्तगे वाभ्युदितेऽर्धखंडे ॥ ३३ ॥

नेष्टमिति ॥ ग्रहर्क्षं ग्रहणनक्षत्रं क्रमात्संपूर्णार्धचतुर्थांशग्रासे सति षट्त्र्येकमासान्नेष्टम् । गुरुः । सर्वग्रासेषु षण्मासांस्त्रीन्मासांस्तु दले ग्रहे । आपादग्रहणे धिष्ण्ये मासमेकं विवर्जयेत् । अथ क्रमाद्ग्रस्तेऽस्तगे वाऽभ्युदितेऽर्धखंडे पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्रा नेष्टाः । ग्रस्तास्ते पूर्वं त्रिदिनं नेष्टम् । ग्रस्तोदये पश्चात्त्रिदिनं नेष्टम् । अर्धखंडे ग्रस्तास्तग्रस्तोदययोरभावेऽपि अर्धग्रासे उभयोः प्राक्पश्चाच्च त्रित्रिघस्रा नेष्टाः । गुरुः । ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चाद्ग्रस्तोदये तथा । खंडग्रासे त्रित्रिदिनं निःशेषे सप्त सप्त चेति । कश्यपः । ग्रस्तोदये परो दोषो ग्रस्तास्तेऽवाक् शशीनयोः । द्युनिशार्धे तूभयं तत्खंडाखंडव्यवस्थयोरिति ॥ ३३ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ सामान्यतोऽवश्यवर्ज्यानि पंचांगदूषणादीनि वसंततिलकानुष्टुब्भ्यामाह—

जन्मर्क्षमासतिथयो व्यतिपातभद्रा-
वैधृत्यमापितृदिनानि तिथिक्षयर्धी ॥
न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्धपात-
विष्कंभवज्रघटिकात्रयमेव वर्ज्यम् ॥ ३४ ॥
परिघार्धं पंच शूले षट् च गंडातिगंडयोः ॥
व्याघाते नव नाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु ॥ ३५ ॥

जन्मर्क्षेति । परिघार्धमिति च ॥ जन्मनक्षत्रजन्ममासजन्मतिथयः शुभकर्मसु वर्ज्याः । अयं निषेध आद्यगर्भस्यैव । नारदः । न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा । आद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रह इति । जन्ममासलक्षणं जगन्मोहने वृद्धगर्गः । आ-रभ्य जन्मदिवसं यावत्रिंशद्दिनं भवेत् । जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु । वस्तुतस्तु यत्र शुक्लादिचांद्रमासे चैत्रादौ जन्माभूत् स चांद्रो मासो जन्ममासतया त्याज्यः । इंद्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः संप्रकीर्तितः । अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकाविति हारी-तोक्तमासलक्षणात् । व्यतीपातादयश्च वर्ज्याः पितृदिनं मातापित्रोर्मरणदिनं श्राद्धदिन-मित्यर्थः । तिथिक्षयर्धी तिथिक्षयस्तिथिवृद्धिश्च तल्लक्षणमाह । वसिष्ठः । स्युस्तिस्रस्तिथयो वारे एकस्मिन्नवमा तिथिः । तिथिर्वारत्रये चैका त्रिद्युस्पृग्द्वेऽपि निंदिते । न्यूनमासोऽधिमासश्च वर्ज्यः । संक्रमद्वयसहितः क्षयमासः अधिकमासोऽसंक्रांतः । कुलिकार्धप्रहरौ वक्ष्यमाणौ पातो महापातः । विष्कंभयोगवज्रयोगयोराद्यं घटिकात्रयमेव वर्ज्यम् । एवकारेण कैश्चिद्व-ज्रयोगे नव घटिका वर्ज्या इति यदुक्तं । यथा । विष्कंभाद्यघटीत्रयं च नवकं व्याघातव-ज्रोद्भवमिति वृत्तशते । तथा । व्याघाते वज्रकेंऽका इति गणेशज्योतिर्विदुक्तिरपि निरस्ता । विष्कंभवज्रयोस्तिस्रः षट् च गंडातिगंडयोः । व्याघाते नव शूले तु पंच नाड्यो विगर्हिता इति कश्यपोक्तेः । परिघस्याद्यार्धं वर्ज्यम् । शूलस्याद्याः पंच गंडातिगंडयोराद्याः षट् षट् घ-टिकाः । व्याघाते चादिमा नव घटिका वर्ज्याः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ पक्षरंध्रतिथीरावश्यकत्वे तन्निष्ठवर्ज्यघटीश्चानुष्टुभाह—

वेदांगाष्टनवार्केंद्रपक्षरंध्रतिथौ त्यजेत् ॥
वस्वंकमनुतत्त्वाशाशरा नाडीः पराः शुभाः ॥ ३६ ॥

वेदांगेति ॥ चतुर्थी षष्ठी अष्टमी नवमी द्वादशी चतुर्दशी एताः पक्षरंध्रतिथयो ज्ञेयाः आसु शुभकृत्यस्यावश्यकत्वे सति आदिमाः क्रमाद्वस्वंकमनुतत्त्वाशाशरा नाडीस्त्यजेत् । यथा । चतुर्थ्यामादिमा अष्ट घटिकाः षष्ठ्यां नव अष्टम्यां चतुर्दश नवम्यां पंचविंशतिः

Aho ! Shrutgyanam

द्वादश्यां दश चतुर्दश्यां पंच घटिकास्त्याज्या इत्यर्थः । परा उर्वरिताः शुभा ज्ञेयाः । वसिष्ठः। चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वया इमाः । क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूताष्टमनुतत्त्वांकदश शेषास्तु शोभनाः । दोषनाडीषु यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यतीत्यादि । कश्यपेन सर्वसाधारण्येन दशैव वर्जिताः ॥३६॥

अथ कुलिककालवेलायमघंटकंटकदोषाननुष्टुभाह—

कुलिकः कालवेला च यमघंटश्च कंटकः ॥
वाराद्विघ्ने क्रमान्मंदे बुधे जीवे कुजे क्षणः ॥ ३७ ॥

कुलिक इति ॥ वर्तमानवारान्मंदे शनैश्चरे गणिते सति योंऽको भवति तस्मिन् द्विगुणे योंऽकस्तत्संख्यालक्षणो मुहूर्तः कुलिको भवति । एवं बुधे जीवे भौमे वर्तमानवाराद्गणिते योंऽको भवति स स द्विघ्नः क्रमात् कालवेलायमघंटकंटकसंज्ञा दुष्टमुहूर्ताः स्युः । यथा रवितः शनिः सप्तसंख्याकस्तस्मिन् द्विगुणे चतुर्दश जाताः । तेन रवौ चतुर्दशो मुहूर्तः कुलिकः । एवं बुधे संख्या चत्वारः तद्द्विगुणोऽष्टमो मुहूर्तः कालवेला जीवे पंच द्विघ्ने दशमो यमघंटः । भौमे तृतीये द्विघ्ने षष्ठो मुहूर्तः कंटकसंज्ञ इत्यर्थः । एवं सोमवारादावपि । अथ शुभकृत्यावश्यकत्वे सति देशभेदेन कुलिकादिदोषपरिहारमाह । गर्गः । विंध्यस्योत्तरकूले तु यावदातुहिनाचलम् । यमघंटकदोषोऽस्ति नान्यदेशेषु विद्यते । मत्स्यांगमागधांध्रेषु यमघंटस्तु दोषकृत् । काश्मीरे कुलिकं दुष्टमर्धयामस्तु सर्वत इति । केचिन्मते । स्यात्कालवेला रवितः शराक्षि तर्कानलांगांबुधयो ५,२,६,३,६,४ गजेंदू ॥ ८, १ दिने निशायामृतुवेदनेत्रनगेषु रामा ६,४;२,७,५,३ विधुदंतिनौ १, ८ च॥ गजेंदू इत्यर्धप्रहरद्वयं शनौ । यात्रायां मरणं काले वैधव्यं पाणिपीडने । व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तः शुभकर्म ततस्त्यजेत् । गौडाः । सूर्ये वेदशरौ ४,५ चंद्रे हयपक्षौ ७,२ कुजेऽक्षिभूः २,१ ॥ ज्ञे बाणाग्नी ५,३ गुरौ दंतिहयौ ८,७ शुक्रे त्रिवेदकौ ३,४ ॥ मंदे तर्कगजौ ६,८ ज्ञेयौ यामार्धावशुभौ सदेति ॥ ३७ ॥

अथ सूर्यादिवारेषु शिष्याणां सद्य एव दोषज्ञानार्थं दुर्मुहूर्तादिनामकान् मुहूर्तान् शार्दूलविक्रीडितवसंततिलकाभ्यामाह—

सूर्ये षट्स्वरनागदिङ्मनुमिताश्चंद्रेऽब्धिषट्कुंजरांकार्का विश्वपुरंदराः क्षितिसुते द्व्यब्ध्यग्नितर्का दिशः ॥ सौम्ये द्व्यब्धिगजांकदिङ्मनुमिता जीवे द्विषड्भास्कराः शक्राख्यास्तिथयः कलाश्च भृगुजे वेदेषु तर्कग्रहाः ॥ ३८ ॥ दिग्भास्करा मनुमिताश्च शनौ शशिद्विनागा दिशो भ-

Aho ! Shrutgyanam

वद्दिवाकरसंमिताश्च ॥ दुष्टक्षणः कुलिककंटककालवेलाः स्युश्चार्धयामयमघंटगताः कलांशाः ॥ ३९ ॥

सूर्ये इति । दिग्भास्करा इति च ॥ रविवारे षष्ठसप्ताष्टमदशमचतुर्दशमुहूर्ता निंद्याः । एवं सर्वत्र । अयमर्थो मूले न्यासतः स्पष्ट एव । एषु मुहूर्तेषु कश्चिद्दुर्मुहूर्तः कश्चित् कुलिकः कंटकः कालवेलाख्योऽर्धयामाख्यो यमघंटाख्यः स्यात् । तत्प्रमाणं कलांशः दिनमानस्य षोडशांशः ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥

अथ विवाहादिशुभकृत्ये होलिकाष्टकनिषेधं देशपरत्वेनाह—

विपाशेरावतीतीरे शुतुद्र्याश्च त्रिपुष्करे ॥ विवाहादिशुभे नेष्टं होलिकाप्राग्दिनाष्टकम् ॥ ४० ॥

विपाशेति ॥ विपाशा इरावती शतद्रूः । एताः पश्चिमदेशप्रसिद्धा नद्यस्तासां तीरे उभयतटवर्तिदेशे त्रिपुष्करे देशे च होलिका फाल्गुनशुक्लपौर्णिमा ततः प्राक्दिनाष्टकं विवाहादिशुभकृत्ये नेष्टं निषिद्धम् । अर्थादन्यदेशे न निषिद्धम् ॥ ४० ॥

अथ मृत्युयोगादिदुष्टयोगपरिहारमनुष्टुभाह—

मृत्युक्रकचदग्धादीनिंदौ शस्ते शुभान् जगुः ॥ केचिद्यामोत्तरं चान्ये यात्रायामेव निंदितान् ॥ ४१ ॥

मृत्युक्रकचेति ॥ मृत्युयोगा दास्त्रादर्के इत्यादिनाऽऽनंदादिषूक्ताः । क्रकचाः षष्ठ्यादितिथयो मंदाद्विलोमामित्युक्ताः । दग्धादियोगाः सूर्येशपंचाग्नीत्यादिनोक्ताः । चंद्रे शस्ते कर्तुर्गोचरेण समीचीने सति एतान् योगान् शुभान् शुभफलदान् जगुरूचुः । राजमार्तंडः । क्रकचा मृत्युयोगाख्या दिनं दग्धं तथैव च । चंद्रे शुभे क्षयं यांति वृक्षा वज्रहता इव । अथ केचिदाचार्याः यामोत्तरं प्रहरोत्तरं मृत्युक्रकचदग्धादीन् शुभान् जगुः । स एवाह । उत्पाते यमघंटे च काणे च क्रकचे तथा । तिथौ दग्धे च काले च प्राग्यामात्परतः शुभमिति । अथान्य आचार्या मृत्युक्रकचदग्धादीन् यात्रायामेव निंदितान् जगुः विवाहादौ तु न दोषः । लल्लः । वारर्क्षतिथियोगेषु यात्रामेव विवर्जयेत् । विवाहादीनि कुर्वीत गर्गादीनामिदं वचः । निंद्येष्विति शेषः । अन्यच्च । अयोगेषु च सर्वेषु वर्जयेद्घटिकाद्वयम् । उत्पातमृत्युकाणानां पंच षट् सप्त नाडिकाः ॥ ४१ ॥

पुनरप्यपवादं भुजंगप्रयातेनाह—

अयोगे सुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति ॥ परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशं दिनार्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम् ४२

Aho ! Shrutgyanam

अयोग इति ॥ अयोगे क्रकचादौ सति चेत्सुयोगः सिद्धियोगोऽपि स्यात् । तदा एष सिद्धियोगः अयोगफलं निहत्य सिद्धिं तनोति निष्पादयति । मार्तंडः । अयोगः सिद्धियोगश्च द्वावेतौ भवतो यदि । अयोगो हन्यते तत्र सिद्धियोगः प्रवर्तते । परे आचार्याः लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशमाहुः । यदाह स एव । यत्र लग्नं विना किंचित्क्रियते शुभसंज्ञकम् । तत्र तेषामयोगानां प्रभावाज्जायते फलम् । अथावश्यककृत्ये कालांतराभावे परिहारमाह । विष्टिपूर्वमिति । विष्टिर्भद्रा सा पूर्वादिर्यस्य विष्ट्यादिकं मध्याह्नानंतरं शस्तमाहुः । उक्तं च । विष्टिरंगारकश्चैव व्यतीपातः सवैधृतिः । प्रत्यरिर्जन्मनक्षत्रं मध्याह्नात्परतः शुभमिति ॥४२॥

अथ भद्रां शालिन्याह–

शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपंचदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे ॥
कृष्णेंऽत्यार्धे स्यात्तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशंभुतिथ्योः॥४३॥

शुक्ल इति ॥ शुक्ले शुक्लपक्षेऽष्टम्यां पूर्णिमायां च पूर्वार्धे भद्रा स्यात् । एकादश्यां चतुर्थ्यां चोत्तरार्धे भद्रा । कृष्णे पक्षे तृतीयायां दशम्यां च अंत्यार्धे उत्तरार्धे । सप्तम्यां शंभुतिथौ चतुर्दश्यां च पूर्वार्धे पूर्वभागे भद्रा स्यात् । भद्रास्वरूपं रत्नमालायाम् । उद्बद्धोद्भटतरेत्यादि ॥ ४३ ॥

अथ चतुर्थ्यादितिथिषु भद्राया मुखपुच्छविभागं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

पंचद्व्यद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघव्यः शरा
विष्टेरास्यमसद्गजेंदुरसरामाद्र्यश्विबाणाब्धिषु ॥
यामेष्वंत्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे
विष्टिस्तिथ्यपरार्धजाशुभकरी रात्रौ च पूर्वार्धजा ॥ ४४ ॥

पंचद्व्यद्रीति ॥ चतुर्थ्यादितिथीनां पंचादिप्रहरेषु आदिघव्यः शराः पंचसंख्या विष्टेर्भद्राया आस्यं मुखम् । यथा । चतुर्थ्याः पंचमप्रहरे आदिभूताः पंच घव्यो भद्रामुखम् । एवमष्टम्यां द्वितीयप्रहरे एकादश्यां सप्तमप्रहरे पूर्णिमायां चतुर्थप्रहरे तृतीयायामष्टमे सप्तम्यां तृतीये दशम्यां षष्ठे चतुर्दश्यां प्रथमे प्रहरे भद्रामुखं स्यात् तदसत् अशुभमित्यर्थः । अथ पुनश्चतुर्थ्यादितिथीनां क्रमेण गजेंद्वित्यादिप्रहरेषु अंत्यं अंते भवं घटीत्रयं पुच्छसंज्ञं तच्छुभकरम् । यथा । चतुर्थ्या अष्टमप्रहरस्यांत्यघटीत्रयं भद्रापुच्छम् । एवमष्टम्यादिषु प्रथमादिप्रहरस्यांत्यघटीत्रयं पुच्छं ज्ञेयम् । तत्र भद्राकर्माणि । वसिष्ठः । वधबंधविषाग्न्यस्त्रच्छेदनोच्चाटनादि यत् । तुरंगमहिषोष्ट्रादि कर्म विष्ट्यां तु सिद्ध्यति ॥ अंगविभागः कश्यपसंहितायाम् । मुखे पंच गले त्वेका वक्षस्येकादश स्मृताः । नाभौ चतस्रः षट् कट्यां तिस्रः पुच्छे तु नाडिकाः ॥ कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसि निःस्वता । कट्यामुन्मत्तता

Aho ! Shrutgyanam

नाभौ च्युतिः पुच्छे ध्रुवो जयः ॥ अथ विष्टिपरिहारमाह । तथेति ॥ .तिथ्यपरार्धजा ति-थ्युत्तरार्धभूता विष्टिर्वासरे दिवसे यदि स्यात्तदा शुभकरी । तथा तेनैव प्रकारेण तिथि-पूर्वार्धोत्था रात्रौ शुभकरी । लल्लः । दिवापरार्धजा विष्टिः पूर्वार्धोत्था यदा निशि । तदा विष्टिः शुभायेति कमलासनभाषितम् ॥ नारदस्तु निषेधमाह । करणानि बवादीनि शुभसं-ज्ञानि षट् क्रमात् । क्रमायाताक्रमायाता विष्टिर्नेष्टा तु मंगल इति ॥ ४४ ॥

अथ भद्रानिवासं तत्फलं चानुष्टुभाह–

कुंभकर्कद्वये मर्त्ये स्वर्गे ऽब्जेऽजात्रयेऽलिगे ॥
स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधो भद्रा तत्रैव तत्फलम् ॥ ४५ ॥

कुंभकर्केति ॥ अब्जे चंद्रे कुंभद्वये कुंभमीनस्थे कर्कद्वये कर्कसिंहराशिस्थिते मनु-ष्यलोके भद्रा तिष्ठति । अथ मेषात्रये मेषवृषमिथुनस्थिते अलिगे वृश्चिकस्थे चंद्रे च स्वर्ग-लोके भद्रा तिष्ठति । कन्यातुलाधनुर्मकरराशिषु चंद्रे अधः पाताललोके भद्रा तिष्ठति । तत्रैव मर्त्यस्वर्गपातालेषु फलं स्वोक्तं शुभाशुभं भद्रा ददातीत्यपवादद्वारा प्रयोजनमुक्तं भ-वति । उक्तं च । मेषोक्षकौर्प्यमिथुने घटसिंहमीनकर्केषु चापमृगतौलिसुतासु चंद्रे । स्वर्म-र्त्यनागनगरीः क्रमशः प्रयाति विष्टिः फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे । उक्तं च भूपा-लवल्लभे । कर्ककुंभद्वये भूस्था कौर्प्येऽजत्रितये द्युगा । कन्याचापद्वये चंद्रे भद्रा पाता-लवासिनी ॥ ४५ ॥

अथ कालशुद्धौ निषेध्यवस्तूनि शार्दूलविक्रीडितेनाह–

वाप्यारामतडागकूपभवनारंभप्रतिष्ठे व्रता-
रंभोत्सर्गवधूप्रवेशनमहादानानि सोमाष्टके ॥
गोदानाग्रयणप्रपाप्रथमकोपाकर्मवेदव्रतं
नीलोद्वाहमथातिपन्नशिशुसंस्कारान्सुरस्थापनम् ॥ ४६ ॥

वाप्यारामेति ॥ वापी दीर्घिका आराम उपवनम् तडागः पुष्करिणी कूपः प्र-सिद्धः भवनं गृहम् एतेषामारंभप्रतिष्ठे । आरंभो निर्माणं प्रतिष्ठा उत्सर्गः तत्र गृहप्रतिष्ठा गृहप्रवेशो ज्ञेयः । व्रतानामनंतव्रतादीनामारंभो ग्रहणं उत्सर्ग उत्थापनम् । महादानानि तुला-पुरुषादीनि सोमः सोमयागः अष्टका अष्टकाश्राद्धं गोदानं केशांतसंज्ञं कर्म आग्रयणं न-वान्नेष्टिः । प्रपा जलशाला प्रथमकोपाकर्म प्रथमारभ्यमाणं श्रावणीकर्म वेदव्रतं महाना-म्न्यादित्रयं महानाम्नीव्रतमुपनिषद्व्रतं वेदव्रतं च नीलोद्वाहः काम्यवृषोत्सर्गः अतिपन्नशि-शुसंस्काराः अतिपन्ना अतिक्रांता जातकर्मादयः शिशूनां संस्काराः देवस्थापनम् ॥ ४६ ॥

अथान्यानि शार्दूलविक्रीडितेनाह–

Aho ! Shrutgyanam

दीक्षामौंजिविवाहमुंडनमपूर्वं देवतीर्थेक्षणं
संन्यासाग्निपरिग्रहौ नृपतिसंदर्शाभिषेकौ गमम् ॥
चातुर्मास्यसमावृती श्रवणयोर्वेधं परीक्षां त्यजे-
द्वृद्धत्वास्तशिशुत्व ईज्यसितयोर्न्यूनाधिमासे तथा ॥ ४७ ॥

दीक्षामौंजीति ॥ दीक्षा मंत्रग्रहणादिका मौंजीविवाहौ प्रसिद्धौ मुंडनं चौलम् अपूर्वं देवेक्षणं तीर्थेक्षणं च संन्यासः प्रसिद्धः अग्निपरिग्रहोऽग्निहोत्रम् अपूर्वं राजदर्शनं राजाभिषेकश्च गमं गमनमपूर्वमेव चातुर्मास्यं चातुर्मास्ययागः समावृतिर्मौंजीविसर्गः श्रवणयोर्वेधः कर्णवेधः परीक्षा तप्तमाषादिरूपा दिव्यमिति यावत् । एतानि कर्माणि बुधो न कुर्यात् । कदा ईज्यसितयोर्बृहस्पतिशुक्रयोर्वृद्धत्वे अस्ते च शिशुत्वे बाल्ये च तथा न्यूनाधिकमासे क्षयमासे अधिकमासे च न कुर्यात् । अत्र मूलवचनानि । शातातपः। अस्तं गते गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारंभं व्रतानां नैव कारयेत् । ऋक्षोच्चयः । वापीकूपतडागयागगमनं क्षौरं प्रतिष्ठा व्रतं विद्यामंदिरकर्णवेधनमहादानं वनं सेवनम् । तीर्थस्नानविवाहदेवभवनं मंत्रादिदेवेक्षणं दूरेणैव जिजीविषुः परिहरेदस्तं गते भार्गवे । उपनयनं गोदानं परिनयनगृहप्रवेशगमनानि । अस्तमितेषु न कुर्यात्सुरगुरुभृगुपुत्रचंद्रेषु ॥ अस्तमयादिफलमाह बादरायणः । गुरोरस्ते पतिं हन्याच्छुक्रास्ते चैव कन्यकाम् । चंद्रे नष्टे उभौ हन्यात्तस्मादस्तं विवर्जयेत् ॥ बालभावे स्त्रियं हन्याद्वृद्धभावे नरं तथा । तस्माद्बाल्ये च वार्द्धे च विवाहं नैव कारयेत् ॥ अथाधिमासे वर्ज्यानि गृह्यपरिशिष्टे । सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे । तथैवाग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि ॥ महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म ्यत् । स्पष्टमासविशेषाख्यविहितं वर्जयेन्मले ॥ गर्गबृहस्पती । अग्न्याधानं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च । वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः । मांगल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् । मरीचिः । गृहप्रवेशगोदानस्थानाश्रममहोत्सवम् । न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पेऽहस्पतौ तथा ॥ वसिष्ठः । वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा यज्ञकर्म च । न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पेऽहस्पतौ तथा ॥ यदा क्षयमासो भवति तदा क्षयमासस्य पूर्वोत्तरावधिमासौ भवतः। तत्र पूर्वः संसर्पो द्वितीयोंऽहस्पतिः।एतानि गुरुशुक्रयोरस्तादावपि वर्ज्यानीत्याहुः । गार्ग्यः। बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तंगते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ॥ अत्र देवदर्शनमपूर्वं विवक्षितम् । तदाह गर्गः । अपूर्वदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे । मलमासेऽप्यनावृत्ततीर्थयात्रां विवर्जयेत् ॥ अनावृत्ता अपूर्वतीर्थयात्रा । अत्र नियतकालानि सीमंतनामकरणादीनि गुर्वादेरस्तादिसत्त्वेऽपि स्वस्वकाल एव कार्याणि । गुरुः । मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वे गुरुशुक्रयोः । न दोषकृन्मले मासे गुर्वादित्यादिकं तथा ॥ अन्यत्रापि । सीमंतजातकादीनि प्राशनांतानि यानि वै । न दोषो मलमासस्य मौढ्यस्य गुरुशुक्रयोरिति॥

Aho ! Shrutgyanam

वसिष्ठः । अतीतकालान्यखिलानि तानि कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे । सिते गुरौ चाप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपंचांगदिनेऽप्यखंडे ॥ अत एवातिपन्नशिशुसंस्कारानित्युक्तम् ॥ ४७ ॥

अथ सिंहमकरस्थगुर्वादिष्वतिदेशमाह—

अस्ते वर्ज्यं सिंहनक्रस्थजीवे वर्ज्यं केचिद्वक्रगे चातिचारे ॥
गुर्वादित्ये विश्वघस्रेऽपि पक्षे प्रोचुस्तद्वद्दंतरत्नादिभूषाम् ॥ ४८ ॥

अस्ते वर्ज्यमिति ॥ यदस्ते गुर्वादेरस्ते वर्ज्यं निषिद्धमुक्तं तत् सिंहस्थे गुरौ मकरस्थे च गुरौ वर्ज्यं निषिद्धम् । देवीपुराणे । सिंहसंस्थे गुरौ यत्नात्सर्वारंभान्विवर्जयेत् । प्रारब्धं न च सिध्येत महाभयकरं भवेत् ॥ पुत्रभ्रातृकलत्राणि हन्याच्छीघ्रं न संशयः । कारको व्रजते नाशं संतानं म्रियतेऽचिरात् ॥ देवारामतडागानि प्रपोद्यानगृहाणि च । विवाहयज्ञोपनयचूडादि च न सिध्यति ॥ यथा सिंहस्थितो जीवस्तथैव मकरस्थितः । अयमपि निषेधो नियतकालानां न भवति । उक्तं च शार्ङ्गीये । सीमंतजातकादीनि प्राशनांतानि यानि वै । कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पंचाननगते गुरौ ॥ उपलक्षणमेतत् । संग्रहे वसिष्ठः । नीचराशिगतो जीवः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । नीचे नीचांशकस्त्याज्यो यस्मादंशेषु नीचता ॥ विशेषो मांडव्येनोक्तो देवीपुराणे । मकरस्थो यदा जीवो वर्जयेत्पंचमांशकम् । शेषेष्वपि च भागेषु विवाहः शोभनो मतः ॥ तोडरानंदः । अतिचारे सप्तदिनं वक्रे द्वादशमेव च । नीचस्थितेऽपि वागीशे मासमेकं विवर्जयेत् ॥ ज्योतिर्निबंधे । हरिनीचारिभागेऽपि व्रतोद्वाहादि मंगलम् । न निषिद्धं यदि स्वोच्चे स्वभे वा संस्थितो गुरुः ॥ मघां त्यक्त्वा यदा गच्छेत्फाल्गुनीं च बृहस्पतिः । पुत्रिणी धनिनी कन्या सौभाग्यं सुखमश्नुते । इति । क्वचिदपूर्वतीर्थयात्रायां मौढ्यादिदोषो नास्ति । गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । सुरासुराणां गुर्वोश्च मौढ्यदोषो न विद्यते ॥ वायुपुराणे त्रिस्थलीसेतौ । गयायां सर्वकालेषु पिंडं दद्याद्विधानतः । अधिमासे जन्मदिने ह्यस्ते च गुरुशुक्रयोः । न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ अधिमासे सिंहगुरावस्ते च गुरुशुक्रयोः । तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विनेति ॥ अथ गुर्वाद्यस्ते यद्वर्ज्यं तद्वक्रगे गुरावतिचारगेऽपि गुरौ वर्ज्यम् । वात्स्यः । यात्रोद्वाहप्रतिष्ठां च गृहचूडाव्रतादिकम् । वर्जयेद्यत्नतश्चैव जीवे वक्रातिचारगे ॥ अस्यापवादो राजमार्तंडे । वक्रातिचारगे जीवे वर्जयेत्तदनंतरम् । व्रतोद्वाहादि चूडायामष्टाविंशति वासरान् ॥ दीपिकायाम् । त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः । यदा तदा प्राह शुभं विलग्नं विवाहपाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥ अथ केचिद्गुरुसहिते आदित्ये एकराशिगतौ गुरुसूर्याविति यावत् । गुर्वादित्येऽपि सर्वं शुभकर्म वर्ज्यम् । शौनकः । एकराशिगतौ सूर्यजीवौ स्यातां यदा पुनः । व्रतबंधविवाहादि शुभं कर्माखिलं त्यजेत् ॥ अथ केचिद्विश्व-

Aho ! Shrutgyanam

घस्नेऽपि पक्षे यस्मिन्पक्षे तिथिद्वयनाशः स त्रयोदशदिनः पक्षः सोऽतिनिंद्यः । उक्तं च । पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोगः । पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवराः समस्ताः ॥ तथा । त्रयोदशदिने पक्षे तदा संहरते जगत् । अपि वर्षसहस्रेण कालयोगः प्रकीर्तित इति ॥ तस्मिन् पक्षे शुभकर्म वर्ज्यमित्याहुः । चंडेश्वरः । त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् । गर्गादिमुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत् ॥ उपनयनं परिणयनं वेश्मारंभादिपुण्यकर्माणि । यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः ॥ अथ तद्वत्तेनप्रकारेण दंतरत्नादिभूषां दंताहस्तिदंतास्तत्संबंधिनीं भूषां रत्नसंबंधिनीं भूषां च आदिशब्दात् सुवर्णमणिसंबंधिनीं च भूषां वर्ज्यां प्रोचुः । पूर्वस्मिन्निषेधकाले इत्यर्थः । राजमार्तंडः । यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवरविधिं शंखसद्मप्रवेशप्रासादोद्यानहर्म्यं सुरनरभवनारंभविद्याविधाने । मौंजीबंधं प्रतिष्ठां मणिकनकरदाधारणं कुर्वते ये मृत्युः सिंहस्थितेऽज्ये गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्चेति ॥ सिंहस्थगुरोरुपलक्षणत्वाद्गुर्वस्तादावपि प्रथमकर्तव्यसुवर्णादिधारणनिषेध इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

अथ सिंहस्थगुरोः प्रकारत्रयेण परिहारमिंद्रवज्रयाह—

सिंहे गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्टोऽथ गोदोत्तरतश्च यावत् ॥
भागीरथीयाम्यतटं हि दोषो नान्यत्र देशे तपनेऽपि मेषे ॥ ४९ ॥

सिंहे गुराविति ॥ अत्र प्रथममंशभेदेन परिहारः सिंहस्थे गुरौ सत्यपि सिंहांशे सत्र्यंशत्रयोदशांशे १३, २० भ्योऽनंतरं सत्र्यंशमंशत्रयम् ३, २० पंचमो नवांशः सिंहांशस्तत्र गुरौ सति विवाहो नेष्टः । सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः । सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दंपत्योर्निधनप्रद इति राजमार्तंडोक्तेः । अतोऽवशिष्टांशेषु विवाहादिशुभं भवतीत्यर्थः । सिंहेऽपि भगदैवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत् । अत्यंतसुभगा साध्वी धनधान्यसमृद्धिदेत्यादि तत्रैवोक्तेः । अथ देशभेदेन द्वितीयपरिहार उच्यते । अथ गोदोत्तरतः गोदावरी नदी तस्या उत्तरतीरमारभ्य भागीरथीयाम्यतटं दक्षिणकूलं मर्यादीकृत्य गोदावरीगंगांतरालवर्ती यो देशस्तत्र सिंहस्थगुरुर्वर्ज्यो नान्यदेशे । लल्लः । गोदावर्युत्तरतो यावद्भागीरथीतटं याम्यम् । तत्र विवाहो नेष्टः सिंहस्थे देवपतिपूज्ये ॥ अर्थाद्गोदावरीदक्षिणतटे भागीरथ्युत्तरदेशे च सिंहस्थगुरुदोषो नास्ति । वसिष्ठः । भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा । विवाहो व्रतबंधो वा सिंहस्थेज्ये न दुष्यतीति । अत्र विवाहव्रतबंधावेव न निषिद्धौ आभ्यामन्यानि शुभकर्माणि निषिद्धान्येव । अपवादस्य संकोचाश्रयत्वादुपलक्षणायोगात् । अथ तृतीयः परिहारः । तपने सूर्ये मेषराशौ विद्यमाने सति वा सिंहस्थगुरोर्दोषो नास्ति । ज्योतिर्निबंधे । मंगलानीह कुर्वीत सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा । भानौ मेषगते सम्यगित्याहुः शौनकादय इति ॥ ४९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

सिंहराशिगतगुरुनिषेधवाक्यानां प्रतिप्रसववाक्यानां च निर्गलितार्थमनुष्टुब्द्वयेनाह—

मघादिपंचपादेषु गुरुः सर्वत्र निंदितः ॥
गंगागोदांतरं हित्वा शेषांघ्रिषु न दोषकृत् ॥ ५० ॥
मेषेऽर्के सन्व्रतोद्वाहौ गंगागोदांतरेऽपि च ॥
सर्वः सिंहगुरुर्वर्ज्यः कलिंगे गौडगुर्जरे ॥ ५१ ॥

मघादिपंचपादेष्वित्यादि । मेषेऽर्क इत्यादि च ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ मकरस्थगुरोः प्रकारद्वयेन परिहारं शालिन्याह—

रेवापूर्वे गंडकीपश्चिमे च शोणस्योदग्दक्षिणे नीच ईज्यः ॥
वर्ज्यो नायं कौंकणे मागधे च गौडे सिंधौ वर्जनीयः शुभेषु ॥५२॥

रेवापूर्वे इति ॥ रेवाया नर्मदायाः पूर्वदेशे गंडकीनद्याः पश्चिमे विभागे शोणनदस्योत्तरदक्षिणभागे नीच ईज्यो मकरस्थो गुरुर्न वर्ज्यः । लल्लः । नर्मदापूर्वभागे तु शोणस्योत्तरदक्षिणे । गंडक्याः पश्चिमे भागे मकरस्थो न दोषभाक् ॥ अन्यदेशेषु निषिद्धस्तत्र निषिद्धदेशानाह । अयमिति । अयं मकरस्थगुरुः कौंकणदेशे गौडदेशे सिंधुदेशे च शुभकृत्येषु वर्ज्यो निषिद्धः । उक्तं च । मागधे गौडदेशे च सिंधुदेशे च कौंकणे । व्रतं चूडां विवाहं च वर्जयेन्मकरे गुरौ ॥ एभ्योऽन्यदेशेषु मंगलमर्थान्मध्यमम् ॥ ५२ ॥

अथ लुप्तसंवत्सरदोषं सापवादं वंशस्थवृत्तेनाह—

गोजांत्यकुंभेतरभेऽतिचारगो नो पूर्वराशिं गुरुरेतिवक्रितः ॥
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिंदितः शुभेषु रेवासुरनिम्नगांतरे ॥ ५३ ॥

गोजांत्येति ॥ गौर्वृषः अजो मेषः अंत्यो मीनः कुंभः प्रसिद्धः एभ्य इतरभे अन्यराशौ मिथुनादौ अतिचारगो गुरुर्महातिचारेण समागतः सन् पश्चात्कियद्भिर्दिनैर्वक्रितो यदा पूर्वराशिं नो एति भुक्तराशिं नागच्छति तदा विलुप्ताब्दो लुप्तसंवत्सर उच्यते । स लुप्तसंवत्सरः शुभकृत्ये अतिनिंदितो निषिद्धः । उक्तं च । अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैति चेत्पुनः । लुप्तसंवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥ यदा तु गोजांत्यकुंभेषु पूर्वराशेः सकाशान्महातिचारेणयाति पूर्वराशिं च नैति तदा न लुप्तसंवत्सरदोषः । गुरुः । मेषे वृषे झषे कुंभे यद्यतीचारगो गुरुः । न तत्र काललोपः स्यादित्याह भगवान्यमः ॥ दशमासभोगानंतरमतिचारेऽपि लुप्ताब्ददोषो नास्ति । च्यवनः । मासान्दशैकादश वा प्रयुंज्य राशेर्यदा राशिमुपैति जीवः । भुंक्ते न पूर्वं च पुनस्तथापि न लुप्तसंवत्सरमाहुरार्याः ॥ पूर्वं राशिभेदेन परिहारमुक्त्वेदानीं देशभेदेन परिहारमाह । लुप्तसंवत्सरो रेवा नर्मदा सुरनिम्नगा । भागीरथी

Aho ! Shrutgyanam

तयोर्नद्योरंतरेऽतिनिषिद्धः । उक्तं च । लुप्ताब्ददोषोऽत्रिमतेन मध्ये सोमोद्भवार्या [illegible]गाया इति । नारदेन समसप्तकदोषो विवाहे वर्जितः । समदृष्टिर्गुरोः शुक्रे तन्मासे तु [illegible]तः । विवाहादि न कुर्वीत नर्मदातीर उत्तरे ॥ ५३ ॥

अथ वारप्रवृत्तिमुपजात्याह–

पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः पलैर्युतोनास्तिथयो दिनार्धतः ॥
ऊनाधिकास्तद्विवरोद्भवैः पलैरूर्ध्वं तथाधो दिनपप्रवेशनम् ॥५४॥

पादोनेति ॥ रेखा भूमध्यरेखा। पुरी राक्षसी देवकन्याथ कांचीत्याद्युक्ता । उपलक्षणमेतत् । लंकात आरभ्य सुमेरुमस्तकदत्तसूत्राधोवर्तिदेशास्ते मध्यरेखाशब्देनोच्यंते । यस्मिन् देशे वारप्रवृत्तिश्चिकीर्षिता स देशो रेखातः प्राक् पश्चिमे वा यावंति योजनानि भवंति तानि स्वचतुर्थांशोनानि कृत्वा तावद्भिः पलैस्तिथ्यः पंचदशघटिका युक्तोनाः कार्याः । यदा मध्यरेखातः प्रत्यग्योजनानि तदा युक्ताः । यदा तु प्राग्योजनानि तदोनाः कार्याः । अथ यद्दिने वारप्रवृत्तिरिष्टा तद्दिवसे यद्दिनार्धम् । चरपलयुतहीननाडिकाः पंचचंद्रा इत्यादिप्रकारसिद्धम् । तस्माद्दिनार्धात्संस्कारविशिष्टाः पंचदश ऊनाधिकाश्चेद्भवंति तदा तद्विवरोद्भवैः पलैर्दिनार्धस्य संस्कारविशिष्टपंचदशानां च यद्विवरमंतरं तत्संबंधेनोत्थैरुत्पन्नैः पलैरूर्ध्वं तथाधो दिनपस्य वारस्य प्रवेशः । यदा संस्कारविशिष्टाः पंचदशदिनार्धतश्चेदूनाः स्युस्तदा सूर्योदयादूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः । यदा संस्कारविशिष्टाः पंचदशदिनार्धतोऽभ्यधिकास्तदा सूर्योदयात्प्राग्वारप्रवृत्तिरित्यर्थः । यथा वाराणसीरेखाभिधानात् कुरुक्षेत्रात् प्राक् त्रिषष्टियोजनानि ६३ पादेन चतुर्थांशेनोनानि ४७, १५ प्राग्योजनत्वादेतैः पलैरूनाः पंचदशघटिका जाताः १४, १३ दिनार्धं १६, ३० अस्मान्न्यूना इति विवरम् २, १७ तेनाभिर्घटिकाभिः सूर्योदयादूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः । यदा दिनार्धं १३, १५ अस्मादधिका इति विवरम् ०, ५८ एताभिर्घटीभिः सूर्योदयात्प्राग्वारप्रवृत्तिरित्यर्थः ॥ ५४ ॥

अथ वारप्रवृत्तिप्रयोजनपुरःसरं कालहोरामनुष्टुभाह–

वारादेर्घटिका द्विघ्नाः स्वाक्षह्रच्छेषवर्जिताः ॥
सैकास्तष्टा नगैः कालहोरेशा दिनपात्क्रमात् ॥ ५५ ॥

वारादेरिति ॥ वारप्रवृत्तिप्रकारेण यस्मिन्क्षणे वारप्रवृत्तिर्जाता तत इष्टघट्यो द्विगुणाः कार्याः । ता द्विस्थाने स्थाप्याः । तत्र पंचभिर्भक्ते यल्लब्धं तत्त्याज्यम् । यच्छेषं तद्द्विगुणघटीमध्ये वर्जितं कार्यम् । एवंविधा घट्यः सैका एकयुक्ताः कार्याः । सप्तभिस्तष्टा अवशिष्टाः कालहोरेशाः स्युः । ते दिनपात् वारात्क्रमात् गणनीयाः । यथा रविवारे इष्टघटिकाः ६ द्विगुणाः १२ पृथगक्षा ५ ह्रतशेष २ वर्जिताः १० सैका ११ नगै ७ स्तष्टाः

Aho ! Shrutgyanam

शेषं ४ रविवारे क्रमाद्गणनया चतुर्थो बुधस्तस्य होरा इत्यादि । विवाहवृंदावने । उदयमारभ्य होरा उक्ताः । यथा । तत्कालार्कन्यूनलग्नांशपिंडो भक्तः पंचक्षोणिभिर्भुक्तहोराः । भास्वच्छुक्रज्ञेंदुसौरेज्यभौमाः संख्यायेरन्वारतस्ते तदीशा इति । अनयोर्विषयविभागो वसिष्ठसंहितायाम् । वारप्रवृत्तिविज्ञानं क्षणवारार्थमेव हि । अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनादिरुदयाद्भवेत् । क्षणवारः कालहोरारूपस्तदर्थं वारप्रवृत्तिः । अन्यकार्येषु दिक्शूलादिषु तिथिवारप्रयुक्तेषु नक्षत्रवारप्रयुक्तेषु च योगेषु सुयोगेषु च सूर्योदयादेव वारो ग्राह्यः ॥ ५५ ॥

अथ कालहोराप्रयोजनं शालिन्याह—

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य ॥
कुर्याद्दिक्शूलादि चिंत्यं क्षणेषु नैवोल्लंघ्यः पारिघश्चापि दंडः ॥५६॥

वारे प्रोक्तमिति ॥ यत्कर्म यस्मिन्वारे प्रोक्तं तद्दिनस्य सदोषत्वादत्यावश्यककृत्ये तस्य कालहोरायां कर्तव्यम् । नारदः । यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते । ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा ॥ अत्र केचित् । यस्य वारे कर्म प्रोक्तं तस्य बलिनो नवांशे सूर्यश्चंद्रो वा चेत्तिष्ठति तदा तत्कर्म कार्यमित्याहुः । उक्तं च । यस्य ग्रहदिने कर्म यत्किंचिदभिधीयते । यस्यांशसंस्थिते चंद्रे सूर्ये वा तद्विधीयत इति । अथ धिष्ण्ये नक्षत्रे यत्कर्म वस्त्रपरिधानादिकमुक्तं तदत्यावश्यकत्वे अस्य धिष्ण्यस्य स्वामितिथ्यंशके स्वामिनो मुहूर्ते कुर्यात् । नारदः । यस्मिन्नृक्षे तु यत्कर्म निखिलं कथितं च यत् । तद्दैवत्ये तन्मुहूर्ते कार्यं यात्रादिकं तथेति । मुहूर्तस्वामिनो विवाहप्रकरणे वक्ष्यंते । क्षणेषु मुहूर्तेषु दिक्शूलाद्यं दिक्शूलं वारशूलं नक्षत्रशूलं चिंत्यं विचारणीयम् । एवं पारिघो दंडः क्षणेषु मुहूर्तेषु नैवोल्लंघ्यः । यत्कर्म कथितमृक्षे यस्मिंस्तत्कर्म तत्क्षणे कार्यम् । 'दिक्शूलादिकमखिलं पारिघदंडादि विज्ञेयमिति वसिष्ठोक्तेः ॥ ५६ ॥

अथ मन्वादीन्युगादींश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मन्वाद्यास्त्रितिथी मधौ तिथिरवी ऊर्जे शुचौ दिक्तिथी
ज्येष्ठेऽन्त्ये च तिथिस्त्विषे नव तपस्यश्वाः सहस्ये शिवा ॥
भाद्रेऽग्निश्च सिते त्वमाष्टनभसः कृष्णे युगाद्याः सिते
गोऽग्नी बाहुलराधयोर्मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते ॥ ५७ ॥

इति मुहूर्तचिंतामणौ प्रथमं शुभाशुभप्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

मन्वाद्या इति ॥ सिते शुक्लपक्षे एता मन्वादयः । मधौ चैत्रे त्रितिथी तृतीयापौर्णिमे ऊर्जे कार्तिके तिथिरवी पूर्णिमाद्वादश्यौ शुचौ आषाढे दिक्तिथी दशमीपूर्णिमे ज्येष्ठे अंत्ये फाल्गुने च तिथिः उभयत्र पूर्णिमैव इषे आश्विने नवमी तपसि माघे

Aho ! Shrutgyanam

अश्वाः सप्तमी सहस्ये पौषे शिवा एकादशी भाद्रपदे अग्निस्तृतीया तु इति पुनः नभसः श्रावणस्य कृष्णपक्षे अमावास्या अष्टमी । अथ युगाद्याश्चत्वारः बाहुलराधयोः बाहुलः कार्तिकः राधो वैशाखस्तयोः शुक्लपक्षे गोऽग्नी नवमीतृतीये युगादी कार्तिकशुक्लनवमी कृतयुगादिः वैशाखशुक्लतृतीया त्रेतादिः भाद्रमाघासितमदनदर्शौ युगादी मदनस्त्रयोदशी दर्शोऽमावास्या भाद्रकृष्णत्रयोदशी कलियुगादिः माघकृष्णामावास्या द्वापरादिः । अत्र शुक्लादयो मासा ग्राह्याः । कार्तिके शुक्लनवमी चादिः कृतयुगस्य सा । त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसंमिता ॥ कृष्णा पंचदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता । कल्पादि स्यात्कृष्णपक्षे नभस्येव त्रयोदशीति नारदोक्तेः ॥ ९७ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितायां स्वकृतमुहूर्तचिंतामणिटीकायां प्रमिताक्षरायां शुभाशुभप्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

॥ अथ नक्षत्रप्रकरणम् ॥

अथ नक्षत्रप्रकरणं व्याख्यायते । तत्रादौ नक्षत्रस्वामिनः शार्दूलविक्रीडितेनाह—

नासत्यांतकवह्निधातृशशभृद्रुद्रादितीज्योरगा
ऋक्षेशाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्टा समीरः क्रमात् ॥
शक्राग्नी खलु मित्र इंद्रनिर्ऋतिक्षीराणि विश्वे विधि-
र्गोविंदो वसुतोयपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ १ ॥

नासत्येति ॥ एते नासत्यांतकादयः ऋक्षेशा नक्षत्रेशाः क्रमात्स्युः ॥ १ ॥

अथ ध्रुवनक्षत्राणि तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

उत्तरात्रयरोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम् ॥
तत्र स्थिरं बीजगेहशांत्यारामादि सिद्धये ॥ २ ॥

उत्तरात्रयेति ॥ उत्तरात्रयं रोहिणी चैतानि नक्षत्राणि रविवारश्च ध्रुवसंज्ञानि स्थिरसंज्ञानि चेति संज्ञाद्वयम् । एवमुत्तरत्रापि व्याख्येयम् । ध्रुवनक्षत्रेषु स्थिरादि कर्म कार्यम् । आदिग्रहणान्मृदुनक्षत्रोक्तं ग्राह्यम् । वसिष्ठः । मृदुवृंदे कथितान्यपि स्थिरवृंदे तानि कार्याणीति ॥ २ ॥

अथ चरभानि तत्कृत्यं चानुष्टुभाह—

स्वात्यादित्ये श्रुते त्रीणि चंद्रश्चापि चरं चलम् ॥
तस्मिन्गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ॥ ३ ॥

Aho ! Shrutgyanam

स्वात्यादित्ये इति ॥ आदिशब्दाल्लघुनक्षत्रोक्तमपि ॥ ३ ॥

अथोग्रनक्षत्राणि चानुष्टुभाह—

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा ॥
तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिध्यति ॥ ४ ॥

पूर्वात्रयमिति ॥ आदिशब्दाद्दारुणनक्षत्रोक्तमपि ॥ ४ ॥

अथ मिश्राण्यनुष्टुभाह—

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम् ॥
तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिध्यति ॥ ५ ॥

विशाखेति ॥ आदिग्रहणादुग्रभोक्तमपि ॥ ५ ॥

अथ लघुनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

हस्ताश्विपुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा ॥
तस्मिन्पण्यरतिज्ञानभूषाशिल्पकलादिकम् ॥ ६ ॥

हस्तेति ॥ शिल्पं वर्धकिकृत्यादि कला नृत्यादिकाश्चतुःषष्टिः आदिशब्दाच्चरभोक्तमपि ॥ ६ ॥

अथ मृदुनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

मृगांत्यचित्रामित्रर्क्षं मृदुमैत्रं भृगुस्तथा ॥
तत्र गीतांबरक्रीडा मित्रकार्य विभूषणम् ॥ ७ ॥

मृगांत्येति ॥ ७ ॥

अथ तीक्ष्णभान्यनुष्टुभाह—

मूलेंद्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम् ॥
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥ ८ ॥

मूलेति ॥ अभिचारः कर्मणां भयंकरकृत्यं मारणादि । पशुदमः पशुशिक्षा आदिशब्दाद्बंधनादिकं स्थिरं च ॥ ८ ॥

अथाधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखनक्षत्राणींद्रवज्रयाह—

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम् ॥
तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥ ९ ॥

मूलाहीति ॥ मूलं अहिराश्लेषा मिश्रं कृत्तिकाविशाखे उग्रं पूर्वात्रयमघाभरण्यः

Aho ! Shrutgyanam

एतानि नव भानि अधोमुखानि ज्ञेयानि । आर्द्रा पुष्यः श्रवणत्रयं रोहिण्युत्तरात्रयं च नव भान्यूर्ध्वमुखानि । मैत्राणि चित्रारेवत्यनुराधाः हस्तस्वाती पुनर्वसुर्ज्येष्ठा अश्विनी एतानि नव भानि तिर्यङ्मुखानि । एषु अधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखेषु भेषु ईदृशं कृत्यं अधोमुखोर्ध्वमुखतिर्यङ्मुखकृत्यं सत् भवति । गरुडपुराणे । भरणीकृत्तिकाश्लेषामघामूलविशाखिकाः । तिस्रः पूर्वास्तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः ॥ एषु वापीतडागादिकूपभूमितृणानि च । देवागारस्य खननं निधानखननं तथा ॥ गणितं ज्योतिषारंभं खनीबिलप्रवेशनम् । कुर्यादधोगतान्येव कार्याणि वृषभध्वज ॥ रोहिण्यार्द्रा तथा पुष्यो धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् । वारुणं श्रवणं चैव नव चोर्ध्वमुखास्तथा ॥ एषु राज्याभिषेकं च पट्टबंधं च कारयेत् । ऊर्ध्वमुखान्युच्छ्रितानि सर्वाण्येषु च कारयेत् । रेवती चाश्विनी चित्रा स्वाती हस्तः पुनर्वसुः । अनुराधा मृगो ज्येष्ठा एताः पार्श्वमुखाः स्मृताः । गजोष्ट्राश्वबलीवर्ददमनं माहिषस्य च ॥ बीजानां वपनं कुर्याद्गमनागमनादिकम् । चक्रयंत्ररथादीनां नौकादीनां प्रवाहणम् ॥ पार्श्वेषु यानि कार्याणि कुर्यादेषु च तान्यपि । इदं च नक्षत्रविशेषविहितानां कर्मणामवश्यकर्तव्यत्वे मुहूर्तालब्धौ सत्यां कर्मणोऽधोमुखाद्याकारं ज्ञात्वा तत्तन्नक्षत्रेषु तानि कर्माणि कार्याणि । यानि च सर्वथा नोक्तानि बिलप्रवेशादीनि तान्येष्वेव नक्षत्रेषु कार्याणीत्येतदर्थमुक्तम् ॥ ९ ॥

अथ प्रवालादिधारणमुहूर्तं वसंततिलकयाह—

पौष्णध्रुवाश्विकरपंचकवासवेज्या-
दित्ये प्रवालरदशंखसुवर्णवस्त्रम् ॥
धार्यं विरिक्तशनिचंद्रकुजेऽह्नि रक्तं
भौमे ध्रुवादितियुगे सुभगा न दध्यात् ॥ १० ॥

पौष्णध्रुवेति ॥ रेवत्यादिनक्षत्रेषु तथा रिक्तातिथिशनिचंद्रभौमवर्जितेऽह्नि दिवसे प्रवालं विद्रुमं शंखः शंखवलयादि वस्त्रं श्वेतम् एतानि धार्याणि । रक्तं मंजिष्ठादिरंगेन रंजितं वस्त्रं भौमवारेऽपि धार्यम् । अथ सुभगा सभर्तृका ध्रुवादितियुगे रोहिण्युत्तरात्रयेषु अदितियुगे पुनर्वसौ पुष्ये च प्रवालादिकं न दध्यात् । क्वचिच्छततारायां स्नानमपि निषिद्धम् । उक्तं च । रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या बिभर्ति नववस्त्रभूषणम् । सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वारुणेऽपि या इति ॥ १० ॥

अथ नवधा विभक्तस्य वस्त्रस्य दग्धादिदोषे शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वस्त्राणां नवभागकेषु च चतुष्कोणेऽमरा राक्षसा
मध्यत्र्यंशगता नरास्तु सदशे पाशे च मध्यांशयोः ॥

Aho ! Shrutgyanam

दग्धे वा स्फुटितेंऽबरे नवतरे पंकादिलिप्ते न स-
द्रक्षोंऽशे नृसुरांशयोः शुभमसत्सर्वांशके प्रांततः ॥ ११ ॥

वस्त्राणामिति ॥ वस्त्राणां नव भागाः कार्याः। कोणचतुष्टये अमरा देवाः स्थाप्याः। राक्षसा मध्यगतांशत्रयगता ज्ञेयाः। नराः दशासहिते पाशे च पुनर्मध्ययोरंशयोर्ज्ञेयाः। तत्र चेद्रक्षोंऽशे नवतरे नूतने वस्त्रे दैवाद्दग्धे अग्निस्पृष्टे स्फुटिते पाषाणाद्याघातादिभिर्निहते पंकेन कर्दमेन आदिशब्दाद्गोमयादिभिर्लिप्ते उपहते सति तद्वस्त्रं न सत् शुभफलजनकं न भवतीत्यर्थः। नृसुरांशयोः एवं वस्त्रदाहादिके सति शुभं कल्याणं स्यात्। अथ सर्वांशके राक्षसमनुष्यदेवांशकेषु प्रांततः प्रांतभागे असदनिष्टफलजनकम्। इदं सर्वं शय्यासनपादुकास्वपि ज्ञेयम्। श्रीपतिः। कज्जलकर्दमगोमयलिप्ते वाससि दग्धवति स्फुटिते च। चिंत्यमिदं नवधा विहितेऽस्मिन्निष्टमनिष्टफलं च सुधीभिः॥ अत्र राक्षसांशे ध्वजच्छत्रादिसदृशी छेदाकृतिः शुभफला ज्ञेया। देवमनुष्यांशेऽपि काकोलूकसदृशी छेदाकृतिरशुभफलदा। कश्यपः। शंखवस्त्रांबुजच्छत्रध्वजतोरणसन्निभा। श्रीवत्ससर्वतोभद्रनंद्यावर्तगृहोपमा॥ वर्धमानस्वस्तिकेभमृगकूर्मझषाकृतिः। छेदाकृतिर्दैत्यभागेऽप्यायुरर्थप्रदा नृणाम्। खरोष्ट्रोलूककाकाहिजंबूकश्ववृकोपमा॥ त्रिकोणसूर्याकृतयो देवभागेऽप्यशोभनाः। निंदितं वसनं दद्याद्द्विजेभ्यः स्वर्णसंयुतम्। आशिषो वाचनं कृत्वा त्वन्यद्वस्त्रं च धारयेदिति॥ ११ ॥

अत्र क्वचिद्दुष्टदिनेऽपि वस्त्रपरिधानमनुष्टुभाह—

विप्राज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्यार्पितं च यत्॥
निंद्येऽपि धिष्ण्ये वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः॥ १२ ॥

विप्राज्ञयेति ॥ धिष्ण्ये नक्षत्रे वारादौ वारतिथियोगादौ व्यतीपातभद्रादिदुष्टयोगैर्निंद्येऽपि यद्वस्त्रं ब्राह्मणानुज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्या संतोषेणार्पितं दत्तं तत् वस्त्रं धार्यमिति बुधा जगुः॥ १२ ॥

अथ लतापादपारोपणराजदर्शनमद्यगोक्रयविक्रयमुहूर्तान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

राधामूलमृदुध्रुवर्क्षवरुणक्षिप्रैर्लतापादपा-
रोपोऽथो नृपदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः॥
तीक्ष्णोग्रांबुपभेषु मद्यमुदितं क्षिप्रांत्यवह्नींद्रभा-
दित्येंद्रांबुपवासवेषु हि गवां शस्तः क्रयो विक्रयः॥ १३ ॥

राधामूलेति ॥ राधा विशाखा एतदादिचतुर्दशनक्षत्रैर्लतानां वल्लीनां पादपानां चारोपो वापः कार्यः। अथ राजदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैस्त्रयोदशभैः कार्यम्। अथ

Aho ! Shrutgyanam

मद्यं मद्यारंभस्तीक्ष्णोग्रांबुपभेषु नव नक्षत्रेषु उदितः कथितः । अथ गवां क्रयो मूल्येन परस्माद्ग्रहणं । विक्रयो मूल्यग्रहणपूर्वकं दानम् । क्षिप्रांत्यवह्नींद्रभादित्येंद्रांबुपवासवेषु हि नव नक्षत्रेषु शस्तः प्रशस्तः । अत्र भीमपराक्रमेण पंचदश भान्यभिहितानि । हस्तेऽनुराधात्रितये सपौष्णे मृगे च पूर्वाश्विविशाखभेषु । पुष्ये धनिष्ठाद्वितयेऽदितीशे गवां क्रयं विक्रयमामनंति ॥ १३ ॥

अथ पशूनां रक्षामुहूर्तं स्थितिनिवेशनिषेधमुहूर्तं चेंद्रवंशयाह—

लग्ने शुभे चाष्टमशुद्धिसंयुते रक्षा पशूनां निजयोनिभे चरे ॥
रिक्ताष्टमीदर्शकुजश्रवोध्रुवत्वाष्ट्रेषु यानं स्थितिवेशनं न सत् ॥१४॥

लग्ने शुभे इति ॥ शुभे शुभस्वामिके लग्ने, अष्टमशुद्धिसंयुते शुभपापाक्रांताष्टमभावरहिते सति पशूनां रक्षा रक्षणं प्रवेशादिकं च सत् । तथा स्वीययोनिनक्षत्रे चरभे च सत् । यथाऽश्वानां योनिभं अश्विनीशततारके तत्र चतुष्पदानां रक्षा शस्ता । तीक्ष्णे पशूनां दमनं चरे स्यात्पशुपोषणमिति वचनात् । अथ रिक्ता ४,९,१४ ऽष्टमी ८ दर्शोऽमावास्या कुजो भौमः श्रवः श्रवणः ध्रुवाण्युत्तरात्रयरोहिण्यः त्वाष्ट्रं चित्रा एषु पशूनां यानं गृहाद्बहिर्निःसारणं स्थितौ गोष्ठादौ वेशनं न सत् शुभं न । व्यवहारोच्चये । पूर्वात्रये धनिष्ठेंद्रपौष्णे सौम्यविशाखयोः । आश्लेषायां मघाश्विन्यां यात्रासिद्धिश्चतुष्पदामिति ॥ १४ ॥

अथौषधसूच्योर्मुहूर्तं मंदाक्रांतयाह—

भैषज्यं सल्लघुमृदुचरे मूलभे द्व्यंगलग्ने
शुक्रेंद्वीज्ये विदि च दिवसे चापि तेषां रवेश्च ॥
शुद्धे रिःफद्युनमृतिगृहे सत्तिथौ नो जनेर्भे
सूचीकर्माऽप्यदितिवसुभत्वाष्ट्रमित्राश्विपुष्ये ॥ १५ ॥

भैषज्यं सदिति ॥ भैषज्यं औषधं प्रारब्धं भक्षितं च सत् लघुमृदुचरनक्षत्रे मूले च द्व्यंगलग्ने द्विस्वभावराशिषु मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु लग्नगतेषु सत्सु शुक्रेंद्वीज्यबुधेषु द्विस्वभावलग्नस्थेषु सत्सु च पुनस्तेषां शुक्रेंद्वीज्यबुधानां रवेश्च दिवसे वारे सत्तिथौ रिक्तामारहिततिथौ भैषज्यं सत् शुभं स्यात् । दीपिकायाम् । द्व्यंगोदये गुरुबुधेंदुसितेषु तेषां वारे रवेश्च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे । भेषूग्रपन्नगविशाखाशिवेतरेषु जन्मर्क्षविष्टिरहितेषु कृतः शुभायेति । अथ रिःफद्युनमृतिगृहे लग्नात् द्वादशसप्तमाष्टमगृहेषु शुद्धेषु शुभपापग्रहरहितेषु सत्सु औषधं तु वर्षफलप्रश्नादिना आयुर्निश्चये च सत् । द्यूनशत्रुनिधनव्ययशुद्धौ सद्गृहेषु नितरां बलवत्सु । आयुषश्च हितकारिणि योगे कीर्तिता नियतमौषधसेवेति श्रीपतिभट्टोक्तेः । अथ जनेर्भे जन्मनक्षत्रे नो भैषज्यं सत् । जन्मनक्षत्रगश्चंद्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभेषज-

Aho ! Shrutgyanam

वादाध्वकर्तनेषु विवर्जयेदिति वचनात् । अथ सूचीकर्म सूच्याः संबंधि कर्म घटनसीवनादि । अदितिवसुभत्वाष्ट्रमित्राश्विपुष्ये नक्षत्रे सत् स्यात् । व्यवहारोच्चये । अदितिर्वासवं त्वाष्ट्रं मैत्रमैंदववाजिनः । सूचीकर्म तनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यत इति ॥ १५ ॥

अथान्यदनुष्टुभाह–

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न ॥
पौष्णांबुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ॥ १६ ॥

क्रयर्क्ष इति ॥ क्रयर्क्षे वक्ष्यमाणक्रयनक्षत्रे विक्रयो न कार्यः । तथा विक्रयनक्षत्रे क्रयोऽपि न कार्यः । दीपिकायाम् । यमाहिशक्राग्निविशाखपूर्वा नेष्टाः क्रये विक्रयणेऽतिशस्ताः । पौष्णाश्विचित्रामृतविष्णुवाताः शस्ताः क्रये विक्रयणे निषिद्धा इति ॥ ननु यदा येन क्रयः कर्तव्यस्तदान्येन विक्रयः कर्तव्यः तत्र क्रयविक्रयनक्षत्राणां महाभेदादुभयविधमुहूर्तानुपपत्तिः । उच्यते । विक्रेत्रा यदा मुहूर्तं विक्रयार्थं गृह्यते तदा वस्तु पृथक् क्रियते तत्कर्म विक्रयशब्दवाच्यम् । यदा क्रयिणा क्रयार्थं मुहूर्तः प्रार्थ्यते तदा विक्रेत्रे मूल्यद्रव्यं दत्वा पृथक्कृतं विक्रेतृवस्तु ग्राह्यं तत्क्रयशब्दवाच्यमिति मत्वा यथाकथंचित्समाधेयम् । तत्र क्रयमुहूर्तः रेवती शततारा अश्विनी स्वाती श्रवणं चित्रा एतानि भानि क्रये शुभानि विक्रये निषिद्धानि च ॥ १६ ॥

अथ विक्रयविपण्योर्मुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केंद्रद्विकोणे शुभैः
षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ॥
रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मित्रध्रुवक्षिप्रभै-
र्लग्नेचंद्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्द्व्यायखे ॥ १७ ॥

पूर्वाद्वीशेति ॥ द्वीशं विशाखा पूर्वादिनक्षत्रेषु केंद्रेषु प्रथमचतुर्थसप्तमदशमेषु द्वितीये कोणे नवपंचमे शुभैः सद्भिः षट्त्र्यायेषु पापग्रहैः सद्भिः घटतनुं कुंभलग्नं विना त्यक्त्वा सत्तिथौ रिक्तामारहिततिथौ विक्रयः सन् शुभो ज्ञेयः । अथ विपणिः पण्यवीथिकागृहे स्थित्वा क्रयविक्रयाख्यं कर्म रिक्तातिथिभौमवारकुंभलग्नानि वर्जयित्वान्येषु तिथिवारलग्नेषु मित्राणि मृगरेवतीचित्रानुराधाः ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं क्षिप्राणि हस्ताश्विपुष्याः एतैर्भैर्लग्ने चंद्रसिते मूर्तौ चंद्रे सिते च सति व्ययाष्टरहितैः पापग्रहैः सद्भिः शुभैर्द्व्यायखे द्वितीयैकादशदशमेषु सद्भिर्विपणिः शुभा स्यात् ॥ १७ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथाश्वगजमुहूर्तमिंद्रवज्रयाह—

क्षिप्रांत्यवास्विद्रुमरुज्जलेशादित्येष्वरिक्तारदिने प्रशस्तम् ॥
स्याद्वाजिकृत्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृदुक्षिप्रचरेषु विद्वान् ॥१८॥

क्षिप्रांत्येति ॥ क्षिप्रादिनक्षत्रेषु रिक्ताभौमव्यतिरिक्तदिने वाजिकृत्यमश्वानां क्रयविक्रयशिक्षास्थानाभरणादि कार्यं प्रशस्तं स्यात् । श्रीपतिः । पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णानिलादित्यकराह्वयेषु । सवारुणर्क्षेषु बुधैः स्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरंगमाणाम् ॥ अश्वारोहणे चक्रम् ॥ अश्वाकारं लिखेच्चक्रं साभिजिद्भानि विन्यसेत् । स्कंधे तु सूर्यभात्पंच पृष्ठे च दश भानि च ॥ पुच्छे द्वे स्थापयेत्प्राज्ञश्चतुष्पादे चतुष्टयम् । उदरे विन्यसेत्पंच मुखे द्वे तुरगस्य च ॥ अर्थलाभो मुखे सम्यग्वाजी नश्यति चोदरे । चरणस्थे रणे भंगः पुच्छे पत्नी विनश्यति ॥ अर्थसिद्धिर्भवेत्पृष्ठे स्कंधे स्कंधपतिर्भवेदिति । अथ विद्वान् ज्ञाता मृदुक्षिप्रचरनक्षत्रेषु रिक्तामाभौमवर्जितदिने च हस्तिकृत्यं गजानां कार्यं क्रयविक्रयभूषादि कुर्यात् । वसिष्ठः । हस्तत्रये सौम्यहरित्रये च पौष्णद्वये पुष्यपुनर्वसौ च । मैत्रे च सर्वाण्यपि कुंजराणां कर्माणि शस्तान्यखिलानि यानीति ॥ १८ ॥

अथ भूषणघटनमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्याद्भूषाघटनं त्रिपुष्करचरक्षिप्रध्रुवे रत्नयुक्
तत्तीक्ष्णोग्रविहीनभे रविकुजे मेषालिसिंहे तनौ ॥
तन्मुक्तासहितं चरध्रुवमृदुक्षिप्रे शुभे सत्तनौ
तीक्ष्णोग्राश्विमृगे द्विदैवदहने शस्त्रं शुभं घट्टितम् ॥ १९ ॥

स्याद्भूषेति ॥ त्रिपुष्करदिनलक्षणं भद्रातिथौ रविजेत्यादिना वक्ष्यति । एवंविधे त्रिपुष्करदिने चरक्षिप्रध्रुवनक्षत्रेषु भूषाघटनमाभरणघटनं शुभं स्यात् । वसिष्ठः । क्षिप्राचलचरऋक्षे रिक्तामावर्जितेषु दिवसेषु । निखिलेष्वपि वारेष्वपि त्रिपुष्करे भूषणं कार्यम् ॥ अथ तद्भूषणं रत्नयुतं माणिक्यादियुतं चेत्तदा तीक्ष्णोग्रविहीनभे तीक्ष्णानि मूलज्येष्ठाद्रार्श्लेषाख्यानि उग्राणि पूर्वात्रयमघाभरण्यः एतद्व्यतिरिक्तेष्वष्टादशनक्षत्रेषु तथा रविभौमवारेऽपि कार्यम् । तथा मेषवृश्चिकसिंहलग्नेषु च । वसिष्ठः । स्थिरसाधारणचरभे लघुमैत्रेष्वर्ककुजवारे । तेषामेव विलग्ने माणिक्यमयभूषणं कार्यमिति । अथ चरध्रुवमृदुक्षिप्रसंज्ञकेषु नक्षत्रेषु तद्भूषाघटनं मुक्तासहितं शुभं भवति । मुक्ताग्रहणं रजतादेरुपलक्षणम् । अत्र चंद्रशुक्रयोर्वारे कर्कवृषतुलालग्नेषु कार्यमित्यपि ज्ञेयम् । वसिष्ठः । क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे शशिसितयोर्वासरेषु तल्लग्ने । मुक्ताफलरजतमयं भूषणमखिलं सवज्रकं कार्यम् । अथ तीक्ष्णानि मूलज्येष्ठार्द्राश्लेषाः उग्राणि च पूर्वात्रयभरणीमघाः अश्विनीमृगौ द्विदैवं

Aho ! Shrutgyanam

विशाखा दहनः कृत्तिका एषु नक्षत्रेषु घट्टितं शस्त्रं शुभं स्यात् । अदितिर्वासवं त्वाष्ट्रमैत्रभैंदववाजिनः । सूचीकर्म तनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यत इति ऋक्षोच्चयोक्तेः । अथ सुवर्णरूप्यादिपात्रे भोजनमुहूर्तमाह । वसिष्ठः । लघुमैत्रध्रुवचरभे सितेंदुबुधजीववारेषु । हेमरजतादिभाजनभोजनमारोग्यममृतयोगेषु ॥ १९ ॥

अथ मुद्रापातनमुहूर्तं वस्त्रक्षालनमुहूर्तं च स्रग्धरयाह—

मुद्राणां पातनं सद्ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभैर्वींदुसौरे
घस्रे पूर्णाजयाख्ये न च गुरुभृगुजास्ते विलग्ने शुभैः स्यात् ॥
वस्त्राणां क्षालनं सद्वसुहयदिनकृत्पंचकादित्यपुष्ये
नो रिक्तापर्वषष्ठीपितृदिनरविजज्ञेषु कार्यं कदापि ॥ २० ॥

मुद्राणामिति ॥ ध्रुवमृदुचरक्षिप्रसंज्ञकैर्नक्षत्रैः कृत्वा राजमुद्रांकितसुवर्णरूप्यादिनिष्पादनं मुद्रापातनमित्युच्यते । टंकसालेति भाषया । वींदुसौरे घस्रे चंद्रशनैश्चरवर्जितवारे तथा पूर्णाजयाख्ये पूर्णाः पंचमीदशमीपूर्णिमाः जयास्तृतीयाष्टमीत्रयोदश्यः एतासु तिथिष्वित्यर्थः । सत् शुभं स्यात् । तथा गुरुशुक्रास्ते न शुभम् । विलग्ने शुभैः लग्ने शुभग्रहैः । सद्भिरित्यर्थः । उक्तं च । मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचंद्रवर्ज्ये । वारे तिथौ पूर्णजयाह्वये च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा नराणाम् ॥ गुर्वस्ते वा सितास्ते वा मुद्राणां घटनं क्वचित् । क्रूरग्रहर्क्षांशलग्ने न कार्यं भूतिमिच्छता ॥ अथ वसुर्धनिष्ठा हयोऽश्विनी दिनकृत् हस्तः तस्मात्पंचके हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधासु आदित्यं पुनर्वसुः पुष्यः एषु वस्त्राणां क्षालनं रजकाय धावनार्थं दानं सत् शुभं स्यात् । रिक्ता पर्वाणि पूर्वोक्तानि तिथिप्रकरणे षष्ठी पितृदिनं श्राद्धदिनं एतेषु रविजज्ञेषु शनिबुधवारेषु कदापि वस्त्रक्षालनं नो कार्यम्॥२०॥

अथ खड्गादिधारणं शय्याद्युपभोगमुहूर्तं च स्रग्धरयाह—

संधार्याः कुंतवर्मेष्वसनशरकृपाणासिपुत्र्यो विरिक्ते
शुक्रेज्यार्केऽह्नि मैत्रध्रुवलघुसहितादित्यशाक्रद्विदैवे ॥
स्युर्लग्नेऽपि स्थिराख्ये शशिनि च शुभदृष्टे शुभैः केंद्रगैः स्या-
द्भोगः शय्यासनादेर्ध्रुवमृदुलघुहर्यंतकादित्य इष्टः ॥ २१ ॥

संधार्या इति ॥ विरिक्ते रिक्तावर्जिते शुक्रबृहस्पतिरविवारे तथा मैत्रध्रुवलघुसंज्ञकनक्षत्रसहितपुनर्वसुज्येष्ठाविशाखानक्षत्रेषु कुंतादयः संधार्याः । कुंतो भल्लः वर्म कवचम् इषवो बाणा अस्यंते अनेनेतीष्वसनं धनुः शरो बाणः खड्गः असिपुत्री छुरिका सन्नाहोऽपीति केचित् । तथा स्थिराख्ये वृषसिंहवृश्चिककुंभाख्ये लग्ने चंद्रे अपिशब्दात् लग्नेऽपि शुभग्रहदृष्टे शुभैः केंद्रगैः सद्भिः कुंतादिधारणं हितम् । ऋक्षोच्चये । पुष्ये चादितिचित्र-

Aho ! Shrutgyanam

पद्मतनये शक्रोत्तरा रेवती वाजी हस्तविशाखमित्रसहिते भाना गुरौ भार्गवे । कुंभे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चंद्रे शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखङ्गकुंतछुरिका धार्या नृपाणां हितेति ॥ यत्तु दीपिकायाम् । मूलेंदुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राश्विसार्पानलशूलिनश्च । शस्त्रादिसंधारणमेषु कुर्यात्तिथौ विलग्ने च शुभे शुभाहे इति तदासन्नयुद्धादिविषयम् । अथ ध्रुवमृदुलघुनक्षत्रेषु हरौ श्रवणे अंतके भरण्यां आदित्ये पुनर्वसौ एषु शय्यासनादेः शय्या खट्वादिरूपा आसनं पीठमृगत्वगादि आदिशब्दात्पादुका तेषामुपभोग इष्टो हितः । दीपिकायाम् । मैत्रेंदुपुष्ययमभादितिवाजिचित्राहस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि । एतेष्वतीव शयनासनपादुकानां संभोगकार्यमुदितं मुनिभिः शुभाहे इति ॥ २१ ॥

अथांधादिनक्षत्राणि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

अंधाक्षं वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमांत्याभिधं
मंदाक्षं रविविश्वमित्रजलपाश्लेषाश्विचांद्रं भवेत् ॥
मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरणत्वाष्ट्रेंद्रविध्यंतकं
स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षोभगम् ॥ २२ ॥

अंधाक्षमिति ॥ धाता रोहिणी विधिरभिजित् दहनभं कृत्तिका भगः पूर्वाफल्गुनी । अन्यत् स्पष्टम् ॥ २२ ॥

अंधादिनक्षत्राणां फलमनुष्टुभाह—

विनष्टार्थस्य लाभोऽधे शीघ्रं मंदे प्रयत्नतः ॥
स्याद्दूरे श्रवणं मध्ये श्रुत्याप्ती न सुलोचने ॥ २३ ॥

विनष्टार्थस्येति ॥ अंधनक्षत्रेषु विनष्टस्यापहृतस्यार्थस्य लाभः शीघ्रं भवति । मंदनक्षत्रेषु विनष्टार्थस्य प्रयत्नतो लाभो भवति । मध्ये मध्यनक्षत्रे विनष्टार्थस्य दूरं स्वनगरादतीव दूरदेशे श्रवणं त्वदीयद्रव्यममुकेन हृतं अमुकस्थले तिष्ठतीति लोकवार्ता भवति लब्धिस्तु नास्ति । सुलोचननक्षत्रेषु श्रुत्याप्ती न श्रवणमपि लब्धिरपि न भवतीत्यर्थः ॥२३॥

अथ धनप्रयोगे निषिद्धनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रैर्यद्द्रव्यं दत्तं निवेशितम् ॥
प्रयुक्तं च विनष्टं च विष्ट्यां पाते च नाप्यते ॥ २४ ॥

तीक्ष्णेति ॥ एतैस्तीक्ष्णादिनक्षत्रैर्यद्द्रव्यं सुवर्णादि दत्तं कालांतरं विना दत्तं न स्वसत्तापरित्यागेन निवेशितं स्वेष्टसमीपे प्रत्ययार्थं स्थापितं प्रयुक्तं कालांतररीतिपुरःसरं कस्मैचिद्दत्तं विनष्टं चौरादिना हृतं स्वयमेव वा क्वचित्त्यक्तं यद्द्रव्यं तद्द्रव्यं निश्चयेन कदापि

Aho ! Shrutgyanam

नाप्यते । तथा विष्ट्यां भद्रायां पाते व्यतीपाते महापाते वा हृतं द्रव्यं नाप्यते चकारात् ग्रहणेऽपि । वसिष्ठः । ध्रुवोग्रसाधारणदारुणर्क्षे निक्षिप्तमर्थं त्वथ वा प्रनष्टम् । चौरैर्हृतं दत्तमुपप्लवे वा विष्ट्यां च पाते न च लभ्यते तदिति । अत्रेदमनुसंधेयम् । तीक्ष्णमिश्रादिपंचदशभेषु मध्ये रोहिण्यर्यमविश्वजलभद्वीशेषु दत्तनिवेशितप्रयुक्तद्रव्यस्यैवाऽप्राप्तिः । चौरापहृतस्य स्वतो गतस्य वा धनस्य लाभ एव । तेषां रोहिण्यादीनां मध्यलोचनभेषु पाठसामर्थ्यादिति भावः ॥ २४ ॥

अथ जलाशयखनननृत्यारंभयोर्मुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मित्रार्कध्रुववासवांबुपमघातोयांत्यपुष्येंदुभिः
पापैर्हीनबलैस्तनौ सुरगुरौ ज्ञे वा भृगौ खे विधौ ॥
आप्ये सर्वजलाशयस्य खननं व्यंभोमघैः सेंद्रभै-
स्तैर्नृत्यं हिबुके शुभैस्तनुगृहे ज्ञेऽब्जे ज्ञराशौ शुभम् ॥ २५ ॥

मित्रार्केति ॥ अनुराधादित्रयोदशनक्षत्रैः सद्भिः पापग्रहैर्हीनबलैर्बलरहितैः सद्भिः तनौ लग्ने सुरगुरौ सति बुधे वा सति खे दशमे भृगौ शुक्रे सति आप्ये जलराशौ विधौ सति सर्वतोयाशयानां वापीकूपतडागादीनां तोयाधाराणां खननं हितं स्यात् । आप्यांबुपांत्यपितृमित्रवसूत्तरार्कैकेंद्वीज्यभेषु खननं सलिलाशयानामिति व्यवहारतत्त्वोक्तेः । श्रीपतिः । लग्ने जीवे ज्ञेऽथवा दुर्बलैश्च क्रूरैः शुक्रे वापि मेषूरणस्थे । आप्ये चंद्रे सर्वतोयाशयानामारंभाः स्युः सिद्धये निर्विकल्पमिति ॥ अथ नृत्यारंभः । तैः प्रागुक्तैर्नक्षत्रैर्व्यंभोमघैः पूर्वाषाढामघारहितैः सेंद्रभैर्ज्येष्ठासहितैः मित्रार्कध्रुववासवांबुपांत्यपुष्येंदुज्येष्ठानक्षत्रैर्नृत्यारंभः शुभः स्यात् । शुभैर्हिबुके चतुर्थस्थाने लग्ने ज्ञे सति अब्जे चंद्रे ज्ञराशौ मिथुनकन्यास्थे सतीत्यर्थः ॥ २५ ॥

अथ सेवकस्य स्वामिसेवायां मुहूर्तं शालिन्याह—

क्षिप्रे मैत्रे वित्सितार्कज्यवारे सौम्ये लग्नेऽर्के कुजे वा खलाभे ॥
योनेर्मैत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा कार्या स्वामिनः सेवकेन॥२६॥

क्षिप्रइति ॥ क्षिप्राणि हस्ताभिजिदश्विपुष्याः मैत्राणि मृगरेवतीचित्रानुराधाः एतेषु नक्षत्रेषु बुधशुक्रसूर्यगुरुवारे सौम्ये शुभग्रहे लग्नगे सति अर्के भौमे वा खलाभे दशमे एकादशे च स्थिते सति सेवकेन स्वामिनः सेवा कार्या । तत्र स्वामिसेवकनक्षत्रयोन्योर्मैत्र्यां च पुनः राशिपोः सेव्यसेवकयो राशिस्वामिनोर्मैत्र्यां प्रीतौ सत्यां सेवा कार्या अन्यथा न कार्या ॥ २६ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ द्रव्यप्रयोगं ऋणग्रहणमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्वात्यादित्यमृदुद्विदैवगुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे
लग्ने धर्मसुताष्टशुद्धिसहिते द्रव्यप्रयोगः शुभः ॥
नारे ग्राह्यमृणं तु संक्रमदिने वृद्धौ करेऽर्केऽह्नि य-
त्तद्वंशेषु भवेदृणं न च बुधे देयं कदाचिद्धनम् ॥ २७ ॥

स्वात्यादित्येति ॥ स्वात्याद्येकादश नक्षत्रेषु चरे मेषकर्कतुलामकराणामन्यतमे लग्ने धर्म नवमं सुतः पंचमं अष्टमं एतेषां शुद्धिः नवपंचमयोः पापग्रहराहित्यं अष्टमे तु शुभपापराहित्यमेवंरूपा शुद्धिस्तया सहिते लग्ने द्रव्यप्रयोगः ऋणदानं शुभं स्यात् । भीमपराक्रमे । मृदुपुष्याश्विनी चैव विशाखा श्रवणत्रयम् । पुनर्वसौ च शंसंति धनादिनिधिवर्तनम् ॥ वर्तनं ऋणादिरूपेण दानम् । मिश्रनक्षत्रत्वाद्विशाखायां निषेधे प्राप्ते ऋणदाने एव विधिः । हृते नष्टादौ निषिद्धैव। शुद्धेषु धर्मात्मजनैधनेषु चरे विलग्ने द्रविणप्रयोग इति । अथारे भौमवारे ऋणं न ग्राह्यम् । ऋणं भौमे न गृह्णीयान्न देयं बुधवासरे । ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्संचयं सोमनंदने ॥ अथ तु विशेषे संक्रमदिने संक्रांतिदिवसे वृद्धौ वृद्धियोगे करे हस्तनक्षत्रे अर्केऽह्नि रविवार इति यावत् । तत्रापि न ग्राह्यमित्येवं संबंधः । यद्यस्माद्धेतोः तदृणं तद्वंशेषु ऋणग्रहीतुः कुलेषु भवेत् तत्पुत्रपौत्रादिभिरपि परिहर्तुमशक्यमित्यर्थः । हस्तेऽर्कवारे संक्रांतौ यदृणं स्यात्कुलेषु तत् । वृद्धियोगे तथा ज्ञेयमृणच्छेदं तु कारयेदिति ज्योतिःप्रकाशोक्तेः । बुधवारे ऋणं कदापि न देयम् ॥ २७ ॥

अथ हलप्रवाहमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मूलद्वीशमघाचरध्रुवमृदुक्षिप्रैर्विनार्कं शनिं
पापैर्हीनबलैर्विधौ जललवे शुक्रे विधौ मांसले ॥
लग्ने देवगुरौ हलप्रवहणं शस्तं न सिंहे घटे
कर्काजैणघटे तनौ क्षयकरं रिक्तासु षष्ठ्यां तथा ॥ २८ ॥

मूलद्वीशेति ॥ एतैः मूलादिभिरेकोनविंशतिनक्षत्रैः विनार्कं शनिं रविशनिवारौ वर्जयित्वान्यवारेषु तत्र पापैर्हीनबलैर्निर्बलैः चंद्रे जलराशिनवांशके सति शुक्रे चंद्रे च मांसले पुष्टे सति उदिते इत्यर्थः । गुरौ लग्ने च सति तदा प्रथमं हलप्रवहणं शस्तं स्यात् । कश्यपः । गुरौ लग्नगते शुक्रे बलिन्याप्योदये विधौ । शस्ता कृषिक्रिया तत्र दुर्बलैः क्रूरखेचरैः ॥ अथ सिंहे घटे कुंभे कर्के अजे मेषे एणे मकरे घटे तुलायां तनौ लग्ने तथा रिक्तासु षष्ठ्याम् तथाशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थस्तेनाष्टम्यामपि न शस्तम् यस्मात्संक्षयकरम् ॥२८॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ बीजोप्तिमुहूर्तं फणिचक्रं च शार्दूलविक्रीडितेनाह–

एतेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि भौमं विना
बीजोप्तिर्गदिता शुभा त्वगुभतोऽष्टाग्नींदुरामेंदवः ॥
रामेंद्वग्नियुगान्यसच्छुभकराण्युप्तौ हलेऽर्कोज्झिता-
द्भाद्रामाष्टनवाष्टभानि मुनिभिः प्रोक्तान्यसत्संति च ॥ २९ ॥

एतेष्विति ॥ पूर्वोक्तनक्षत्रेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि विना श्रवणादिवर्जितेषु मूलमघाध्रुवमृदुक्षिप्रधनिष्ठास्वातीषु भौमं विना भौमवारव्यतिरिक्तवारेषु बीजोप्तिर्बीजवापनं शुभं ज्ञेयम् । नारदः । मृदुध्रुवाक्षिप्रभेषु पितृवायुवसूडुषु । समूलभेषु बीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा । रवौ रौद्राद्यपादस्थे भूमौ संजायते रजः । तस्माद्दिनत्रयं तत्र बीजवापं परित्यजेदिति राजमार्तंडे आर्द्राप्रथमदिनत्रयनिषेधः । अथ बीजोप्तौ फणिचक्रम् । अगुभतो न विद्यंते गावो यस्येति अगुः राहुस्तस्य भं तदाक्रांतनक्षत्रं तस्मादादौ अष्टौ भानि असंति असमीचीनानि । ततस्त्रीणि शुभकराणि । तत एकमशुभम् । ततस्त्रीणि शुभक० तत एकम० ततस्त्रीणि शुभक० । तत एकम० । ततस्त्रीणि शुभक० । ततश्चत्वार्यशुभानि एवं बीजोप्तौ सप्तविंशतिनक्षत्राणां शुभाशुभत्वमुक्तम् । रत्नमालायाम् । मूर्ध्नि त्रीणि गले त्रयं च जठरे धिष्ण्यानि च द्वादशेत्यादि । लग्नशुद्धिमाह वसिष्ठः । भवरिपुसहजे पापैस्त्रिकोणकेंद्रस्थितैश्च शुभैः । कथिते शुभधिष्ण्येऽपि च शुभलग्ने बीजवापनं कार्यम् । अथ हलचक्रमुच्यते ॥ हले इति ॥ हलचक्रे अर्कोज्झितात् भात् नक्षत्रात् क्रमेण त्रीणि असंति अशुभानि । ततोऽष्ट भानि संति शुभानि । ततो नव भानि असंति । ततोऽष्टौ भानि संति । यथा सूर्य आर्द्रायां भुक्तभं मृगः तत आरभ्य त्रीणि अशुभानि । ततः पुष्यतोऽष्टभानि शुभानि । ततो विशाखातो नव भान्यशुभानि । ततः शततारकातोऽष्टभानि शुभानि एवमष्टाविंशति भानि जातानि । तथा च वसिष्ठः । अर्कगतागतसंस्थे भत्रितयं नेष्टमुभयतस्त्विष्टम् । षोडशधिष्ण्यं नवकं शिष्टमनिष्टं च लांगले चक्रे ॥ कश्यपोऽपि । त्रिष्वष्टसु नवर्क्षेषु सप्तस्वर्कविभुक्तभात् । हानिर्वृद्धिः कर्तृनाशो लक्ष्मीप्राप्तिर्यथाक्रमादिति । एवं बहुमुनिसंवादे सति इनप्रोज्झितर्क्षात् त्रिवह्नित्रीषुत्रीषुत्रिरामा ३,३,३,५,३,५,३,३, ण्यशुभदशुभदानि क्रमाल्लांगलाख्य इति यदुक्तं गणेशदैवज्ञैर्मुहूर्ततत्त्वे तच्चिंत्यम् । ऋषिवाक्यमूलाभावात् । ननु श्रीपतिवाक्यम् । अर्काक्रांतगतागतान्यनडुहां नाशाय भान्यग्रतो वृद्ध्यै भत्रितयं ततस्तु कृषिकृद्घाताय शूलत्रये । धिष्ण्यानां नवकं तदंतरगते स्यातां श्रियै पंचके यच्चान्यत्रितयं तदत्र गदितं चक्रे शुभे लांगले इति मूलं चेत् । न ह्ययं श्रीपतिवाक्ये शब्दार्थः किंतु मूलवाक्याबोधेन स्वाज्ञानप्रकाशकः । वाक्यार्थस्तु । अर्काक्रांतगतानि त्रीणि भानि वृषनाशकराणि स्युः । ततस्त्रीणि वृद्ध्यै ततः पंच नक्षत्राण्यपास्य अग्रिमाणि नव भानि शूलत्रये त्रिकं त्रिकं

Aho ! Shrutgyanam

कृषिकृद्धाताय स्थाप्यानि । नन्वत्र पंचनक्षत्रत्यागे को हेतुरित्यत आह । तदंतरगते पंचक इति । तच्छब्देन हलोर्ध्वदंडशूलोर्ध्वदंडावुच्येते । अर्काक्रांतगतागतान्यनडुहां नाशाय भान्यग्रतो वृद्ध्यै भत्रितयं अयमंतरस्य पूर्वावधिः मध्ये ततः पदोपादानात् । तुशब्दस्तु आनंतर्यद्योतनार्थः । तु अनंतरं शूलत्रये धिष्ण्यानां नवकं कृषिकृद्धातायेति अंतरस्योत्तरावधिः । तदंतरगते मध्ये विद्यमानानां धिष्ण्यानां पंचकं पंचकं च श्रियै स्थाप्ये नक्षत्रदशकमिति यावत् । यच्चान्यात्रितयं हलदंडोर्ध्वभागे शुभफलदं लेख्यम् । एवं च सति ऋषिवाक्यैः सहास्यैकार्थतैव संपद्यते । अनेन महेश्वरादयोऽपि प्रत्युक्ताः ॥ २९ ॥

अथ शिरामोचनविरेचनादिमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

त्वाष्ट्रान्मित्रकभाद्वयेऽबुपलघुश्रोत्रे शिरामोक्षणं
भौमार्केज्यदिने विरेकवमनाद्यं स्याद्बुधार्की विना ॥
मित्रक्षिप्रचरध्रुवे रविशुभाहे लग्नवर्गे विदो
जीवस्यापि तनौ गुरौ निगदिता धर्मक्रिया तद्बले ॥ ३० ॥

त्वाष्ट्रादिति ॥ त्वाष्ट्राद्वये चित्रास्वात्यौ मित्रभाद्वये अनुराधाज्येष्ठे कभाद्वये रोहिणीमृगौ श्रोत्रं श्रवणः चित्रादिष्वेकादशसु नक्षत्रेषु भौमार्कगुरुवारे शिरामोक्षणं रुधिरवाहिनी नाडिका शिरा तस्याः सूक्ष्मशस्त्रघातेन शिरातो रक्तमोक्षणं कुर्यात् । अथ बुधार्कीविना बुधशनिवारौ त्यक्त्वाऽन्यवारेषु पूर्वोक्तनक्षत्रेषु च विरेकवमनाद्यम् । औषधेन सुखप्रवृत्तिर्विरेकः वमनं वांतं एतदाद्यं कुर्यात् । मित्रक्षिप्रचरध्रुवेषु त्रयोदश नक्षत्रेषु रविवारे शुभग्रहवारे च विदो बुधस्य लग्नवर्गे जीवस्यापि लग्नवर्गे यस्मिन् कस्मिंश्चिल्लग्नेऽपि गुरुबुधयोः षड्वर्गे सति तनौ लग्ने गुरौ च सति कर्तुर्गुरुबले च सति धर्मक्रिया कोटिहोमरुद्रानुष्ठानादिरूपा निगदिता कथिता ॥ ३० ॥

अथ धान्यच्छेदनं वसंततिलकयाह—

तीक्ष्णाजपादकरवह्निवसुश्रुतींदु-
स्वातीमघोत्तरजलांतकतक्षपुष्ये ॥
मंदाररिक्तरहिते दिवसेऽतिशस्ता
धान्यच्छिदा निगदिता स्थिरभे विलग्ने ॥ ३१ ॥

तीक्ष्णाजपादेति ॥ एतेष्वेकोनविंशतिनक्षत्रेषु तथा भौमशनिरिक्तावर्जितदिने स्थिरलग्ने सति धान्यादीनां यवादीनां छिदा छेदनं निगदिता कथिता ॥ ३१ ॥

अथ कणमर्दनं सस्यरोपणं च वसंततिलकयाह—

भाग्यार्यमश्रुतिमघेंद्रविधातृमूल-
मैत्रांत्यभेषु कथितं कणमर्दनं सत् ॥

Aho ! Shrutgyanam

द्वीशाजपाग्निर्ऋतिधातृशतार्यमर्क्षे
सस्यस्य रोपणमिहार्किकुजौ विना सत् ॥ ३२ ॥

भाग्येति ॥ विधाता रोहिणी अंत्यं रेवती एषु नव भेषु कणानां चणकादीनां मर्दनं यष्टिघातादिना वितुषीकरणं सत्समीचीनं स्यात् । अथ विशाखादिषण्नक्षत्रैः आर्किकुजौ विना शनिभौमतोऽन्यवारेषु सस्यस्य धान्यस्य रोपणं सत् शुभम् ॥ ३२ ॥

अथ धान्यस्थितिं धान्यवृद्धिं च वसंततिलकयाह—

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेंद्रविभिन्नभेषु
कर्काजतौलिरहिते च तनौ शुभाहे ॥
धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता ध्रुवेज्य-
द्वीशेंद्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥ ३३ ॥

मिश्रोग्रेति ॥ मिश्रोग्रादिविभिन्नेषु मिश्रादिदशनक्षत्रेभ्योऽन्येषु सप्तदशनक्षत्रेषु तथा कर्कमेषतुलारहिते लग्ने मकरस्थिरद्विस्वभावलग्नेषु शुभाहे चंद्रबुधगुरुशुक्रवारे धान्यानां स्थितिरेकत्र स्थले स्थापनं सा शुभकरी निगदिता । अथ ध्रुवेज्यादित्रयोदशनक्षत्रेषु धान्यवृद्धिः । मह्यमेतावद्धान्यं देहि ततो मासद्वयानंतरं सपादं सार्धं वा दास्यामीत्येवंरूपा वृद्धिर्निगदिता ॥ ३३ ॥

अथ शांतिकपौष्टिकादिकं वसंततिलकयाह—

क्षिप्रध्रुवांत्यचरमैत्रमघासु शस्तं
स्याच्छांतिकं च सह पौष्टिकमंगलाभ्याम् ॥
खेऽर्के विधौ सुखगते तनुगे गुरौ नो
मौढ्यादिदुष्टसमये शुभदं निमित्ते ॥ ३४ ॥

क्षिप्रेति ॥ क्षिप्रादिनक्षत्रेषु पौष्टिकमंगलाभ्यां सह पौष्टिककर्मणा ग्रहशांत्या मंगलकर्मणा विनायकशांत्या सह शांतिकं दुष्टफलदमूलादिनक्षत्रोत्पन्नशांत्यादि शुभं स्यात् । लग्नात् खे दशमेऽर्के सति विधौ चंद्रे सुखगते चतुर्थे गुरौ लग्नस्थे सति तत् शांतिकं मौढ्यादिदुष्टसमये गुरुशुक्रास्तादिदुष्टकाले नो शुभदम् । तथा निमित्ते केत्वाद्युत्पातदर्शने सति गुरुशुक्रास्तादावपि शुभदं स्यात् । उक्तं च । शांतिकर्माणि कुर्वीत रोगे नैमित्तिके तथा । गुरुभार्गवमौढ्येऽपि दोषस्तत्र न विद्यते ॥ ३४ ॥

अथ होमाहुतिशुद्धिमनुष्टुभाह—

सूर्यभात्त्रित्रिभे चांद्रे सूर्यविच्छुक्रपंगवः ॥
चंद्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले ॥ ३५ ॥

Aho ! Shrutgyanam

सूर्यभादिति ॥ सूर्याक्रांतनक्षत्रात्त्रित्रिभे नक्षत्रत्रयमध्ये चांद्रे चंद्रनक्षत्रे दिननक्षत्रे सति क्रमात्सूर्यादिमुखे होमाहुतिः पतति । यथा सूर्याक्रांतनक्षत्रात् नक्षत्रत्रयमध्ये होमारंभे सूर्यमुखे होमाहुतिपातः । ततो नक्षत्रत्रयेषु बुधस्य ततः शुक्रस्य ततः पंगोः शनेः ततश्चंद्रस्य तत आरस्य भौमस्य तत ईज्यस्य गुरोः ततः अगोः राहोः ततः शिखिनः केतोः एवं सति यद्दिने खले पापग्रहमुखे होमाहुतिः पतति सा नेष्टा न शुभदा । अर्थाच्छुभग्रहमुखे शुभा सूर्यनक्षत्राच्चंद्रनक्षत्रपर्यंतं गणना ॥ ३५ ॥

अथ यद्दिने होमश्चिकीर्षितस्तद्दिने वह्निनिवासवशेन शुभाशुभफलमिंद्रवज्रयाह—

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः ॥
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ॥ ३६ ॥

सैकेति ॥ शुक्लादिगणनया वर्तमानतिथिर्गण्या एकयुता वर्तमानवारयुता चतुर्भक्ता यच्छेषं तच्चेद्गुणमितं त्रिमितं शून्यमितं च तदा भुवि भूमौ वन्हेर्वासो वसतिः । फलमाह । सौख्याय होमे । होमदिने भूमावग्नेर्वासे सति सौख्यं भवति । अथ शशियुग्मशेषे एकमितशेषेऽग्निवासो दिवि स्वर्गे । तत्फलं कर्तुः प्राणनाशः । द्विमिते शेषेऽग्निवासो भूतले । तत्फलं कर्तुरर्थनाशः । उक्तं च । तिथिवारयुतिः सैका वेदभक्तावशेषकात् । निवासोऽग्नेर्व्योम्नि रूपे वित्तप्राणविनाशदः ॥ पाताले द्विकशेषेण धनसंचयनाशनः । गुणवेदावशेषेण भूमौ विपुलसौख्यदः ॥ संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नापि वैष्णवे । नित्ये नैमित्तिके कार्ये न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः ॥ कैश्चित्खेटसुप्तमपि होमे वर्ज्यमित्युक्तम् । तद्यथा । अर्कश्चंद्राद्ष्टमे ज्ञाच्चतुर्थे मंदः शुक्रादष्टमेंऽगारकश्च ॥ राहुर्धर्मे जीवतः खेटसुप्ते होमे नाशः पुत्रदाराधनानामिति ॥ ३६ ॥

अथ प्रतिवर्षोत्पन्ननवान्नभक्षणमनुष्टुभाह—

नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम् ॥
विना नंदाविषघटीमधुपौषार्किभूमिजान् ॥ ३७ ॥

नवान्नमिति ॥ चरादिद्वादशभेषु सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभग्रहैर्युते दृष्टे चेत्यर्थः । नंदातिथयः १, ६, ११ विषघटीर्विवाहप्रकरणोक्ताः मधुश्चैत्रः पौषः आर्किः शनिः भूमिजो भौमः एतान्विना वर्जयित्वा नवान्नभक्षणं शुभम् ॥ ३७ ॥

अथ नौकाघटनमनुष्टुभाह—

याम्यत्रयविशाखेंद्रसार्पपित्र्येशभिन्नभे ॥
भृग्वीज्यार्कदिने नौकाघटनं सत्तनौ शुभम् ॥ ३८ ॥

याम्यत्रयेति ॥ याम्यत्रयं भरणीकृत्तिकारोहिण्यः ईश आर्द्रा अन्यानि प्रसिद्धानि

Aho ! Shrutgyanam

एभ्यो भिन्ननक्षत्रेषु शुक्रगुरुरविवारेषु सत्तनौ शुभयुतदृष्टे लग्ने नौकाघटनं नौकानिर्माणं शुभम् । नौकाचालननौकागमनमुहूर्तौ दीपिकायाम् । शुभाहे विष्णुयुग्मेंदुभगमैत्राश्विपाणिषु । चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथींदुषु ॥ अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वा मित्रधनाच्युतभे शुभलग्ने । तारकयोगतिथींदुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे ॥ ३८ ॥

अथ वीरसाधनाभिचारयोर्मुहूर्तमनुष्टुभाह—

मूलार्द्राभरणीपित्र्यमृगे सौम्ये घटे तनौ ॥
सुखे शुक्रेऽष्टमे शुद्धे सिद्धिर्वीराभिचारयोः ॥ ३९ ॥

मूलेति ॥ मूलादिनक्षत्रपंचके तथा घटे तनौ कुंभलग्ने सौम्ये बुधे सति तथा शुभे सुखे चतुर्थे अष्टमे शुद्धे ग्रहरहिते तादृशे लग्ने वीरस्य धनस्य अभिचारस्य कर्मणः सिद्धिर्निष्पत्तिः ॥ ३९ ॥

अथ रोगनिर्मुक्तस्नानं वसंततिलकयाह—

व्यंत्यादितिध्रुवमघानिलसार्पधिष्ण्ये
रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवींदुवारे ॥
स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं
हीने विधौ खलखगैर्भवकेंद्रकोणे ॥ ४० ॥

व्यंत्येति ॥ विगतान्यंत्यादीनि रेवत्यादीनि नव धिष्ण्यानि येभ्यस्तेष्वष्टादशाशिष्टनक्षत्रेषु तथा रिक्तासंज्ञासु तिथिषु चरलग्ने तथा शुक्रचंद्रवर्जितवारे तथा विधौ चंद्रे हीने निषिद्धस्थानस्थे । निषिद्धस्थानानि गोचरप्रकरणे । तथा पापग्रहैर्भवे एकादशे केंद्रे प्रथमचतुर्थसप्तमदशमे १,४,७,१० कोणे नवपंचमे स्थाने स्थितैः सद्भिः एवंविधे लग्ने रुजा विरहितस्य रोगनिर्मुक्तस्य जनस्य स्नानं आरोग्यस्नानं शस्तं शुभम् । नारदः । स्थिरेज्यादितिसार्पोत्यपितृवारुणभेषु च । न कुर्याद्रोगमुक्तस्तु स्नानं वारेऽब्जशुक्रयोरिति ॥ ४० ॥

अथ शिल्पविद्यामनुष्टुभाह—

मृदुध्रुवक्षिप्रचरे ज्ञे गुरौ वा खलग्नगे ॥
विधौ ज्ञजीववर्गस्थे शिल्पविद्या प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

मृदुध्रुवेति ॥ मृदुध्रुवादिनक्षत्रे ज्ञे बुधे दशमलग्ने वा सति अथवा गुरौ दशमे लग्ने वा सति । तथा विधौ चंद्रे बुधगुरुषड्वर्गस्थे च सति शिल्पविद्या नानावर्णादिनिर्मितमूर्त्यादिकं तद्विद्यायाः प्रारंभः प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

अथ संधामनुष्टुभाह—

सुरेज्यमित्रभाग्येषु चाष्टम्यां तैतिले हरौ ॥

Aho ! Shrutgyanam

शुक्रदृष्टे तनौ सौम्यवारे संधानमिष्यते ॥ ४२ ॥

सुरेज्येति ॥ पुष्यादिनक्षत्रेषु तथाऽष्टम्यां तिथौ हरौ द्वादश्यां च तिथौ तैतिलकरणे च तथा शुक्रदृष्टे युते च लग्ने तथा शुभग्रहाणां वारे संधानं संधिर्मैत्रीति यावत् इष्यते । तथा च कश्यपः । भाग्ये पुष्ये समैत्रे च लग्ने शुक्रेक्षिते युते । करणे तैतिलेऽष्टम्यां द्वादश्यां संधिरिष्यते ॥ ४२ ॥

अथ परीक्षामुहूर्तं वसंततिलकयाह—

त्यक्त्वाष्ट८भूत१४शनिविष्टिकुजान् जनुर्भ-
मासौ मृतौ रविविधू अपि भानि नाड्यः ॥
द्व्यंगे चरे तनुलवे शशिजीवतारा-
शुद्धौ करादितिहरींद्रकपे परीक्षा ॥ ४३ ॥

त्यक्तेति ॥ भूतश्चतुर्दशी जनुर्भमासौ जन्मर्क्षं जन्ममासश्च जन्मराशेरष्टमं सूर्यं चंद्रं च नाड्यः भानि जन्मभकर्मभादिनक्षत्राणि नाडीनक्षत्राणि एतानि त्यक्त्वा द्व्यंगे द्विस्वभावे चरलग्ने वा तन्नवांशे च चंद्रशुद्धौ ताराशुद्धौ गुरुशुद्धौ च सत्यां करो हस्तः अदितिः पुनर्वसुः हरिः श्रवणः इंद्रो ज्येष्ठा कं जलं तत्स्वामी वरुणस्तस्य नक्षत्रं शततारका एषु भेषु परीक्षा कार्या अन्यत्स्पष्टम् । परीक्षानाम सुवर्णस्तेयादिपातकाभिशस्तस्य शुद्ध्यशुद्धिविचारपूर्वकं तप्तमाषादिरूपा दिव्यमिति यावत् । उक्तं च दीपिकायाम् । नो शुक्रास्तेऽष्टमार्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेंदौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ । नाडीनक्षत्रहीने सुरगुरुरजनीनाथताराविशुद्धौ प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने इति । व्यवहारोच्चये । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे । न परीक्षाधिवासश्च शनिभौमदिने भवेत् ॥ ज्येष्ठश्रवणहस्तश्च तथा ज्ञेयः पुनर्वसुः । तद्वच्छतभिषा प्रोक्ता ह्यभियुक्तविचारणे इति । नाडीनक्षत्राणि दीपिकाकारवचनात् । जन्मर्क्षमाद्यं दशमं च कर्म संघातिकं षोडशभं च मानसम् । स्यात्पंचविंशं समुदायमष्टादशं त्रयोविंशतिभं विनाशकम् ॥ एवं षड्भो जनः सर्वो जातिदेशाभिषेकभैः ॥ नवभो नृपतिर्ज्ञेयो नाडीताराः स्मृता अमूरिति । नृजातिनक्षत्राणि वराहसंहितायाम् । पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां च पुष्येण सहोत्तरा च । सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥ आदित्यहस्ताभिजिदश्विभानि वणिग्जनस्वाम्यमुपागतानि । मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्यग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥ सौम्येंद्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि । सार्पं विशाखाश्रवणे भरण्याश्चांडालजातेरभिनिर्दिशंतीति ॥ देशो वाराणस्यादिकस्तन्नक्षत्रं शतपदचक्रोक्तम् । यथा वारणस्या नक्षत्रं रोहिणीति । अभिषेकभं यस्मिन्पुष्यादिके नक्षत्रे राजाभिषेको जातस्तदभिषेकर्क्षमिति राज्ञां नव भानि इतरेषां षडेव भानि ॥ ४३ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ सामान्यतः शुभकार्येषु लग्नशुद्धिमनुष्टुभाह—

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते ॥
चंद्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारंभः प्रसिद्ध्यति ॥ ४४ ॥

व्ययेति ॥ व्ययो द्वादशमष्टमं एतत्स्थानद्वयं शुद्धं ग्रहरहितं यस्मिन्नेतादृशे स्वजन्मराशेर्जन्मलग्नाद्वा उपचयभवने त्रिषडेकादशदशमराशौ लग्नगते शुभैर्दृष्टे युते च तथा चंद्रे त्रिषड्दशायस्थे सति सर्वेषां शुभकार्याणामारंभः प्रसिद्ध्यति । तथा च वसिष्ठः । उपचयभे लग्नगते व्ययनैधनशुद्धिसंयुते लग्ने । उपचयगे शीतकरे मंगलकर्माणि कार्याणीति॥४४॥

अथ नक्षत्रेषु ज्वरोत्पत्तौ सत्यां तन्निवृत्तौ दिनसंख्यां द्वितीयोपजातिकयोपेंद्रवज्रया चाह—

स्वातींद्रपूर्वाशिवसार्पभे मृतिर्ज्वरेऽन्त्यमैत्रे स्थिरता भवेद्रुजः ॥
याम्यश्रवो वारुणतक्षभे शिवा११घस्राहिपक्षो१५द्व्यधिपार्कवासवे ४५
मूलाग्निदास्रे नव पित्र्यभे नखा२०बुध्न्यार्यमेज्यादितिधातृभे नगाः ७॥
मासोऽब्जवैश्वेऽथ यमाहिमूलभे मिश्रेशपित्र्ये फणिदंशने मृतिः ४६

स्वातींद्रेति ॥ मूलाग्नीति ॥ स्वाती ज्येष्ठा पूर्वात्रयार्द्राश्लेषासु ज्वरे ज्वरोत्पत्तौ सत्यां मृतिर्मरणं स्यात् । अथांत्यमैत्रे रेवत्यनुराधयोर्ज्वरोत्पत्तौ रुजो रोगस्य स्थिरता बहुकालेन रोगनिवृत्तिः स्यात् । तथा भरणीश्रवणशततारा: तक्षभं चित्रा एतेषु नक्षत्रेषु शिवा घस्राः एकादश दिवसाः रोगः । द्व्यधिपं विशाखा अर्कों हस्तः वासवं धनिनष्ठा एषु त्रिषु भेषु पंचदश दिवसाः रोगः ॥ ४५ ॥ मूलं अग्निः कृत्तिका दास्रमश्विनी एषु नव दिवसा रोगः । पित्र्यभे मघायां नखा विंशतिर्दिवसाः । बुध्न्यभं उत्तराभाद्रपदा अर्यमा उत्तराफल्गुनी पुष्यपुनर्वसुरोहिणीषु नगाः सप्त दिवसा रोगः । अब्जवैश्वे मृगोत्तराषाढयोः मासस्त्रिंशद्दिनानि रोगस्थैर्यं ततो रोगनिवृत्तिः । अत्र शांतिर्वसिष्ठोक्ता । ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिंगमंत्रैश्च सुगंधपुष्पैः । वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलधूपदीपनैवेद्यतांबूलफलैश्च सम्यक् ॥ पूजां च कृत्वामयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलं शिवाय । आमयो रोगः । अतुलमपरिमितद्रव्यम् ॥ अथानंतरं यमाहिमूलभे भरण्याश्लेषामूलेषु कृत्तिकाविशाखार्द्रामघासु च सप्तनक्षत्रेषु यस्य कस्यचित्फणिदंशने सर्पदंशने मृतिर्भवेत् । अत्र सर्पदंशे यस्य एतेषु गोचरवशेन चंद्रबलं न भवति तस्यैव सर्पदंशेन मृतिः स्यात् । उक्तं च दीपिकाटीकाकृताऽच्युतभट्टेन । यद्यत्र चंद्रस्तस्यैव गोचरे चाशुभप्रदः । तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिन इति ॥ ४६ ॥

अथ शीघ्रं रोगिमरणे विशिष्टयोगं द्वितीयोपजातिकयाह—

रौद्राहिशाक्रांबुपयाम्यपूर्वाद्विदैववस्वग्निषु पापवारे ॥

Aho ! Shrutgyanam

रिक्ताहरिस्कंददिने च रोगे शीघ्रं भवेद्रोगिजनस्य मृत्युः ॥४७॥

रौद्राहीति ॥ रौद्रादिनक्षत्रेषु पापवारे सति रिक्ताः प्रसिद्धाः हरिर्द्वादशी स्कंददिनं षष्ठी एतासु तिथिषु एवंविधे विशिष्टयोगे यस्य रोगोत्पत्तिर्भवति तस्य रोगिजनस्य शीघ्रं मृत्युर्भवेत् ॥ ४७ ॥

अथ प्रेतदाहमुहूर्तं प्रेतदाहादिनिषेधं चेंद्रवंशयाह—

क्षिप्राहिमूलेंदुहरीशवायुभे प्रेतक्रिया स्याज्झषकुंभगे विधौ ॥
प्रेतस्य दाहं यमदिग्गमं त्यजेच्छय्यावितानं गृहगोपनादि च ॥ ४८ ॥

क्षिप्रेति ॥ क्षिप्रादिनक्षत्रेषु प्रेतक्रिया प्रेतानां मृतानां क्रिया उत्तमलोकप्राप्त्यर्थं श्राद्धादिक्रिया स्यात् । यदि दाहसमये कारणवशान्नारब्धा। अथ झषकुंभगे विधौ मीनकुंभस्थिते चंद्रे धनिष्ठोत्तरार्धादिपंचनक्षत्रे प्रेतस्य दाहो ज्वालनं त्यजेत् । च पुनः यमदिग्गमं दक्षिणदिशि गमनं यात्रां तथा शय्यायाः खट्वाया वितानं वयनं तथा गृहगोपनं गृहाच्छादनं आदिशब्देन तृणकाष्ठसंग्रहं च त्यजेत् । ब्रह्मपुराणे पंचके मरणमपि निषिद्धम् । कुंभमीनस्थिते चंद्रे मरणं यस्य जायते । न तस्योर्ध्वा गतिर्दृष्टा संततेर्न शुभं भवेदिति ॥ तेन पंचके मृतस्य पंचके दाहप्राप्तौ सत्यां तत्पुत्तलविधिं कृत्वा दाहः कार्यः । पश्चादाशौचनिवृत्त्यनंतरं शांतिकं कार्यम् । यदि पंचकप्रवृत्तेः प्रागेव मृतस्तस्य प्रतिबंधवशात्पंचके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिं कृत्वा दाहः कार्यः । आशौचनिवृत्त्यनंतरं शांतिर्न कार्या । एवं रेवत्यंतमृतस्य रेवतीमपहाय दाहः कार्यो न पुत्तलविधिः । आशौचनिवृत्त्यनंतरं शांतिरेव कार्या । मरणनिषेधदाहनिषेधप्रतिपादकवचनद्वयसद्भावादिति ॥ ४८ ॥

अथ काष्ठानां गोमयपिंडानां च संग्रहमुहूर्तं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सूर्यर्क्षाद्रसभैरधःस्थलगतैः पाको रसैः संयुतः
शीर्षे युग्ममितैः शवस्य दहनं मध्ये युगैः सर्पभीः ॥
प्रागाशादिषु वेदभैः स्वसुहृदां स्यात्संगमो रोगभीः
क्वाथादेः करणं सुखं च गदितं काष्ठादिसंस्थापने ॥ ४९ ॥

सूर्यर्क्षाद्रसभैरिति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ४९ ॥

अथ त्रिपुष्करयोगं सफलं वसंततिलकयाह—

भद्रातिथौ रविजभूतनयार्कवारे
द्वीशार्यमाजचरणादितिवह्निवैश्वे ॥
त्रैपुष्करो भवति मृत्युविनाशवृद्धौ
त्रैगुण्यदो द्विगुणकृद्वसुतक्षचांद्रे ॥ ५० ॥

Aho ! Shrutgyanam

भद्रातिथिरिति ॥ भद्रासंज्ञकतिथिर्द्वितीया सप्तमी द्वादशी शनिभौमसूर्यवारे भवति तथा द्वीशं विशाखा अर्यमोत्तराफल्गुनी अजचरणः पूर्वाभाद्रपदा अदितिः पुनर्वसुः वह्निः कृत्तिका वैश्वमुत्तराषाढा एषु नक्षत्रेषु उक्ततिथिवारनक्षत्ररूपे विशिष्टयोगे सति त्रैपुष्करः । त्रिपुष्कर एव त्रैपुष्करः स्वार्थेऽण् । त्रिपुष्करसंज्ञको योगो भवति । कीदृशः मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदः तद्दिने यदि कश्चिन्म्रियेत तद्दायादास्त्रयो म्रियेरन् । यदि किंचिद्वस्तु विनष्टं तदा तस्य तद्वस्तुत्रयनाशः । तथा किंचिद्वस्तु लब्धं तदा त्रिगुणस्तद्वस्तुलाभः । वसिष्ठः । रविरविजभौमवारे भद्रायां विषमपादमृक्षं चेत् । त्रैपुष्कराख्ययोगस्त्रिगुणफलो यमलभैर्द्विगुणः ॥ विषमपादानि । यन्नक्षत्रस्यैकचरणः पूर्वराशौ चरणत्रयमपरराशौ भवति तानि विषमचरणानि द्वीशार्यमेत्यादीनि । अथ वसुर्धनिष्ठा तक्षं चित्रा चांद्रं मृगः एतानि भानि भद्रातिथयः रविशनिभौमवाराश्च । अत्रापि विशिष्टयोगे द्विपुष्करनामयोगो भवति । तत्फलं मृत्युविनाशवृद्धौ द्वैगुण्यकृद्भवति । तत्र शांतिमाह नारदः । दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा । द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वृक्षमात्रत इति । अत्र त्रिपुष्करे कश्यपेन रविस्थाने बृहस्पतिवारोऽप्युक्तः । भद्रातिथिः शनीज्यारवारे चेद्विषमांघ्रिभम् । त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं द्व्यंघ्रिभं मृताविति । इदमेव दृष्ट्वा श्रीपतिनाप्युक्तम् । विषमचचरणं धिष्ण्यमित्यादि । अत्र कश्यपवाक्ये मृतावेव त्रिगुणफलतोक्ता । ग्रंथकृता तु श्रीपतिवाक्यानुरोधान्मृत्युविनाशवृद्धावित्युक्तम् ॥ ५० ॥

अथ शवप्रतिकृतिदाहे निषिद्धकालं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शुक्रारार्किषु दर्शभूतमदने नंदासु तीक्ष्णोग्रभे
पौष्णे वारुणभे त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासेऽयने ॥
याम्येऽब्दात्परतश्च पातपरिघे देवेज्यशुक्रास्तके
भद्रावैधृतयोः शवप्रतिकृतेर्दाहो न पक्षे सिते ॥ ५१ ॥

शुक्रारेति ॥ एवंविधे दिने शवस्य प्रतिकृतिः पर्णशरादिना सावयवत्वकल्पनं तस्य दाहो न कार्यः । कुतः द्विविधो हि प्रेतसंस्कारः । प्रत्यक्षशरीरस्यैकस्तत्प्रतिकृतेरन्यः । तस्य प्रत्यक्षशरीरसंस्कारे दिनविचाराभावः । प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेदिति । प्रतिकृतिसंस्कारे कालत्रयं आशौचमध्ये वर्षमध्ये वर्षानंतरं चेति । आशौचमध्ये क्रियते पुनः संस्कारकर्म चेत् । शोधनीयं दिनं तत्र यथासंभवमेव तु ॥ आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदीति गार्ग्यवचनाद्दिनशुद्धिरुच्यते । शुक्रारार्किदिने शुक्रभौमशनिवारे शवप्रतिकृतेर्दाहो न कार्य इति प्रत्येकं संबंधः । दर्शोऽमावास्या भूतश्चतुर्दशी मदनस्त्रयोदशी नंदाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः आसु तिथिषु । तथा तीक्ष्णोग्रभे मूलार्द्राज्येष्ठाश्लेषास्तीक्ष्णानि पूर्वात्रयं मघा भरणी उग्राणि

Aho ! Shrutgyanam

पौष्णं रेवती वारुणभं शततारा । पूर्वोक्ते त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासे क्षयमासे अधिकमासे अयने याम्ये अब्दात्परतः अब्दमध्ये याम्यायनेऽपि कार्यः । नंदामदनभूतामापातवैधृतिविष्टिषु । शुक्रार्किभौमपरिघध्रुवमिश्रोग्रमैत्रभैः ॥ कर्तुश्चंद्रेऽष्टवेदांत्ये जन्मप्रत्यरितारके । त्रिपादभे सिते पक्षेऽयने याम्येऽब्दतः परम् ॥ शवप्रतिकृतेर्दाहः शुक्रेज्यास्ताधिमासके । नष्टो मध्यो द्विपान्मैत्रद्वीशादिति भगध्रुवे इति निबंधोक्तेः । दिनक्षयोऽपि वर्ज्यः । वर्जयेत्तु दिनक्षयमिति गार्ग्योक्तेः । पातपरिघे पातो व्यतीपातो महापातश्च परिघश्च एतेषु दाहो न कार्यः । देवेज्यशुक्रास्तके दाहो न कार्यः । भद्रायां वैधृतौ च तथा सिते शुक्लपक्षे इति ॥९१॥

अथ तेनैव छंदसा वर्ज्यांतराण्याह—

जन्मप्रत्यरितारयोर्मृतिसुखांत्येऽब्जे च कर्तुर्न स-
न्मध्यो मैत्रभगादितिध्रुवविशाखाद्व्यंघ्रिभे ज्ञेऽपि च ॥
श्रेष्ठोऽर्केज्यविधोर्दिने श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्ये तथा
त्वाशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासंभवम् ॥ ९२ ॥

जन्मप्रत्यरितारयोरिति ॥ कर्तुर्जन्मप्रत्यरितारयोः जन्मतारा उत्पत्तिनक्षत्रं दशमैकोनविंशं चेति । प्रत्यरितारा जन्मभात्पंचमचतुर्दशत्रयोविंशं नक्षत्रम् । तथा कर्तुर्मृतिसुखांत्येऽब्जे अष्टमचतुर्थद्वादशस्थे चंद्रे सति दाहो न सन्न प्रशस्तः । अथ मध्यनक्षत्राणि मैत्रमनुराधा भगः पूर्वाफल्गुनी अदितिः पुनर्वसुः ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं विशाखा द्व्यंघ्रिभं मृगचित्राधनिष्टाः ज्ञे बुधेऽपि शवदाहो मध्यमः । अथोत्तमानि अर्केज्याभ्यां सहितो विधुः अर्कगुरुचंद्रवारे तथा श्रवणहस्तस्वात्यश्विनीपुष्येषु पंच नक्षत्रेषु शवप्रतिकृतेर्दाहः श्रेष्ठः । इदमखिलमाशौचात्परतोऽनंतरम् । मध्ये तु यथासंभवं किंचिद्गुणांगीकारेण विचार्यम् ॥ ९२ ॥

अथ मूलनक्षत्रजातस्य विशेषमुपजातिकयाह—

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठांत्यमूलादिभवं हि नारदः ॥
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणकम् ॥ ९३ ॥

अभुक्तमूलमिति ॥ नारदः । अभुक्तमूललक्षणं ज्येष्ठांत्यमूलादिभवं घटीचतुष्टयं जगौ । ज्येष्ठांत्यघटीचतुष्टयं मूलादिघटीचतुष्टयं चेत्यर्थः । नारदः । यो ज्येष्ठामूलयोरंतरालप्रहरजः शिशुः । अभुक्तमूलजः सार्पमघानक्षत्रयोरपि ॥ अयमेव मुख्यः पक्षः कश्यपादिबहुमुनिसंवादात् । कश्यपः । ज्येष्ठांत्यमूलयोरंतरालयामोद्भवः शिशुः । अभुक्तमूलजः सोऽथ त्वाश्लेषापित्र्ययोरपि ॥ वसिष्ठोऽपि । भुजंगपौरंदरपौष्णभानां तदग्रभानां च यदंतरालम् । अभुक्तमूलं प्रहरप्रमाणं त्यजेत्सुतं तत्र भवां सुतां चेति । वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ

Aho ! Shrutgyanam

ज्येष्ठांते एकघटिका मूलाद्यघटिकाद्वयमित्यर्थः । इदं वसिष्ठेन केचिन्मतमुक्तम् । यतस्तद्वाक्ये केचित् अपरे इति पदोक्तेः । तद्वाक्यं च । ज्येष्ठांत्यपादघटिकामितमेव केचिन्मूलं ह्यभुक्तमपरे पुनरामनंति । मूलाद्यपादघटिकाद्वितयेन सार्धमष्टौ समाः परिहरेदिह जन्मभाजमिति । बृहस्पतिस्तु एकघटीप्रमाणकं जगौ । ज्येष्ठांत्यार्धघटिका मूलाद्या चार्धघटिकेत्यर्थः । गुरुः । ज्येष्ठांत्यघटिकार्धं च मूलादौ घटिकार्धकम् । तयोरंतर्गता नाडी ह्यभुक्तं मूलमुच्यत इति ॥ ५३ ॥

अथान्य आचार्या उपजातिकयाहुः—

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघस्यो मूलस्य शाक्रांतिमपंच नाड्यः ॥
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्ट समा न पश्येत् ॥५४॥

अथोचुरन्य इति ॥ आचार्याः प्रोचुः । मूलस्य प्रथमा अष्ट घटिकाः शाक्रस्य ज्येष्ठाया अंतिमाः पंच नाडिका एवमुभयोरंतराले त्रयोदश घटिका अभुक्तसंज्ञकाः प्रोचुः । उक्तं च । ज्येष्ठांत्या घटिकाः पंच मूलाद्या वसुनाडिकाः । अभुक्तमिति तज्ज्ञेयं तत्र जातं शिशुं त्यजेदिति ॥ तत्फलमाह । तत्राभुक्तमूले जातं शिशुं बालं बालां वा पिता परित्यजेत् । त्यागाशक्तौ वा पितास्य बालस्याष्ट समा अष्टौ वर्षाणि मुखं न पश्येत् । नारदः । अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीमपि परित्यजेत् । अथवाब्दाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेदिति । अत्र घटीनां न्यूनाधिक्यकथनं दोषस्याधिक्यालपत्वकथनार्थं ज्ञेयम् ॥ ५४ ॥

अथ मूलाश्लेषाजातस्य चरणवशेन फलमुपजातिकयाह—

आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये ॥
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शांत्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ॥५५॥

आद्ये पितेति ॥ मूलप्रथमचरणे जातस्य बालस्य पिता नाशं प्राप्नोति । द्वितीयचरणे जननी माता नाशं प्राप्नोति । सापत्नमातरि मातृशब्दो गौणः । तेन गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्यय इति जननीपदप्रयोगः । तृतीयचरणे धनं नश्यति । चतुर्थश्चरणो बालस्य शुभः । अत्र विशेषो नारदेनोक्तः । दिवा जातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा । आत्मानं संध्ययोर्हंति नास्ति गंडो निरामयः ॥ वसिष्ठस्तु । मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पितुर्विनाशम् । द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः ॥ अथानंतरं शांत्या मूलाश्लेषाशांत्या स्वनुष्ठितया सर्वत्र चरणचतुष्टयेऽपि सत् शुभमनिष्टफलनाशकं कल्याणं स्यात् । शास्त्रोक्तरीत्या खलु सूतकांते मासे तृतीयेऽप्यथ वत्सरांते इति कालत्रयं वसिष्ठेनोक्तम् । मातृगंडे तु विशेषः । मातृगंडे सुते जाते सूतकांते विचक्षणः । कुर्याच्छांतिं तदृक्षे वा तद्दोषस्यापनुत्तये । शिष्टास्तु । सर्वत्रापि यन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्र एव शांतिरिति व्यवहरंति । अथाहिभे विलोममिति आश्लेषायां मूलपादोक्तं फलं विलोमं वि-

Aho ! Shrutgyanam

परीतं ज्ञेयम् । मूलस्य प्रथमपादे पितृनाश इत्युक्तं स आश्लेषाचतुर्थपादोत्पन्नस्य । द्वितीयपादे मातृनाशः स आश्लेषातृतीयचरणे । तृतीयचरणे धननाश उक्तः स आश्लेषाद्वितीयचरणे । चतुर्थचरणे शुभमुक्तं तदाश्लेषाप्रथमचरणे ज्ञेयम् । अत्र बहुविचारोऽस्ति ग्रंथभूयस्त्वभयान्न लिख्यते । अथ कैश्चिन्मूलवृक्षादिविचार उक्तो जयार्णवे । मूलस्तंभस्त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पंचाब्धयोऽग्नयः मूले तु मूलनाशः स्यात्स्तंभे वंशविनाशनम् । त्वचि मातुर्भवेत्क्लेशः शाखायां मातुलस्य च । पत्रे राज्यं विजानीयात्पुष्पे मंत्रिपदं स्मृतम् । फले च विपुला लक्ष्मीः शिखायामल्पजीवितम् । अस्य मूलपुरुषस्यांगेषु घटीन्यासस्तत्रैव । मूलस्य घटिकान्यासो मूर्ध्नि पंच नृपो भवेत् । मुखे सप्त मृतिः पित्रोः स्कंधे वेदा महाबलः । बाह्वोरष्टौ बली पाण्योस्तिस्रो हत्यान्वितो भवेत् । हृदि खेटा भूपमंत्री नाभौ द्वौ ब्रह्मविद्भवेत् । गुह्ये दशातिकामी स्याज्जानुनोः षण्महामतिः । पादयोः षण्मृतिस्तस्येत्युक्तवान्कमलासन इति । अथ मूलोद्भूतकन्यायाः फलार्थं मूलांगविभागस्तत्रैव । चतस्रो नाडिकाः शीर्षे कुर्वंति पशुनाशनम् । मुखे षट् धनहानिः स्यात्कंठे पंच धनागमः । कौटिल्यं हृदये पंच बाव्होर्वित्तागमस्ततः । वेदाः पाण्योर्दयाधर्मं वेदा गुह्येऽतिकामिनी । ज्येष्ठमातुलनाशश्च जंघयोर्युगनाडिकाः । ज्येष्ठभ्रातृविनाशश्च चतस्रो जानुयुग्मके । पादयोर्दश नाड्यश्च तत्र वैधव्यमादिशेत् । इति मूलप्रसूताया मुनिभिः फलमीरितम् ॥ अथाश्लेषाजातयोः पुत्रकन्ययोरंगविभागेन फलं तत्रैव । मूर्ध्नि पंचसु राज्याप्तिर्मुखे सप्त पितृक्षयः । नेत्रे द्वे जननीनाशो ग्रीवायां स्त्रीषु लंपटः ॥ स्कंधे वेदा गुरौ भक्तिर्हस्तेऽष्टौ च बली भवेत् । हृद्येकादशभिश्चात्मघाती संजायते नरः ॥ स्त्री वा नाभौ भ्रमः षड्भिर्गुदे नव तपोधन । पादे पंच धनं हंति सार्पादेतत्फलं क्रमात् । अथाश्लेषावृक्षोऽपि तत्रैवोक्तः । फलं पुष्पं दलं शाखा त्वग्लता स्कंध एव च । सार्पवल्यां दशाक्षांकस्वरविश्वार्कसागराः । नाडिकास्तद्भवे बाले फलं ज्ञेयं यथाक्रमम् । श्रीः श्रीराजभयं हानिर्मातृपित्रात्मसंक्षय इति । अयं विभागो नक्षत्रस्य षष्टिघटिकात्मको ज्ञेयः । न्यूनातिरिक्ते अनुपातः ॥ ९९ ॥

अथ मूलनिवासं सफलमिंद्रवज्रयाह—

स्वर्गे शुचि प्रोष्ठपदेषमाघे भूमौ नभःकार्तिकचैत्रपौषे ॥
मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र ॥ ९६ ॥

स्वर्गे इति ॥ शुचिराषाढः प्रोष्ठपदो भाद्रपदः इष आश्विनः माघः प्रसिद्धः एषु मासेषु मूलं मूलनक्षत्रं स्वर्गेऽस्ति । श्रावणकार्तिकचैत्रपौषेषु भूमौ तिष्ठति । तपस्यः फाल्गुनः शुक्रो ज्येष्ठः फाल्गुनमार्गशीर्षवैशाखज्येष्ठेषु अधः पाताले मूलं तिष्ठति । तत्फलं च यदा मूलनक्षत्रं यस्मिन्मासे यत्र भवति तत्रैव स्वर्गमृत्युपातालेष्वेव प्रोक्तं शुभाशुभफलं

Aho ! Shrutgyanam

ददाति । तेन द्रव्याद्यभावे स्वर्गपातालस्थे मूले दोषाभावात् शांतेरनावश्यकत्वं ज्ञेयम् । यदा तु भूमावेव मूलं तदा शांतिरवश्यं विधेयेति शक्तेन । उक्तं च ज्योतिषार्णवे । भूमिष्ठं दोषबहुलं स्वल्पमन्यत्र संस्थितमिति ज्योतिर्निबंधे । मूलाश्विपित्र्यचरणे प्रथमे च नूनं पौष्णेंद्रयोश्च फणिनश्च तुरीयपादे । मातुः पितुः स्ववपुषोऽपि करोति नाशं जातो यदा निशि दिनेऽप्यथ संध्ययोर्वेति तत्रापि शांत्या शुभं भवतीति ज्ञेयम् ॥ ९६ ॥

अथ मूलप्रसंगाद्दुष्टेषु गंडांतादिनिमित्तेषु जातस्यारिष्टं परिहारं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गंडांतेंद्रभशूलपातपरिघव्याघातगंडावमे
संक्रांतिव्यतिपातवैधृतिसिनीवालीकुहूदर्शके ॥
वज्रे कृष्णचतुर्दशीषु यमघंटे दग्धयोगे मृतौ
विष्टौ सोदरभे जनिर्न पितृभे शस्ता शुभा शांतितः ॥ ९७ ॥

गंडांतेंद्रभेति ॥ एतेषु शिशोरुत्पत्तिर्नो शस्ता दुष्टफलदा । गंडातं तिथिनक्षत्रलग्नानां संधिः तल्लक्षणं ज्येष्ठापौष्णभेत्यादिना वक्ष्यति । इंद्रभं ज्येष्ठानक्षत्रं शूलयोगः पातो महापातः परिघव्याघातगंडयोगाः अवमस्तिथिक्षयः संक्रांतिः सूर्यसंक्रमणपुण्यकालः व्यतीपातवैधृती योगौ सिनीवाली दृष्टेंदुरमावास्या कुहूर्नष्टेंदुरमावस्या । सा दृष्टेंदुः सिनीवाली सा नष्टेंदुकला कुहूरित्यभिधानात् । दर्शश्चंद्रदर्शनरहितामावास्या एतद्भेदोऽग्रे प्रतिपादयिष्यते । वज्रे वज्रयोगे कृष्णपक्षचतुर्दश्याम् । यमघंटे मघाविशाखेत्युक्ते । दग्धयोगे सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनंदा इत्युक्ते । मृतौ द्वीशात्तोयादित्युक्ते मृत्युयोगे विष्टौ भद्रायाम् । सोदरस्य भ्रातुर्भगिन्या वा नक्षत्रे पितृभे । माता च पिता च पितरौ तयोर्भे मातृभे पितृभे च एषु निमित्तेषु सुतस्य सुताया वा जन्म चेत्स्यात्तदाऽनिष्टकृत्स्यादित्यर्थः । दुष्टनिमित्तस्योपलक्षणत्वात् त्रीतरजन्माप्यनिष्टम् सजातीयापत्यत्रयप्रसवानंतरं विजातीयापत्यप्रसवस्त्रीतरः । यथा पुत्रत्रयप्रसवानंतरं कन्याजन्म कन्यात्रयप्रसवानंतरं पुत्रजन्म सा जनिः शांतितः वसिष्ठादिप्रोक्तशांत्या स्वनुष्ठितया शुभा परिणामसुखदायिनीत्यर्थः ॥ ९७ ॥

अथ शांतयो लिख्यंते । तत्र प्रथमं मूलशांतिरुच्यते । शौनक उवाच । अथातः संप्रवक्ष्यामि मूलजातहिताय च । मातापित्रोर्धनस्यापि कुले शांतिं हिताय च ॥ त्यागो वा मूलजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम् । अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते ॥ अदर्शनाद्वापि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् । एवं च दुहितुर्ज्ञेयं मूलजातफलं बुधैः ॥ मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शांतिहोमस्य यत्नतः । जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे वा शुभे दिने ॥ समाष्टके वा मतिमान्कुर्याद्वै शांतिमादरात् । वसिष्ठः । सुसमे पुण्यदेशे तु मंडपं कारयेद्बुधः । कुंडं च तद्बहिः कुर्याद्ग्रहयज्ञोक्तमार्गतः ॥ पंचामृतं पंचगव्यं पंचत्वक् पल्लवानि च । उदुंबरवटाश्वत्थप्लक्षाम्रत्वक् सपल्लवाः ॥ शतौषधीमूलशंखनवरत्नानि मृत्तिकाः । कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे

Aho ! Shrutgyanam

मुराशैलेयचंदनम् ॥ वचा चंपकमुस्ता च सर्वौषध्यो दशैव हि । गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगम-स्थानसंभवाः ॥ ह्रदगोराजनगरद्वारतश्चाष्टमृत्तिकाः । शतौषधीमूलानि च अश्मरी १ सहदेवी २ अपराजिता ३ मुंडा ४ उशीर ५ वाला ६ अधःपुष्पी ७ शंखपुष्पी ८ ज्येष्ठीमधु ९ कोरकः १० चक्रांकिता ११ विष्णुक्रांता १२ शिवक्रांता १३ मयूरशिखा १४ काकजंघा १५ भृंगराज १६ कुमारी १७ यह १८ कर्णिकार १९ अपामार्ग २० बिल्व २१ षण्मूला २२ अंबुज २३ उत्तरा २४ पुत्रजीव २५ दूर्वा २६ काश २७ कुश २८ साल २९ ताल ३० चक्रमर्द ३१ सिंही ३२ व्याघ्री ३३ अर्क ३४ ल्क्ष ३५ पलाश ३६ पिप्पल ३७ वट ३८ उदुंबर ३९ तुलसी ४० उत्पल ४१ शतपत्र ४२ अतसी ४३ सारिवा ४४ कदंब ४५ बकुल ४६ शमी ४७ राहिक ४८ निर्गुंडी ४९ मुंडी ५० दंडी ५१ ब्राह्मी ५२ अशोक ५३ सूर्यभक्ता ५४ रुद्रजटा ५५ कदली ५६ बीजपूरक ५७ दमनक ५८ मुसली ५९ पुनर्नवा ६० आम्र ६१ पाटल ६२ श्रीपर्णी ६३ करवीर ६४ चंपक ६५ गुडूची ६६ देवदारु ६७ अगरु ६८ चंदन ६९ कुटज ७० शिग्रु ७१ हरिद्रा ७२ जटामांसी ७३ वचा ७४ कुष्ठ ७५ तज ७६ दारुहरिद्रा ७७ बंधुजीव ७८ सिंधुवार ७९ सटी ८० अश्वगंधा ८१ मुस्ता ८२ कुरंटक ८३ पनस ८४ जीवक ८५ जाती ८६ मालती ८७ मधुक ८८ खदिर ८९ सप्तच्छद ९० शिरीष ९१ काकमाची ९२ शतावरी ९३ केतकी ९४ जंबु ९५ शाखा ९६ वेतस ९७ आमलक ९८ सरल ९९ गिरिकर्णी १०० इति तिलमाषयवव्रीहिगोधूमानि प्रियंगवः । चणकैः सहिताः सप्त सद्बीजानि च सर्वदा ॥ वज्रमौक्तिकवैदूर्यपुष्परागेंद्रनीलकम् । पंचरत्नमिदं प्रोक्तं मंत्रैः कुंभेषु निक्षिपेत् ॥ सुवर्णेन प्रमाणेन तदर्धार्धेन वा पुनः । निर्ऋतिप्रतिमां कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ अत्र विशेषः शौनकेन । पलमानेन वार्धेन पादेनाथ स्वशक्तितः । नक्षत्रदेवतारूपं कारयित्वा विचक्षणः ॥ यद्वा मूल्यं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् । सुवर्णं सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनलः ॥ सर्वदेवात्मको विप्रः सर्वदेवमयो हरिरिति । वस्त्राणि षोडशाष्टौ च शुक्लसूक्ष्माण्यतंद्रितः । ब्राह्मणान्वरयेत्पश्चात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ श्रोत्रियांश्चतुरो वाऽष्टौ द्वादश त्वथ षोडश । प्रधानाचार्यमेतेषां श्रेष्ठं तत्प्रतिमार्चने ॥ ईशानादिचतुष्कोणेष्वव्रणान्जलपूरितान् । पूर्वोक्तद्रव्यसंयुक्तांस्थापयेद्रक्तवर्णकान् ॥ विप्रान्पृथक्पृथग्वापि मधुपर्कादिनार्चयेत् । द्वारेषु जापकानष्टौ द्वौ द्वौ च वरयेत्पुनः ॥ अब्लिंगैर्वारुणैर्मंत्रैः शुक्लपुष्पाक्षतादिभिः । तत्तत्कुंभे जलं स्पृष्ट्वा कुशकूर्चैर्जपेदिति ॥ रुद्रसूक्तं च भद्राग्नेरानोभद्रा इति क्रमात् । पुरुषसूक्तं च तन्मंत्रैर्देवान् ध्यात्वा प्रयत्नतः ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । पंचगव्यमिदं कुंभे क्षिपेद्गजमदान्वितम् ॥ रजतं कांचनं ताम्रं विद्रुमं तीर्थवारि च । निक्षिपेद्धेममूल्यं च दशाष्टयवनिर्मितम् ॥ देवदारुश्च शैलेयं पद्मं नीलोत्पलं तथा । वचां लोध्रं प्रियंगुं

Aho ! Shrutgyanam

च शतच्छिद्रे घटे क्षिपेत् ॥ वंशपात्रोपरि न्यस्तं शतच्छिद्रे घटे स्थितम् । ततश्च निर्ऋतिं देवमर्चयेत्पश्चिमामुखम् ॥ मोषुणस्त्विति मंत्रेण शुक्लवस्त्राक्षतादिभिः । मूलरूपं विधातव्यं श्यामं कुणपवाहनम् ॥ खड्गखेटधरं चोग्रं द्विभुजं च वृकाननम् । स्थापयेत्तं ग्रहांश्चैव वस्त्रगंधादिभिर्यजेत् ॥ चरुं च श्रपयेत्तत्र नैर्ऋतं दुष्कृतापहम् ॥ तत्र चत्वारः कुंभाश्चतुर्दिक्षु स्थाप्याः । एकः कुंभो रुद्रस्थापनार्थमन्यः स्थाप्यः । एकः शतच्छिद्रः कुंभः तस्मिन्कुंभे देवदारुशैलेयमित्याद्यौषधानि तथा सुवर्णमूल्यं अष्टादशयवपरिमितं निक्षिप्य तदुपरि वंशादिपात्रं निधाय तदुपरि वस्त्रं निधाय तत्र निर्ऋतिप्रतिमां इंद्रप्रतिमाजलप्रतिमासहितां स्थापयेत् । ततः षोडशोपचारैःपंचोपचारैर्वा पूजयेत् । उक्तं च शौनकेन । पुण्यर्ग्भिर्मंत्रितैस्तोयैः प्रोक्षितायां क्षितौ ततः । तत्रोदकुंभं सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणविवर्जितम् ॥ अकृष्णमूलं निर्णिक्तं पूरयेन्निर्मलांभसा । आकलशेष्वित्यनया कलशस्थापनं शुभम् ॥ इमं म इति मंत्रेण पूरयेत्तीर्थवारिणा । कुंभं च वस्त्रगंधाद्यैस्तत्तन्मंत्रैः प्रपूजयेत् ॥ याः फलिनीरित्यनया क्षिपेद्रत्नौषधादिकम् । वस्त्रावगुंठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा ॥ कूर्चहेमसमायुक्तं चूतपल्लवसंयुतम् । स्वस्तिकोपरि विन्यस्य क्षीरद्रुमसपल्लवैः ॥ द्रोणव्रीहींश्च निक्षिप्य ईशाने च निधापयेत् । पंचरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम् । अर्चितं गंधपुष्पाद्यैः श्रीरुद्रं तत्र संजपेत् । तथाप्रतिरथं सूक्तं शतरुद्रानुवाककम् ॥ रक्षामंत्रं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशन् जपेत् । त्रियंबकं जपेत्सम्यगष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ एकवारं तथा जापी पावमानीः स्पृशन् जपेत् । जपस्य पंच कुंभाश्च द्वयं वा तदलाभतः ॥ श्रीरुद्रस्यैककुंभं च सर्वसूक्तानि तत्र तु । तथान्यं पंचमं कुंभं पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ॥ चतुःप्रस्रवणं कुर्यात्पंचवक्त्रं च तद्भवेत् । वस्त्रावगुंठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा ॥ पंचरत्नसमायुक्तमाम्रपल्लवसंयुतम् । एतस्मिन्नपि पंचरत्नसप्तमृत्तिकाशतमूलदेवदारुप्रभृत्यौषधहेममूलानि क्षिपेत् । तत्र शतमूलालाभे । विष्णुक्रांता सहदेवी तुलसी च शतावरी । मूलानीमानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः ॥ तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्वर्णं वा रौप्यमृन्मयम् । शुद्धवस्त्रेण संछाद्य शतमूलानि निक्षिपेत् ॥ कुंभोपरि न्यसेद्विद्वान्मूलनक्षत्रदैवतम् । अधिप्रत्यधिदेवौ च दक्षिणोत्तरदेशयोः ॥ अधिदेवं यजेदादौ ज्येष्ठानक्षत्रदैवतम् । एवं प्रत्यधिदेवं च पूर्वाषाढर्क्षदैवतम् ॥ स्वलिंगोक्तैश्च मंत्रैश्च प्रधानादीन्प्रपूजयेत् । पंचामृतेन संस्नाप्य आवाह्याथ समर्चयेत् ॥ उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पंचोपचारकैः । रक्तचंदनगंधाद्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः ॥ मेषशृंगादिधूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च । सुरापोलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यैर्भोजनादिभिः ॥ मत्स्यमांससुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् । सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैंधवमिश्रितम् ॥ पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत । उक्तगंधाद्यलाभे तु यथालाभं समर्पयेत् ॥ पुष्पांतं तु समभ्यर्च्य होमं कुर्याद्यथोदितम् । निर्वापप्रोक्षणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि ॥ हविर्गृहीत्वा विधिना नैर्ऋतेर्वक्त्रमाहुनेत् । अत्र वसिष्ठेन विशेषोऽभिहितः ।

Aho ! Shrutgyanam

मूलं प्रजामिति मंत्रद्वयस्य कण्व ऋषिः निर्ऋतिर्देवता अनुष्टुप् छंदः मूलाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेत्युपहोममंत्रौ। पलाशसमिदाज्येन चरुणाऽष्टसहस्रकम्। अथवाष्टोत्तरशतं प्रत्येकं जुहुयात्ततः॥ मूलं प्रजामित्यष्टाभिर्वाक्यैर्मंत्रद्वयेन च। सावित्रसौम्यनैर्ऋत्यमंत्रैरश्वत्थसंभवैः॥ समिद्भिश्च तिलव्रीहीन् हुत्वा व्याहृतिभिस्ततः। मूलंप्रजामित्यष्टौ च वाक्यान्याचार्यको जपेत्॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा नियतात्मवान्। अयं होमप्रकारस्तु शाखांतरविषयो ध्येयः। मोषुणः परापरेति यत्ते देवेति वा पुनः। पायसं घृतसंमिश्रं हुनेदष्टोत्तरं शतम्॥ समिदाज्यचरून् पश्चाच्छक्तितः संख्यया हुनेत्। अधिदैवतयोश्चैव जुहुयात्स्वस्वमंत्रकैः॥ नक्षत्रदेवताभ्यश्च पायसेन तु होमयेत्। कृणुष्वेति पंचदशभिर्जुहुयात्कसरं ततः॥ गायत्र्या जातवेदसे त्रियंबकमिति क्रमात्। सीरा युंजंति तामग्निं वास्तोष्पत्यग्निमेव च॥ क्षेत्रस्य पतिना गृणानाग्निंदूतं तथैव च। श्रीसूक्तेन तथा विद्वान्समिदाज्यचरून् क्रमात्॥ अष्टोत्तरशतैर्वाथ अष्टाविंशतिभिः क्रमात्। अष्टाष्टसंख्ययावापि जुहुयाच्छक्तितो बुधः॥ त्वं नः सोमेन पायसं जुहुयात्तु त्रयोदश। चतुर्गृहीतमाज्यं च याते रुद्रेति मंत्रतः॥ स्रुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृतिभिः क्रमात्। हुत्वास्विष्टकृतं पश्चात्प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत्॥ आचार्यो यजमानो वा अग्नौ पूर्णाहुतिं हुनेत्। होमशेषं समाप्याथ वह्निमारोपयेत्ततः॥ कुंभाभिमंत्रणं कुर्याद्दक्षिणेनाभिमर्शयेत्। मृत्युप्रशमनार्थाय जपेच्च त्र्यंबकं शतम्॥ रुद्रकुंभोक्तमार्गेण रुद्रमंत्रं स्पृशन् जपेत्। धूपं दीपं च नैवेद्यं कुंभयुग्मे निवेदयेत्॥ प्रसादयेत्ततो देवमभिषेकार्थमादरात्। भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः॥ दारपुत्रसमेतस्य कुर्युः सर्वेऽभिषेचनम्। अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च। आपोहिष्ठेति नवभिरापद्माद्द्वयेन च॥ सहस्राक्षतृचेनापि देवस्य त्वेति मंत्रकैः। शिवसंकल्पमंत्रेण वक्ष्यमाणैश्च मंत्रकैः॥ योऽसौ वज्रधरो देवो महेंद्रो गजवाहनः। मूलजातशिशोर्दोषं मातापित्रोर्व्यपोहतु॥ योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुङ्मेषवाहनः। सप्तजिह्वश्च देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु॥ योऽसौ दंडधरो देवो धर्मो महिषवाहनः। मूलजातशिशोर्दोषं व्यपोहतु यमो मम॥ योऽसौ खड्गधरो देवो निर्ऋती राक्षसाधिपः। प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गंडांतसंभवम्॥ योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः। नक्रवाहः प्रचेताह्वो मूलोत्थाघं व्यपोहतु॥ योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः। प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शांतिदः॥ योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गभृन्नरवाहनः। मातापित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु॥ योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः। आश्लेषामूलगंडांतदोषमाशु व्यपोहतु॥ विघ्नेशः क्षेत्रपो दुर्गा लोकपाला नवग्रहाः। सर्वदोषप्रशमनं सर्वे कुर्वंतु शांतिदाः॥ तच्छंयोरभिषेकं तु सर्वदोषोपशांतिदम्। सर्वकामप्रदं दिव्यं मंगलानां च मंगलम्॥ वस्त्रांतरितकुंभाभ्यां पश्चात्तु स्नापयेद्बुधः। ततः शुक्लांबरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः॥ यजमानो दक्षिणाभिस्तो-

Aho ! Shrutgyanam

षयेदृत्विगादिकान् । धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् ॥ निर्ऋतिप्रतिमां कुंभं वस्त्रं हेमं च दापयेत् । ग्रहार्थवस्त्रप्रतिमास्तस्मै दद्यात्प्रयत्नतः ॥ श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वान्प्रयत्नतः । तत्कुंभवस्त्रप्रतिमास्तस्मैदद्यात्प्रयत्नतः ॥ उक्तालाभे ततो दद्यादाचार्यब्रह्मऋत्विजाम् । तत्तन्मूल्यं प्रदातव्यं शक्त्या वाथ प्रदापयेत् ॥ दद्यादन्नं पायसादि ब्राह्मणान् भोजयेच्छतम् । अलाभे सति पंचाशद्दशकं तदलाभतः ॥ सर्वशांतेश्च पठनमाशिषां ग्रहणं तथा । गृही क्षमापयेद्विद्वान्निर्ऋतिः प्रीयतामिति ॥ इति शौनकीये मूलशांतिः ॥ अथाश्लेषाशांतिरप्येवमेव कार्या । तत्र विभवे पूर्वोक्तवत्पंचकुंभाः स्थाप्याः । असंभवे कुंभद्वयम् । एकत्र रुद्रस्थापनं द्वितीये आश्लेषाप्रतिमास्थापनम् । अभिमंत्रादिपूर्ववत् । तत्राश्लेषाप्रतिमा सर्पाकारा अधिदैवतबृहस्पतिप्रतिमा प्रत्यधिदैवतपितृप्रतिमा स्थाप्या पूज्या च । नमो अस्तु सर्पेभ्य इति पूजामंत्र इतीरितः सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विभुजः पीतवस्त्रकः । फणकाधिधरस्तीक्ष्णो दिव्याभरणभूषितः । एवं ध्यात्वा ततोऽभ्यर्च्य होमकर्म समारभेत् । अभिषेके विशेषः । आश्लेषाऋक्षजातस्य मातापित्रोर्धनस्य च । भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु ॥ पितरः सर्वभूतानां रक्षंतु पितरः सदा । सार्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबांधवान् ॥ सर्पाधीश नमस्तुभ्यं नागानां च गणाधिप । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वारिष्टप्रशांतये ॥ इत्यर्घ्यमंत्रः । मूलनक्षत्रवत्कुर्यात्सर्पगंडे स्वनामतः । एतच्च मूलाश्लेषाशांतिकद्वयं विवाहे उपस्थिते श्वशुरस्य श्वश्र्वाश्च सत्वे मूलाश्लेषोत्पन्नयोरपि वधूवरयोस्तत्तदरिष्टनिवृत्त्यर्थं विधेयम् । उपलक्षणत्वाच्च ज्येष्ठाविशाखोत्पन्नाया वध्वा वरस्य ज्येष्ठबंधुकष्टशांतये च नारदः । मूलजा श्वशुरं हंति व्यालजा च तदंगनाम् । ऐंद्री पत्यग्रजं हंति देवरं तु द्विदैवजा ॥ शांतिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तर्हि दोषो न कश्चनेति ॥ इत्याश्लेषाशांतिः ॥ अथ गंडांतशांतिः । गंडशांतिं प्रवक्ष्यामि सोममंत्रेण भक्तिमान् । कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम् ॥ अष्टाभिश्च चतुर्भिर्वा द्वाभ्यां वा शोभनं तथा । तन्मध्ये पायसं शंखे नवनीतेन पूरिते ॥ राजतं चंद्रमभ्यर्चेत्सितपुष्पसहस्रकैः । दैवज्ञः शुक्लवासास्तु शुक्लमाल्यांबरार्चितः ॥ सोमोऽहमिति संचिंत्य पूजां कुर्यादतंद्रितः । दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गंडदोषप्रशांतये ॥ शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम् । गंडदोषोपशांत्यर्थं दद्याद्वेदविदे शुचिः ॥ अत्रापि पूर्ववत्प्रतिमाकलशहोमाभिषेकादिकं कार्यम् । तिथिगंडे त्वनड्वाहं नाक्षत्रे धेनुरुच्यते ॥ कांचनं लग्नगंडे तु गंडदोषो विनश्यति । आद्यभागे पितुर्गंडे त्रयाणामभिषेचनम् ॥ इतरत्र शिशोर्मातुरभिषेकं च कारयेत् । अन्यच्च । उत्तरातिष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च । कुर्याच्छांतिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजां बुधः ॥ चित्राद्यर्धे पुष्यमध्यद्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये । जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विघाती मातापित्रोर्भ्रातुरप्यात्मनश्च ॥ द्विमासश्चोत्तरादोषः पुष्यश्चैव त्रिमासकः । पूर्वाषाढाष्टमे मासि

Aho ! Shrutgyanam

चित्रा षाण्मासिकं फलम् ॥ नवमासं तथाश्लेषा मूले चाष्टौ समाः स्मृताः । ज्येष्ठा मासे पंचदशे पुत्रदर्शनवर्जनम् ॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्तिष्ये गोदानमिष्यते । अजा चित्रासुवैदेया पूर्वाषाढासु कांचनम् ॥ यवांश्च व्रीहिमाषांश्च तिलमुद्गांश्च दापयेत् । यथावित्तानुसारेण कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ पितुरायुष्यवृद्ध्यर्थं शांतिरत्र विधीयते । इति गंडांतादिशांतिः ॥

अथ ज्येष्ठाशांतिः । भरद्वाजः । ज्येष्ठादौ मातृजननीं मातामहं द्वितीयके । तृतीये मातुलं हंति चतुर्थे जननीं तथा ॥ आत्मानं पंचमे हंति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् । सप्तमे कुलनाशः स्यादष्टमे ज्येष्ठसोदरः ॥ नवमे श्वशुरं हंति सर्वस्वं दशमे तथेति प्रत्येकं घटिकाषट्कस्य फलमुक्तम् । अत्रापि मूलशांतिवत्सर्वं कार्यम् । तत्र विशेषः । घटिकैका च मैत्रांते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम् । तयोः संधिरितिज्ञेयं शिशुगंडांतमीरितम् । ज्येष्ठांत्यपादस्तु पितुः स्वस्य चाभिविनाशकः । ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हंति शीघ्रं धवाग्रजम् ॥ शांतिं तस्य प्रवक्ष्यामि गंडदोषप्रशांतये । तत्र चतुर्दिक्षु कुंभचतुष्टयं संस्थाप्य तन्मध्ये शतच्छिद्रं पंचमं कुंभं संस्थाप्य पूर्ववत्पूजादि विधाय तत्र वज्रांकुशधरं देवमैरावतगजान्वितम् । कुर्याच्छचीपतिं रम्यं देवेंद्रं सुरनायकम् ॥ शालितंडुलसंपूर्णकुंभस्योपरि पूजयेत् । इंद्रायेंदो मरुत्वत इति मंत्रेण वाग्यतः ॥ पूजयेद्विधिना सम्यग्लोकपालगणान्वितम् । रक्तवस्त्रद्वयोपेतं देवराजं शचीपतिम् ॥ पूजयेद्वारुणैर्मंत्रैः कुंभान्धीमान्प्रयत्नतः । त्वंनो अग्ने जपेदादौ सत्वन्नोऽपि द्वितीयकम् ॥ समुद्रज्येष्ठा इतिचेमं मे गंगे चतुर्थकम् । पूजयेद्वस्त्रगंधाद्यैश्चतुरः कलशानपि ॥ जपं कुर्युः प्रयत्नेन मंत्रैरेभिर्द्विजोत्तमाः । आनोभद्रा जपं चादौ भद्राअग्ने द्वितीयकम् ॥ इंद्रसूक्तं रुद्रजाप्यं जपेन्मृत्युंजयं ततः । इंद्रं संपूज्य देवेशं वरुणं कुंभसंस्थितम् ॥ सुसंकल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत् । समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं शतम् ॥ सर्पिषा चरुणा चैव मूलमंत्रेण वाग्यतः । हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इंद्रभयेति च ॥ तिलान्व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक् । ततोऽभिषेकः । ततो रूपं रूपमिति मंत्रेण तच्चक्षुरिति मंत्रेण आज्यावलोकनम् । पुनर्देवतापूजनं कृत्वा । नमोऽस्तु सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गंडदोषप्रशांतये ॥ अष्टोत्तरशतं संख्यां कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । अन्यत्सर्वं तु पूर्ववत् ॥ इति ज्येष्ठाशांतिः ॥ दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टिवैधृतौ । शूले गंडे च परिघे वज्रे च यमघंटके ॥ कालदंडे मृत्युयोगे दग्धयोगसमन्विते । तस्मिन्गंडदिने प्राप्ते प्रसूतिर्यदि जायते ॥ अतिदोषकरी प्रोक्ता तत्र पापयुते सति । विचार्य तत्र दैवज्ञः शांतिं कुर्याद्यथाविधि ॥ यजनं देवतानां च ग्रहाणां चैव पूजनम् । दीपं शिवालये भक्त्या गोघृतेन प्रदापयेत् ॥ अभिषेकं शंकराय अश्वत्थस्य प्रदक्षिणाम् । अभीष्टफलसिद्ध्यर्थं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युंजयं शुभम् । शांतिजाप्यं ततश्चैव कृत्वा मृत्युंजयी भवेत् ॥ इत्युत्तरगार्ग्ये दुष्टयोगशांतिः ॥ कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः । संक्रांतिश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यचका-

Aho ! Shrutgyanam

रकः ॥ नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषस्य शांतये । प्रथमं गोमुखाज्जन्म ततः शांतिं समाचरेत् ॥ गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनानुलिप्य च । अलंकृते सुदेशे तु व्रीहिराशिं प्रकल्पयेत् ॥ पंचद्रोणमितं धान्यं तदर्धं तंडुलेन च । तदर्धं तु तिलैः कुर्यादन्योन्योपरि कल्पयेत् ॥ द्रव्यत्रितयराशौ तु अष्टपत्रं लिखेद्बुधः । पुण्याहं वाचयित्वा तु आचार्यं वरयेत्पुरा ॥ राशौ प्रतिष्ठितं कुंभमव्रणं सुमनोहरम् । तीर्थोदकेन संभृत्य समृदौषधिपल्लवम् ॥ पंचगव्यं पंचरत्नं वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् । तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सूक्ष्मवस्त्रेण संयुतम् ॥ प्रतिमां स्थापयेत्पश्चादधिप्रत्यधिदेवताम् । चंद्रादित्याकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत् ॥ एवमेव व्यतीपातशांतौ संक्रमणस्य च । भानोरुत्तरतो रुद्रमग्निं दक्षिणतो यजेत् ॥ निष्कमात्रेण चार्धेन पादेनापि स्वशक्तितः । प्रतिमाः कारयेद्धीमांस्तत्तल्लक्षणलक्षिताः ॥ प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् । अधिदैवं भवेत्सूर्यश्चंद्रः प्रत्यधिदैवतम् ॥ तत्तद्व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मंत्रेण पूजयेत् । त्रियंबकेन मंत्रेण रुद्रपूजां समाचरेत् ॥ उत्सूर्य इति मंत्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् । आप्यायस्वेति मंत्रेण सोमपूजां समाचरेत् । तत्राष्टोत्तरसहस्रं अष्टोत्तरशतं वा अष्टाविंशतिसंख्याजपं सर्वसौरजपं च आनोभद्रा भद्राअग्नेरिति सूक्ते पुरुषसूक्तं त्रियंबकं एतान्मंत्रान् कुंभान् स्पृष्ट्वा चतुर्दिक्षु जपेयुः । त्रियंबकेन मंत्रेण समिदाज्यचरून् हुनेत् । अष्टोत्तरसहस्रं अष्टोत्तरशतं अष्टाविंशतिर्वा । मृत्युंजयेन मंत्रेण तिलहोमं समाचरेत् । ततः समुद्रज्येष्ठा इति सूक्तेन आपोहिष्ठेति तृचेन च अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिः त्रियंबकेन उत्सूर्येति आप्यायस्वेति वैदिकमंत्रैः सुरास्त्वामभिषिंचंत्वित्यादिकैः पौराणमंत्रैश्चाभिषेकं कुर्यात् । तत आज्यावेक्षणम् । अन्यद्दक्षिणादानादिकं पूर्ववत् । इत्युत्तरगार्ग्ये व्यतीपातवैधृतिसंक्रांतिशांतिः ॥ अथ कुहूसिनीवालीदर्शशांतिः । तत्र यस्याः कस्याश्चिदमावास्यायाः अष्टौ भागान्कृत्वा प्रथमविभागे चंद्रदर्शनमस्ति नवेति विचार्यम् । यदा चंद्रदर्शनं तदा सिनीवाली यदा चंद्रादर्शनं तदा दर्शः । सकलचंद्रक्षयस्तदा कुहूरित्यर्थः । तदुक्तं छंदोगपरिशिष्टे । इंदुक्षयकालः श्राद्धकाल इति प्रस्तुत्येंदुक्षयकालपरिगणनमुक्तम् अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चंद्रमाः । अमावास्याष्टमे भागे पुनः किल भवेदणुः । अत्रेंदुराद्ये प्रहरे च तिष्ठेत् चतुर्थभागो न कलावशिष्टः । तदंत एव क्षयमेति कृत्स्न एवं हि ज्योतिश्चक्रविदो वदंतीति । एतत्कारिकाव्याख्यानं तद्भाष्यकारेण कृतम् । प्रहरनवकात्मकश्चंद्रक्षयकाल इति । तत्रामायाः सप्तमाष्टमप्रहरौ कृत्स्नः क्षयकालः । चतुर्दशीशेषयामदर्शादियामौ च चंद्रसूक्ष्मताकाल इति । तत्रायमत्र विषयविवेकः । यस्याममावास्यायां प्रथमप्रहरे शास्त्रात्प्रत्यक्षतो वा चंद्रदर्शनं स्यात्सा सिनीवाली सर्वदा सिद्धा । तत्रोत्पन्नस्य सिनीवालीशांतिर्विधेया । अथ तस्यामेवामावास्यायां यदा नष्टेंदुकलात्वं स च कृत्स्नक्षयकालोऽमावास्यायां अंतिम-

---

१ प्रधानप्रतिमां यजेत् ।

Aho ! Shrutgyanam

क्षण एव । तस्य च संक्रांतिसमयवदतिसूक्ष्मत्वेन दुर्ज्ञेयत्वात् । अमावास्यायाः सप्तमाष्टमप्रहरयोः कृत्स्नक्षयकालस्य भाष्यकारेण परिभाषितत्वात् सप्तमाष्टमप्रहरात्मकः कालः कुहूशब्दवाच्यस्तत्रोत्पन्नस्य कुहूशांतिः । पुनस्तस्यामेवामावास्यायां प्रथमप्रहरानंतरं सप्तमप्रहरादर्वाक् प्रहरपंचकात्मकः कालो दर्शशब्दवाच्य इति । तत्रोत्पन्नस्य दर्शशांतिर्विधेयेति । एवमेकस्यामेवामावास्यायां कालभेदेन त्रयं संभवति । यदा त्वमावास्यायां चंद्रदर्शनाभावस्तदा द्वयमेव दर्शत्वकुहूत्वरूपं संभवतीति । अत्र केचिच्चतुर्दशीशेषे चंद्रदर्शने सति परदिने याऽमावास्या सा सिनीवाली इत्याहुस्तन्न । दृष्टश्चंद्रो यस्यामिति अन्यपदार्थस्य अमावास्यारूपस्यैव सामानाधिकरण्येन ग्रहणात् । किंच । सिनीशब्देन श्वेता चंद्रकला । वर्णवाचिनः सितशब्दाद्वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो न इति ङीप्नकारौ । सिनी तां वलते प्राप्नोतीति सिनीवालीति व्युत्पत्तिश्च चतुर्दश्युदितचंद्राश्रयायाममावास्यायां न युज्यते इति च तस्माद्दृष्टेंदुः सिनीवालीत्यमावास्यैवाभिधीयत इत्येव ज्यायः । अथ गोलगणितविदोऽन्यथा समादधुः । तत्र स्याद्दृष्टेंदुः सिनीवालीत्यादौ उदयास्ताधिकारोक्तरीत्या दृक्कर्मद्वयसंस्कृतस्य दर्शनयोग्यत्वे सति प्राक् क्षितिजक्रांतिवृत्तसंबंधवत्त्वं ग्रहादेर्दर्शनशब्दवाच्यं मेघाद्यावरणे तु शास्त्रीयदर्शने दृशिर्वर्तते । आत्मा द्रष्टव्य इत्यादिवत् तथैव दर्शनायोग्यत्वे सति प्राक् क्षितिजसंबंधवत्त्वमदर्शनशब्दवाच्यमित्यदर्शनलक्षणम् । अतश्चंद्रदर्शनलक्षणवत्यमावास्या सिनीवालीनाम चंद्रादर्शनलक्षणवत्यमावास्या कुहूर्नाम लक्षणद्वयानाक्रांताऽमावास्या दर्शशब्दवाच्येति । अयमाशयः । यदामावास्या सूर्योदयात्प्राक् घटिकात्रयवती तदा दृक्कर्मसंस्कारवशेन चंद्रस्य दृश्यत्वमागतं चेत्तदा सा संपूर्णाऽमावास्या सिनीवालीनाम तादृश्याममायां द्वितीयसूर्योदयावधिकायामुत्पन्नस्यारिष्टशांतये सिनीवालीशांतिस्तत्फलं चादेश्यम् । अथ तिथिवृद्धौ वा तस्या अमावास्याया द्वितीयसूर्योदयानंतरमवशिष्टामावास्याघटीषूत्पन्नस्य कुहूशांतिरेव । चंद्रादर्शनलक्षणसत्त्वात् । यदि सैवामावास्या सूर्योदयात्प्राक् घटिकात्रयं चतुष्टयं वा प्रतिपत्संबद्धा तदा सिनीवाल्येव । अथ तादृश्यां न्यूनायामधिकायां वाऽमावास्यायां तु दृक्कर्मसंस्कारवशेन चंद्रस्यादृश्यत्वमागतं सामावास्या संपूर्णा कुहूर्नाम । चंद्रादर्शनलक्षणसत्त्वात् । तत्रापि कुहूशांतिरादेश्या । यदा तु सूर्योदयानंतरं कियतीषु द्वित्रिघटीषु अतिक्रांतासु अमावास्याप्रवृत्तिः पूर्वं चतुर्दश्येवास्थिता तस्यामुषसि दृक्कर्मवशतश्चंद्रो दृष्टो मा वादर्शि । तथाप्यमावास्यायां चंद्रादर्शनलक्षणानाक्रांतत्वात्सा संपूर्णामावास्या दर्शो नाम तत्र दर्शजननशांतिर्विधेयेति । एवममावास्याभेदेन सिनीवालीकुहूदर्शरूपपक्षत्रयं सावकाशमिति गोलज्ञानां मतम् । अथ प्रकारांतरेण सिनीवाली सर्ववादिसिद्धा सैव कुहूस्तु पारिभाषिकी । यदाह वसिष्ठः । नक्षत्रे यस्य दर्शांतो विषनाड्या भवेद्यदि । कुहूयोग इति ख्यातो व्याधिमृत्युभयादिकृत् । अयमर्थः । तस्मिन्नक्षत्रे या विषनाड्य उक्ता-

Aho ! Shrutgyanam

स्तस्मिन्काले यदि दर्शस्य चरमघटिका भवेत्तन्नक्षत्रं च यस्य पुरुषस्य जन्मनक्षत्रं जन्मकाले कालांतरे वा स्यात्तस्य पुंसो व्याधिमृत्युकृत्कुहूयोगो ज्ञेयः। तत्र कुहूजननफलं शांतिश्च स्यात् । कालांतरेऽपि कुहूयोगसंभवे शांतिर्विधेया। अतएव जगन्मोहने। यस्य जन्मर्क्षगश्चंद्रो विषनाड्यां कुहूर्भवेत् । अभिचारेण किं तस्य स्वयमेव मरिष्यतीति । अतो विषघटिकातः पूर्वकालो दर्शशब्दवाच्य इति । एवं प्रकारत्रयेण सिनीवालीकुहूदर्शानां भेद उपपादितस्तत्र यथासंप्रदायं व्यवस्थेत्यलमतिप्रसंगेन। अथ शांतिप्रकारः । सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा। गवाश्वमहिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ये वसंति द्विजाश्चान्ये स्वप्रसादोपजीविनः। वर्जयेत्तानशेषांस्तु पशुपक्षिमृगादिकान् ॥ द्विजाः पक्षिणः। कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी मता। यस्य प्रसूतिरेतेषां तस्यायुर्धननाशिनी ॥ नारीं विना च शेषाणां परित्यागो विधीयते । परित्यागात्तत्र शांतिं कुर्याद्भक्त्या विचक्षणः ॥ प्रतिमां कारयेच्छंभोश्चतुर्भुजसमन्विताम् । त्रिशूलखङ्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमात् ॥ श्वेतवर्णां श्वेतपुष्पां श्वेतांबरवृषस्थिताम् । त्र्यंबकेन मंत्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥ इंद्रश्चतुर्भुजो वज्रांकुशचापससायकः । रक्तवर्णो गजारूढो यत इंद्रेति मंत्रतः ॥ पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्हस्ता विमानगाः । यष्ट्यक्षसूत्रकमंडलुभयानां च धारिणः ॥ ये सत्या इति मंत्रेण पूजां कुर्यादनंतरम् । कलशस्थापनपूजादिपूर्ववत् । समिदाज्यचरोर्होमं तिलमाषैश्च सर्षपैः । अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खादिरैः शुभैः॥ अष्टोत्तरशतं मुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद्बुधः । त्र्यंबकेन मंत्रेण तिलान्व्याहृतिभिर्हुनेत् ॥ शंकरस्याभिषेकं च कुर्यादाज्यावलोकनम् । अन्यत्सर्वमभिषेकादिपूर्ववत् ॥ इति सिनीवालीकुहूशांतिः ॥ अथ दर्शशांतिः ॥ अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता । तद्दोषपरिहाराय शांतिं वक्ष्यामि नारद ॥ तत्र संकल्पं विधाय पुण्याहं वाचयित्वा सर्वतोभद्रमंडलं लिखित्वा तन्मध्ये कलशं संस्थाप्य। तन्मध्ये निक्षिपेद्द्रव्यं दधिक्षीरघृतादिकम् । न्यग्रोधोदुंबरोश्वत्थाः सचूता निंबकास्तथा ॥ एतेषां वृक्षमूलानां त्वगादीन् पल्लवांस्तथा । पंचरत्नानि निक्षिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ तत्र सर्वे समुद्रा इति । आपोहिष्ठा तृचेनेति कयानश्चित्र इत्यृचा । यत्किंचेदमृचा चैव समुद्रज्येष्ठा इत्यृचा ॥ अभिमंत्र्योदकुंभं तमग्नेः पूर्वे निधापयेत् ॥ दर्शस्य देवता याश्च सोमसूर्यस्वरूपकाः । प्रतिमां स्वर्णजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा ॥ आप्यायस्वेति मंत्रेण सवितापश्चात्तमेव च । उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत् ॥ समिधश्च चरुद्रव्यं क्रमेण जुहुयाद्गृही । हुनेत्सावितृमंत्रेण सोमोधेनुं च मंत्रतः ॥ अष्टोत्तरशतं वापि अष्टाविंशतिसंख्यया । अभिषेकादिपूर्ववत् । हिरण्यं रजतं चैव कृष्णा धेनुश्च दक्षिणा । ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम् ॥ इति दर्शशांतिः ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् । चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् ॥ द्वितीये पितरं हंति तृतीये मातरं तथा । चतुर्थे मातुलं हंति पंचमे वंशनाशनम् ॥ षष्ठे तु ध-

Aho ! Shrutgyanam

नहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शांतिं कुर्याद्विधानतः ॥ प्रतिमां कारयेच्छंभोः कर्षमात्रसुवर्णतः । तदर्धार्धेन वा कुर्यात्सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिकम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं श्वेतमाल्यांबरान्वितम् ॥ त्रैयंबकेन मंत्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः । तत्र मूलशांतिवत् कलशस्थापनादि कृत्वा तत्र शंभुपूजां विधाय तत्र । अवाह्य वारुणैर्मंत्रैरनेन च विधानतः । इमंमे वरुणेत्यनया तत्त्वायामीत्यृचा तथा ॥ त्वंनो अग्ने इत्यनया सत्वं न इति मंत्रतः । आग्नेयं कुंभमारभ्य पूजां कुर्याद्यथाक्रमम् ॥ आनोभद्राश्च सूक्तेन भद्राअग्नेश्च सूक्तकम् । जप्त्वा पुरुषसूक्तं च कद्रुद्रं तु क्रमाज्जपेत् ॥ ईश्वरस्याभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत् । समिदाज्यचरूंश्चैव तिलमाषांश्च सर्षपान् ॥ अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खादिरैः शुभैः । अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ॥ अष्टाविंशतिभिर्वापि होमं कुर्यात्पृथक् पृथक् । त्रैयंबकेन मंत्रेण तिलान् व्याहृतिभिः क्रमात् ॥ ग्रहा एवं च होतव्याश्चास्मदुक्तविधानतः । अन्यत्सर्वमाज्यावलोकनादि पूर्ववत् । इति कृष्णचतुर्दशीजननशांतिः ॥ एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयात् ॥ तत्र शांतिं प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु । अग्नेरीशानभागे तु नक्षत्रप्रतिमां ततः ॥ तन्नक्षत्रोक्तमंत्रेण चार्चयेत्कलशोपरि । रक्तवस्त्रेण संछाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ स्वस्वशाखोक्तमार्गेण कुर्यादग्निमुखं ततः । अनेनैव तु मंत्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ प्रत्येकं समिदन्नाद्यैः प्रायश्चित्तांतमेव च । अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः ॥ वस्त्रालंकारगोदानैराचार्यं पूजयेत्ततः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ॥ देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह । यानशय्यासनादींश्च दद्यात्तद्दोषशांतये ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान् सर्वान् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ इत्येकनक्षत्रशांतिः ॥ अत्रैकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोरित्यत्र भ्राता च भ्राता च भ्रातराविति भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्यामिति एकशेषे सोदरयोर्भ्रातृभगिन्योरेव निषेधः स्यान्न तु पुत्रभ्रात्रोः । एवं पितृपुत्रयोरित्यत्रापि पिता च पुत्रश्चेति द्वंद्वे पितापुत्रयोरेकनक्षत्रजनननिषेधः स्यान्नतु मातृपुत्रयोः । न च माता च पिता च पितरौ । पिता मात्रेत्येकशेषे तथा पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ पितरौ च पुत्रौ चेति द्वंद्वे पितृपुत्राणामिति बहुवचनं स्यात् । तथापि वचनांतरानुरोधात् इष्टविषयोऽपि संगृहीतो भविष्यति । यदाह वसिष्ठः । पित्रोस्तु जन्मनक्षत्रे जातस्तु पितृमातृहा । जन्मर्क्षांशे च तल्लग्ने जातः सद्यो मृतिप्रदः ॥ देवकीर्तिः । यद्येकस्मिन् धिष्ण्ये जायंते दुहितरोऽथवा पुत्राः । पित्रोरंतकराः स्युर्यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात् ॥ अपरे अन्यनक्षत्रे । गर्गः । यस्यैव जन्मनक्षत्रे जायेद्भ्राता सुतोऽपि वा । सजातीयः सजात्या वा सोऽस्य प्राणान्प्रसाधयेदिति ॥ अथ मूलस्योपलक्षणत्वेन सर्वशांतिशेषभूतो गोमुखप्रसवोऽभिधीयते । गर्गः । प्रणिपत्यरविं वक्ष्ये प्रायश्चित्तमनुस्मरन् । सर्वारिष्टविनाशाय यदुक्तं ज्योतिषार्णवे ॥ पित्ररिष्टे सुतारिष्टे

Aho ! Shrutgyanam

मात्ररिष्टे तथैव च । पौष्णाश्विन्योर्गुरौ सार्पमघाचित्रेंद्रमूलभे ॥ एषु ऋक्षेषु जातस्य कुर्याद्गोजननं तथा । जन्मर्क्षे वा त्रिजन्मर्क्षे शुभवारे शुभे दिने ॥ कृत्वाभ्यंगादिकं सर्वं गृहालंकारपूर्वकम् । गोमयेनोपलिप्याथ यथावित्तानुसारतः ॥ नवशूर्पे तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं प्रसारयेत् । स्थापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत् ॥ प्राङ्मुखस्तमवाक्पादं तिलदर्भगतं शिशुम् । गोमुखं दर्शयित्वा तु पुनर्जातं तु गोमुखात् ॥ विष्णुर्योनीति सूक्तेन गव्येन स्नापयेच्छिशुम् । गवामंगेषु मंत्रेण गवामंगेषु संस्पृशेत् ॥ विष्णोः श्रेष्ठेन मंत्रेण गोप्रसूतं तु बालकम् । आचार्यस्तु समादाय पश्चान्मात्रे ददात्तदा ॥ माता जघन्यभागस्था शिशुमानीय तन्मुखात् । ततः पित्रे तदा दद्यात्ततो मात्रे प्रदापयेत् ॥ वस्त्रे संस्थाप्य तु पिता पुत्रस्य मुखमीक्षयेत् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैरभिषिंचेत्ततः शिशुम् । मूर्ध्नि चाघ्राय तं पुत्रं तन्मंत्रेण तदा पिता ॥ अंगादंगात्संभवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ मूर्धनि त्रिरवघ्राय तं शिशुं स्थापयेत्ततः । पुण्याहं वाचयेत्पश्चाद्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ दरिद्रायाथ विप्राय तां गां चाभ्यर्च्य दापयेत् । गोवस्त्रस्वर्णधान्यादि दद्यादर्कादितः क्रमात् ॥ यथाशक्ति धनं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तथा पिता । ततो होमं प्रकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः ॥ उल्लेखनादिकं कृत्वा चाज्यभागांतमाचरेत् । होमस्येशानदिग्भागे धान्योपरि शुभं घटम् ॥ सपंचगव्यं संस्थाप्य तिलांस्तत्र विनिक्षिपेत् । क्षीरद्रुमकषायांश्च पंचरत्नानि निक्षिपेत् ॥ वस्त्रयुग्मेन संछाद्य क्षीरादिभिरथार्चयेत् । विष्णुं वरुणमभ्यर्च्य प्रतिमां च विधानतः ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिरप्सुमे सोम इत्यथ । तद्विष्णोः परमं पदमक्षीभ्यामिति सूक्ततः ॥ ऋग्भिराभिः प्रत्यृचं च अष्टाविंशतिसंख्यया । अशक्तौ चाष्टसंख्यं वा दधिमध्वाज्यसंयुतम् ॥ आदित्यादिग्रहाणां च होमं कुर्यात्समंत्रकम् । इति गोमुखप्रसवशांतिः ॥ अथ प्रसंगात्त्रीतरशांतिः ॥ सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि । मातापित्रोः कुलस्यापि तदारिष्टं महद्भवेत् ॥ ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् । तत्र शांतिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जातस्यैकादशे वापि द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ सह वा ग्रहयज्ञः स्याद्यथा वित्तानुसारतः । ब्रह्मविष्णुमहेशेंद्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः ॥ पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि शक्तितः । पंचमे कलशे रुद्रं प्रजपेद्रुद्रसंख्यया ॥ रुद्रसूक्तानि चत्वारि शांतिसूक्तानि सर्वशः । द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिः समाहितः ॥ आचार्यो जुहुयादत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् । अष्टोत्तसहस्रं वा शतं वा विंशतिं तु वा ॥ देवताभ्यश्चतुर्वक्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् । ब्रह्मादिमंत्रैरिंद्रस्य यत इंद्रभयामहे ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः । अभिषेकं कुटुंबस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् ॥ हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा ततः । प्रतिमा गुरवे देया उपस्करसमन्विता ॥ कांस्याज्यवीक्षणं कृत्वा

Aho ! Shrutgyanam

शांतिपाठं च कारयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् ॥ एवं शांतिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥ इति त्रीतरशांतिः ॥ अथ चंद्रसूर्यग्रहणसमयजननशांतिः ॥ ग्रहणे चंद्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ शांतीस्तेषां प्रवक्ष्यामि नराणां हितकाम्यया । यस्मिनृक्षे विशेषेण ग्रहणं संप्रजायते ॥ तदृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् । यथाशक्त्यनुसारेण वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ सूर्यग्रहे सूर्यरूपं सुवर्णेन स्वशक्तितः । चांद्रं चंद्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः ॥ राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः । नागेन सीसकेन । शुचौ देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् । तस्योपरि न्यसेद्धीमानन्नं वस्त्रं सुशोभनम् ॥ त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् । रक्ताक्षतं रक्तगंधं रक्तपुष्पांबराणि च ॥ सूर्यग्रहे प्रदातव्यं सूर्यप्रीतिकरं च यत् । श्वेतवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतगंधाक्षतादिकम् ॥ चंद्रग्रहे प्रदातव्यं चंद्रप्रीतिकरं च यत् । राहवे चैव दातव्यं कृष्णपुष्पांबरादि च ॥ दद्यान्नक्षत्रनाथाय श्वेतगंधानुलेपनम् । सूर्यं संपूजयेद्धीमानाकृष्णेनेति मंत्रतः ॥ चंद्रग्रहे तथा सम्यगाप्यायस्वेति मंत्रतः । स्वर्भानोरिति मंत्रेण राहुं यत्नेन पूजयेत् ॥ एवं संपूजयेद्धीमान्समिद्भिश्चार्कसंभवैः । चंद्रग्रहे च पालाशैः समिद्भिर्जुहुयान्नरः ॥ दूर्वाभिर्जुहुयाद्धीमान् राहोः संप्रीणनाय च । समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षोत्थैर्भेशाय जुहुयाद्बुधः ॥ भेशाय नक्षत्राधिपतये । आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः । पंचगव्यैः पंचरत्नैः पंचत्वक्पंचपल्लवैः ॥ जलैरोषधिकल्कैश्च सहितैः कलशोदकैः । ओषधिकल्कैः सर्वौषधिकल्कैः । अभिषेकं प्रकुर्वीत यजमाने प्रयत्नतः । मंत्रैर्वारुणदैवत्यैरापोहिष्ठादिभिः सह ॥ इमंमे गंगे परतस्तत्त्वायामीति मंत्रकैः । अभिषेके निवृत्ते तु यजमानः समाहितः ॥ आचार्यं पूजयेत्पश्चात्सुशांतो विजितेंद्रियः । ततो दद्यात्प्रयत्नेन भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् ॥ गां चैव दक्षिणां दद्याद्यजमानः समाहितः । अनेन विधिना शांतिं कृत्वा सम्यग्विशेषतः ॥ अकालमृत्युं शोकं च व्याधिपीडां च नाप्नुयात् । सौख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः ॥ इत्थं ग्रहणजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् । कथितं भार्गवेनेदं शौनकाय महात्मने ॥ इति शौनकोक्ता ग्रहणजननशांतिः ॥ अथ ज्वराद्युत्पत्तिकालीननक्षत्रशांतिः ॥ तत्र साधारणो विधिः । यस्मिन्नक्षत्रे ज्वरादिपीडा भवति तन्नक्षत्राधिदेवताप्रतिमां सुवर्णेन कारयित्वा अमुकनक्षत्रसंभूतव्याधिशांत्यर्थं नक्षत्रशांतिं करिष्य इति संकल्प्य शुचिप्रदेशे गोमयेनोपलिप्ते तंदुलैश्चतुरस्रं मंडलं निर्माय तन्मध्ये तत्तद्देवतावर्णवस्त्रद्वयवेष्टितग्रंथिं चंदनादिचर्चितं कलशं धान्यस्योपरि विन्यस्य तत्र सर्वौषधीः पंचरत्नानि पंचगव्यानि सप्त मृत्तिकाः पंच पल्लवान्स्वस्वमंत्रेण निक्षिप्य सर्वे समुद्रा इति तत्र तीर्थान्यावाह्य तत्त्वायामीति वरुणमावाह्य संपूज्य स्वस्वगृह्योक्तविधिनाग्निं प्रतिष्ठाप्य आज्यभागांते तत्तन्नक्षत्राधिदेवतामंत्रेण तन्नक्षत्रपूर्वोत्तरनक्षत्रदेवतामंत्रेण तत्तद्द्रव्येण च होमं

Aho ! Shrutgyanam

कृत्वा तेन वरुणकलशेन यजमानाभिषेके विहिते ताः प्रतिमा रोगीब्राह्मणाय दद्यात् । असौ साधारणो विधिः । उक्तं च । यस्मिन्नृक्षे भवेत्पीडा तन्नक्षत्रस्य देवताम् । सुवर्णनिर्मितां कृत्वा पूजयेत्प्रयतः शुचिः ॥ गोमयेनानुलिप्ते वै मंडलं शुभलक्षणम् । कीर्तितं चतुरस्रं च तंदुलैश्च कृताकृतैः ॥ कृत्वा तु स्थंडिलं तत्र यत्नतः कृष्णया मृदा । मृत्पार्श्वे च सुधीः कुर्यात्तंदुलानां महाचयम् ॥ तत्र प्रमाणं खारी वा द्रोणा वा दश शक्तितः । अभावे पंच वा द्रोणा द्रोणा वा तदभावतः । ईशानकोणदेशे तु कलशं स्थापयेत्सुधीः ॥ निधाय द्रविणं तत्र कलशे शक्त्यपेक्षया । पीठं तु पूर्वतः स्थाप्यं नव्यवस्त्रेण संयुतम् ॥ स्वस्तिकं तंदुलानां च शुभानां तत्र संलिखेत् । तन्मध्ये देवतास्तिस्रो नक्षत्रत्रितयस्य वै ॥ यस्मिन्नृक्षे भवेद्रोगस्तस्य पूर्वापरे सुधीः । उडूनि पूजयेद्यत्नादधिप्रत्यधिदैवते ॥ देवता यस्य ऋक्षस्य मंत्रस्तल्लिंग एव च । इत्थं च तस्य यत्प्रोक्तं प्रभवं प्रकृतं तथा ॥ तत्सर्वं विदुषानीय होमं तत्र प्रकल्पयेत् । स्वगृह्योक्तविधानेन कुर्यादग्निमुखं सुधीः ॥ कलशं जलपूर्णं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् । निधाय चौषधीस्तत्र पंचपल्लवसंयुताः ॥ सप्तस्थानमृदः कुंभे आलवालं प्रकल्पयेत् । इमंमे वरुण इत्येवं जलं मंत्रेण वा पुनः ॥ सर्वे समुद्राः सरित इति मंत्रं च संस्मरेत् । यच्चिद्धिते विशोयथेत्यादिसूक्तं जपेत्पुनः । आवाहयेद्घटे देवं वरुणं पयसां पतिम् । एवं नक्षत्रशांत्यर्थं विदध्यात्पूर्वपीठिकाम् ॥ सामान्योऽयं विधिः प्रोक्तो नक्षत्राणां प्रपूजने । सर्वौषधीनां दुष्प्राप्तौ भवेदेका शतावरी ॥ सर्वेषामपि गंधानामभावे चंदनं मतम् । शतपत्रं सुमनसां धूपाभावे च गुग्गुलुः ॥ नैवेद्यानामभावे तु पायसं सघृतं स्मृतम् । मंत्राणामप्यभावे तु गायत्रीमंत्र उत्तमः ॥ होमद्रव्यस्य दुष्प्राप्तौ तिलाः प्रोक्ता मनीषिभिः । अष्टोत्तरसहस्रं च तथा शतमुदाहृतमिति । अथ नक्षत्रदेवताध्यानानि । देवते अश्विनौ तत्र द्विभुजौ शुक्लवर्णकौ । सुधाकलशसंयुक्तौ कमंडलुधरौ शुभौ ॥ १ ॥ यमस्तु देवता तत्र कृष्णवर्णो द्विबाहुकः । लुलायवाहनः श्रीमान्पाशदंडधरः प्रभुः ॥ २ ॥ अग्निस्तु देवता तत्र रक्तवर्णोऽजवाहनः । चतुर्भुजो घृतामत्रस्रुवस्रुग्वरदाभयः ॥ ३ ॥ रक्तवर्णश्चतुर्बाहुर्हंसारूढश्चतुर्मुखः । पद्माक्षसूत्रवरदाभयहस्तो निरामयः ॥ ४ ॥ सोमो हि देवता तस्य श्वेतवर्णः शुभाकृतिः । दशाश्वरथमारूढः श्वेताश्वोऽपि निगद्यते ॥ ५ ॥ रुद्रो हि देवता यस्य वृषारूढश्चतुर्भुजः । त्रिशूलखट्वावरदाभयहस्तश्च कीर्तितः ॥ ६ ॥ चतुर्भुजा दितिः पीता साक्षसूत्रकमंडलुः । वरदाभयहस्ता सा कार्या स्वर्णमयी शुभा ॥ ७ ॥ चतुर्भुजः पीतवर्णो देवतास्य बृहस्पतिः । दंडाक्षसूत्रपाणिस्तु साभयः सकमंडलुः ॥ ८ ॥ सर्पस्तु देवता तत्र महामंडलरूपधृक् । सुविस्तृतशिरश्चंडो मर्कपिंगललोचनः ॥ ९ ॥ पितरो देवतास्तत्र कृष्णवर्णाश्चतुर्भुजाः । भद्राक्षसूत्राभयदाः कमंडलुधराः शुभाः ॥ १० ॥ पूर्वाफाल्गुनिकायां च भगो देवः प्रकीर्तितः । रक्तवर्णोऽब्जासीनो द्विभुजो भवपद्मकः ॥ ११ ॥ अर्यमा

Aho ! Shrutgyanam

देवता पद्ममध्यस्थः पद्मवर्णकः। पद्माभयकरः श्रीमान्स्वर्णमूर्तिर्महाद्युतिः ॥ १२ ॥ सविता देवता तस्य सप्ताश्वरथवाहनः। द्विभुजो रक्तवर्णः स्यात्पद्मासनसमाश्रयः ॥ १३ ॥ त्वष्टा पद्मास्थितश्चित्रवर्णः स्यात्सचतुर्भुजः। पद्माक्षसूत्रवलयः पद्माभयकरः प्रभुः ॥ १४ ॥ वायुश्च देवता तत्र मृगारूढश्च मोचकः। अजाचर्मधरः श्रीमान्द्विभुजः परिकीर्तितः ॥ १५ ॥ इंद्राग्नी देवता तत्र गजाजावाहनावुभौ। चतुर्बाहू रक्तवर्णौ निजशस्त्रधरौ तथा ॥ १६ ॥ चापांकुशाभयैर्युक्तौ तथा समविराजितौ। पद्मासनो रक्तवर्णो मित्रस्तस्यानुदेवता। पद्माभयकरः श्रीमान्द्विभुजः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥ शक्र ऐरावतारूढो दिव्यसिंहासनो विभुः। श्वेतवर्णो वज्रधरोऽभयपाणिर्महाभुजः ॥ १८ ॥ निर्ऋतिर्देवता तत्र प्रेतारूढश्च मोचकः। खड्गखेटकधारी च द्विभुजः परिकीर्तितः ॥ १९ ॥ जलं तु देवता तस्य शुक्लवर्णा शुभाकृतिः। वरुणोऽस्य जलस्यापि स्वामी पूज्यतमो मतः ॥ २० ॥ मकरे वाहने विष्टो भवेत्पद्मकरो ध्रुवम्। विश्वे देवा देवताश्च श्वेतवर्णाश्चतुर्भुजाः। वरदाभयहस्ताश्च साक्षसूत्रांबुभाजनाः ॥ २१ ॥ विष्णुस्तु कृष्णवर्णः स्यात्पन्नगाशनवाहनः। शंखचक्रगदापाणिः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ २२ ॥ वसवो देवतास्तत्र श्वेतवर्णाश्चतुर्भुजाः। वरदाभयहस्ताश्च साक्षसूत्रांबुजासनाः ॥ २३ ॥ वरुणो देवता तत्र मकरोपरि संस्थितः। यष्टिपाशधरः श्रीमान् गदापद्मधरस्तथा ॥ २४ ॥ अजैकचरणो रुद्रो देवताऽस्य प्रकीर्तिता। खड्गचर्मधरो वाग्मी भुजद्वयसमावृतः ॥ २५ ॥ अहिर्बुध्न्याभिधो रुद्रो देवताऽस्य प्रकीर्तिता। श्वेतश्चतुष्करः पद्मवरदाभयपाशभृत् ॥ २६ ॥ पूषा तु देवता तत्र पद्मवर्णोऽबुजासनः। द्विभुजः पद्मपाणिस्यात्पयोगर्भप्रियो विभुः ॥ २७ ॥ इति नक्षत्रदेवताध्यानम्। अथोपयुक्तत्वान्नारदीयोक्ता काकमैथुनदर्शनशांतिः ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम्। स नरो मृत्युमाप्नोति ह्यथवा स्थाननाशनम् ॥ काकघातव्रतं यद्वा विदधीताऽथ वत्सरम्। पितॄन्देवान् द्विजान् भक्त्या प्रत्यहं वाऽभिवादयेत् ॥ जितेंद्रियो जितक्रोधः सत्यधर्मपरायणः। तद्दोषशमनार्थाय शांतिकर्म समारभेत् ॥ गृहस्येशानदिग्भागे होमस्थानं प्रकल्पयेत्। गृह्योक्तविधिना तत्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम् ॥ प्रतिमंत्रं त्र्यंबकेन अथ मृत्युंजयेन च। व्याहृत्याभिर्व्रीहितिलैर्जयाद्यंतं प्रकल्पयेत् ॥ पूर्णाहुतिं च जुहुयात्कर्ता शुचिरलंकृतः। स्वर्णशृंगां रौप्यखुरां कृष्णां धेनुं पयस्विनीम् ॥ वस्त्रालंकारसंयुक्तां निष्कद्वादशसंयुताम्। तदर्धेन तदर्धेन दद्याद्दक्षिणया युताम् ॥ यथावित्तानुसारेण न्यूनाधिकत्वकल्पना। आचार्याय श्रोत्रियाय तां गां दद्यात्कुटुंबिने ॥ यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो वै कृष्णसन्निभे। सर्वमृत्युहरा नित्यमतः शांतिं प्रयच्छ मे ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यो यथाशक्त्या च दक्षिणाम्। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छांतिवाचनपूर्वकम् ॥ एवं यः कुरुते सम्यक्तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते ॥ इति काकमैथुनदर्शनशांतिः ॥ तत्रैव कपोतादिशांतिः। आरोहयेद्गृहं यस्य कपोतो वा प्रवेशयेत्।

Aho ! Shrutgyanam

स्थानहानिर्भवेत्तस्य यद्वानर्थपरंपरा ॥ दोषाय धनिनां गेहे दरिद्राणां शिवाय च । तस्य शांतिश्च कर्तव्या जपहोमविधानतः ॥ ब्राह्मणान् वरयेत्तत्र स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । षोडश द्वादशाष्टौ वा श्रौतस्मार्तक्रियापरान् ॥ देवाः कपोत इत्यादि ऋचाभिः पंचभिर्जपम् । लक्षं कृत्वा प्रयत्नेन स्वगृह्योक्तविधानतः ॥ ईशान्यां स्थापयेद्वह्निं मुखांतेऽष्टोत्तरं शतम् । प्रत्येकं समिदाज्यान्नैः प्रतिप्रणवपूर्वकम् । यत इंद्रभयामहे स्वस्तिदेति त्रियंबकैः ॥ त्रिभिर्मंत्रैश्च जुहुयात्तिलान्व्याहृतिभिस्ततः । जयाहुतीस्ततो हुत्वा कुर्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद्द्यौः शांतिं च ततो जपेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बंधुभिः ॥ एवं यः कुरुते सम्यक्तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते । पिंगलायाः स्वरेऽप्येवं मधुवल्मीकयोरपि । संपूर्णमंदिरे हानिः शून्यसद्मनि मंगलम् ॥ प्राकारे च पुरद्वारे देवागारे च वीथिषु । ग्रामस्य तत्फलं चैव गुरुकल्पनया ततः ॥ शांतिकर्माऽखिलं कार्यं पूर्वोक्तेन क्रमेण तु । इति कपोतपिंगलामधुवल्मीकादिशांतिः ॥ अथ पल्ल्याः पतने सरठस्यवाऽऽरोहणे फलं शांतिश्च । पादयोर्जघने पाण्योर्गुदे गुह्ये च जंघयोः । पल्ल्याः पाते तथाऽऽरोहे सरठस्य फलं न सत् ॥ अन्यत्र शुभदं पश्चात्सचैलं स्नानमाचरेत् । दत्वा शिवालये दीपं मुखमाज्ये विलोकयेत् ॥ पल्लीसरठयो रूपं सुवर्णेन विनिर्मितम् । तदर्धार्धप्रमाणेन वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य श्रोत्रियाय निवेदयेत् । इति पल्लीसरठयोः शांतिः ॥ ९७ ॥

अथ नक्षत्रप्रसंगादेवाऽश्विन्यादीनां भानां तारका उपजातिकयाऽऽह—

त्रि ३ त्र्यं ३ ग ६ पंचा ५ ग्नि ३ कु १ वेद ४ वह्नयः ३
शरे ५ षु ५ नेत्रा २ श्वि २ शरें ५ दु १ भू १ कृताः ४ ॥
वेदा ४ ग्नि ३ रुद्रा ११ श्वि २ यमा २ ग्नि ३ वह्नयो ३-
ऽब्धयः ४ शतं १०० द्वि २ द्वि २ रदा ३२ भतारकाः ॥ ९८ ॥

त्रित्र्यंगेति ॥ तथाच श्रीपतिः । वह्नित्रिऋत्विषुगुणेंदुकृताग्निभूतबाणाश्विनेत्रशरभूकुयुगाब्धिरामाः । रुद्राब्धिरामगुणवेदशतद्वियुग्मदंता बुधैर्निगदिताः क्रमशो भतारा इति । नन्वत्र संमतिवाक्ये सप्तविंशति भानि प्रतीयंते मूलेष्वष्टाविंशतिरिति विरोधः । उच्यते । उत्तरार्धे रुद्राब्धीत्यत्राब्धयश्चतस्रस्ताराः पूर्वाषाढोत्तराषाढयोर्ज्ञेयाः द्वे पूर्वाषाढाया द्वे उत्तराषाढाया इति नारदेनापि तथैवाऽभिधानात् । तत्राऽश्विन्यास्तिस्रस्ताराः एवं भरण्यादीनां साभिजितं तारासंख्या ज्ञेया । तारामानोक्तिप्रयोजनमाह वराहः । नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् । दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधेरन्यस्य वा वाच्य इति ॥९८॥

अथाऽश्विन्यादीनामाकृतिमुपजातिकरथोद्धताभ्यामाह—

अश्व्यादिरूपं तुरगास्ययोनिक्षुरोऽन एणास्यमणी गृहं च ॥
पृषत्कचक्रे भवनं च मंचः शय्याकरो मौक्तिकविद्रुमं च ॥ ९९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

तोरणं बलिनिभं च कुंडलं सिंहपुच्छगजदंतमंचकाः ॥
त्र्यस्रि च त्रिचरणाभमर्दलौ वृत्तमंचयमलाभमर्दलाः ॥ ६० ॥

अश्व्यादिरूपमिति । तोरणं बलिनिभमिति च ॥ अश्विन्यादिनक्षत्राणां रूपमाकृतिरुच्यते । तत्राश्विन्यास्तुरगास्यं अश्वमुखसदृशं रूपम् । भरण्या योनिर्भगसदृशम् । कृत्तिकाया नापितक्षुरसदृशम् । रोहिण्या अनः शकटसदृशम् । मृगस्य एणास्यं हरिणमुखसदृशम् । आर्द्राया मणिसदृशम् । पुनर्वसोर्गृहसदृशम् । पुष्यस्य पृषत्को बाणस्तत्सदृशम् । आश्लेषायाश्चक्राकारम् । मघाया भवनं गृहसदृशम् । पूर्वाफाल्गुन्याः मंचः खट्वाकारम् । उत्तराफाल्गुन्याः शय्याकारम् । हस्तस्य हस्ताकारम् । चित्राया मौक्तिकाकारम् । स्वात्या विद्रुमं प्रवालसदृशम् ॥ ५९ ॥ विशाखायास्तोरणाकारम् । अनूराधाया बलिनिभं भक्तपुंजाकारम् । ज्येष्ठायाः कुंडलाकृति । मूलस्य सिंहपुच्छाकारम् । पूर्वाषाढाया गजदंतसदृशम् । उत्तराषाढाया मंचकसदृशम् । अभिजितस्त्रिकोणाकारम् । श्रवणस्य त्रिचरणसदृशम् । धनिष्ठाया मर्दलसदृशम् । शतताराया वृत्तं वर्तुलम् । पूर्वाभाद्रपदाया मंचकसदृशम् । उत्तराभाद्रपदाया यमलाभम् । रेवत्या मर्दलः मृदंगाकारं स्वरूपमित्यर्थः ६०

अथ जलाशयारामदेवप्रतिष्ठामुहूर्तं सामान्यतो लग्नशुद्धिं देवताविशेषेण लग्नशुद्धिं नक्षत्रविशेषं चोपजातिकात्रयेणाऽऽह—

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशांकशुक्रे ॥
दृश्ये मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात्पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ॥ ६१ ॥
रिक्तारवर्जे दिवसेऽतिशस्ता शशांकपापैस्त्रिभवांगसंस्थैः ॥
व्यंत्याष्टगैः सत्खचरैर्मृगेंद्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः ॥६२॥
शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरर्क्षे ॥
पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥ ६३ ॥
इति मुहूर्तचिंतामणौ द्वितीयं नक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

जलाशयेति । रिक्तारेति । शिवो नृयुग्मेति च ॥ जलाशयाः वापीकूपतडागादयः तेषां प्रतिष्ठा उत्सर्गः आराम उपवनं तस्याऽप्युत्सर्गः सुरा देवा विष्ण्वादयः तेषां प्रतिष्ठापनम् । सौम्यायने उत्तरायणे तथा जीवशशांकशुक्रे दृश्ये उदिते सति तथा मृदुध्रुवक्षिप्रचरनक्षत्रे तथा सिते शुक्ले पक्षे तथा स्वर्क्षतिथिक्षणे वा यस्य देवस्य प्रतिष्ठा कर्तुमिष्टा तस्य तत्स्वामिके नक्षत्रे तिथौ वा क्षणे मुहूर्ते वा ॥ ६१ ॥ तथा रिक्तारवर्जे दिवसे रिक्तातिथिभौमवारव्यतिरिक्ततिथिवारेषु एवंविधे दिने प्रतिष्ठा जलाशयारामदेवानां क्रमेण कर्मार्हत्वोपभोग्यत्वपूजायोग्यत्वरूपा अतिशस्ता स्यात् । तथा च गार्ग्यः । देवतारा-

Aho ! Shrutgyanam

मवाप्यादिप्रतिष्ठामुत्तरायणे । माघादिपंच मासेषु कृष्णेऽप्यापंचमीदिनम् ॥ दक्षिणे त्वयने कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् । यदा तु दक्षिणायन एव जलस्थितिसंभवस्तदा न कालनियमः । न कालनियमस्तत्र कारणमिति भविष्यपुराणोक्तेः । अथ क्रूरप्रकृतीनां दक्षिणायनेऽपि स्थापनं कार्यमित्युक्तं वैखानससंहितायाम् । मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः । महिषासुरहंत्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥ नारदः । विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पंचसु । यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिम् ॥ अथ लग्नशुद्धिः । शशांकपापैः चंद्रसूर्यभौमशनिराहुकेतुभिः त्रिभवांगसंस्थैः तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थितैरुपलक्षिते लग्ने तथा सत्खचरैः शुक्रबुधगुरुभिः व्यंत्याष्टगैः द्वादशाष्टमव्यतिरिक्ताखिलस्थानस्थैः सद्भिः देवादिप्रतिष्ठा अतिशस्ता । अथ सूर्यो मृगेंद्रे सिंहलग्ने स्थाप्यः । तथा को ब्रह्मा घटे कुंभे विष्णुर्युवतौ कन्यायाम् ॥ ६२ ॥ शिवो महादेवो नृयुग्मे मिथुने । च पुनर्देव्यो दुर्गादयो द्वितनौ द्विस्वभावराशौ मिथुनकन्याधनुर्मीनलग्नेषु क्षुद्रा देव्यश्चतुःषष्टियोगिनीप्रभृतयश्चरलग्ने मेषकर्कतुलामकरेषु सर्वे इमे उक्ता अनुक्ताश्च स्थिरर्क्षे वृषसिंहवृश्चिककुंभेषु । अथ पुष्ये ग्रहा इति । ग्रहाश्चंद्रादयोऽष्टौ पुष्यनक्षत्रे स्थाप्याः । उपलक्षणमेतत् । सूर्यस्य हस्तनक्षत्रे स्थापनम् । इंद्रब्रह्मणोः पुष्यश्रवणाभिजित्सु । कुबेरस्कंदयोरनूराधायाम् । दुर्गादीनां मूले सप्तर्षीणां स्वाधिष्ठितनक्षत्रे लक्ष्मीव्यासवाल्मीक्यगस्त्यानामपि सप्तर्ष्यधिष्ठितनक्षत्रे स्थापनम् । तदुक्तं रत्नमालायाम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सु चेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कंदयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् । सप्तर्षयो यत्र वसंति धिष्ण्ये कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम् । श्रीव्यासवाल्मीकिघटोद्भवानां तथा स्मृता वाक्पतिभे ग्रहणामिति ॥ अथ विघ्नपो गणेशः यक्षो देवयोनिः सर्पा वासुक्यादयः भूतो देवयोनिः । विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगंधर्वकिन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय इत्यमरः ॥ आदिशब्देन राक्षसासुरप्रमथसरस्वतीप्रभृतयोऽत्ये रेवत्यां स्थाप्याः । तथा श्रवणे जिनो बुद्धश्च स्थाप्यः । उपलक्षणं चैतत् । इंद्रकुबेरवर्जितानां लोकपालानां धनिष्ठायां स्थापनम् । इतोऽवशिष्टानां देवानां त्र्युत्तरारोहिणीषु स्थापनं स्यादित्यर्थः । तथा च श्रीपतिः । गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे । श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं हि स्थिरेषु ॥ ६३ ॥ इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितायां स्वकृतमुहूर्तचिंतामणिटीकायां प्रमिताक्षरायां नक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

Aho ! Shrutgyanam

॥ अथ संक्रांतिप्रकरणम् ॥

अथ संक्रांतिप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र प्राग्राशितोऽपरराशौ संक्रमणं नाम गमनं संक्रांतिस्तस्याः नक्षत्रविशेषवशेन वारवशेन च संज्ञां फलं च सार्धवसंततिलकयाह–

घोरार्कसंक्रमणमुग्ररवौ हि शूद्रान्
ध्वांक्षी विशो लघुविधौ च चरर्क्षभौमे ॥
चौरान्महोदरयुता नृपतीन् ज्ञमैत्रे
मंदाकिनी स्थिरगुरौ सुखयेच्च मंदा ॥ १ ॥
विप्रांश्च मिश्रभभृगौ तु पशूंश्च मिश्रा
तीक्ष्णार्कजेंऽत्यजसुखा खलु राक्षसी च ॥

घोरार्केति । विप्रांश्चेति ॥ अर्कसंक्रमणमर्कसंक्रांतिः उग्ररवौ उग्रनक्षत्रेषु रविवारे चेत्स्यात्तदा घोरेति संज्ञा । सा शूद्रान् सुखयेत् सुखमुत्पादयेत् । उग्ररवाविति उग्रैः सहितो रविः उग्ररविः तस्मिन्नुग्ररवाविति मध्यमपदलोपी तत्पुरुषः । ततः सप्तम्येकवचनम् । अथवा समाहारद्वंद्वे अनित्यमागमशासनमिति नुमभावः । एवं लघुविधावित्यादिष्वपि समाधेयम् । अथ लघुनक्षत्रेषु विधौ सोमवारे सूर्यसंक्रांतिर्ध्वांक्षीनाम्नी विशो वैश्यान् सुखयेत् । चरर्क्षभौमे चरनक्षत्रे भौमवारे वा सूर्यसंक्रमणं चेन्महोदरयुता महोदरीसंज्ञका चौरान्सुखयेत् । ज्ञमैत्रे बुधवारे मैत्रसंज्ञनक्षत्रेषु वाऽर्कसंक्रांतिर्मंदाकिनीनाम्नी नृपतीन् राज्ञः सुखयेत् । स्थिरगुरौ स्थिरनक्षत्रेषु गुरुवारे चार्कसंक्रांतिर्मंदानाम्नी विप्रान् ब्राह्मणान् सुखयेत् ॥ १ ॥ मिश्रभभृगौ मिश्रनक्षत्रयोर्भृगुवारे वाऽर्कसंक्रांतिर्मिश्रानाम्नी पशून् सुखयेत् । तीक्ष्णार्कजे तीक्ष्णसंज्ञकनक्षत्रेषु अर्कजे शनिवारेऽवार्कसंक्रांती राक्षसीनाम्नी अंत्यजसुखा अंत्यजान् चांडालान् सुखयतीत्यंत्यजसुखा स्यात् ॥

अथ दिनरात्रिविभागेन संक्रांत्यशुभफलमुत्तरायणदक्षिणायनसंज्ञां च सार्धवसंततिलकयाह–

त्र्यंशे दिनस्य नृपतीन् प्रथमे निहंति
मध्ये द्विजानपि विशोऽपरके च शूद्रान् ॥ २ ॥
अस्तेऽनिशाप्रहरकेषु पिशाचकादी-
न्नक्तंचरानपि नटान्पशुपालकांश्च ॥
सूर्योदये सकललिंगिजनं च सौम्य-
याम्यायनं मकरकर्कटयोर्निरुक्तम् ॥ ३ ॥

त्र्यंशे इति । अस्त इति ॥ अत्रार्कसंक्रमणमित्यनुवर्तते । दिनमाने त्रिभिर्भक्ते

Aho ! Shrutgyanam

त्र्यंशो भवति तत्र दिनस्य प्रथमे त्र्यंशेऽर्कसंक्रमणं नृपतीन् हंति। मध्ये द्वितीयत्र्यंशे द्विजान् ब्राह्मणान् हंति। अपरे तृतीये त्र्यंशे वैश्यान् हंतीत्येवं सर्वत्र व्याख्येयम्। अस्ते सूर्यास्तमयेऽर्कसंक्रमणं शूद्रान् हंति ॥ २ ॥ अथ रात्रिसंक्रांतिफलम्। रात्रिप्रथमप्रहरे पिशाचकान् आदिशब्देन भूतान्। द्वितीयप्रहरे नक्तंचरान् राक्षसान्। तृतीयप्रहरे नटान् नर्तकान्। चतुर्थप्रहरे पशुपालकान् आभीरान्। सूर्योदयसमकालेऽर्कसंक्रमणं सकललिंगिजनं पाखंड्यादिकं हंतीत्यर्थः। पाखंडाः सर्वलिंगिन इत्यभिधानात्। क्रूरसौम्यवारपरत्वेन फलमाह। वसिष्ठः। रविरविजभौमवारे संक्रांतौ दिनकरस्य तन्मासे। पित्तकफानिलजामयनरपतिकलहस्त्ववृष्टिश्च ॥ बुधगुरुसितचंद्राह्वे सति संक्रांतावनामयं नृणाम्। क्षितिपतिनिकरक्षेमं सस्यविवृद्धिर्विधर्मिणां पीडा ॥ जन्मनक्षत्रे संक्रांतिफलं दीपिकायाम्। यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत्। तन्मासाभ्यंतरे तस्य रोगक्लेशधनक्षयाः ॥ तत्र शांतिकमपि तत्रैव। तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः। स्नानं जन्मन्यृक्षे रविसंक्रांतौ नृणां शुभदम्। अन्यच्च वसिष्ठः। अजकन्याझषकर्किणि संक्रांतौ यदि भवेद्वर्षम्। अतुलं क्षेम सुभिक्षं नृपसज्जनगोकुलक्षेमम् ॥ घटचापसिंहमिथुने संक्रांतौ यदि भवेद्वर्षम्। आमयडामरभूभृद्युद्धमनर्घं त्ववृष्टिश्च ॥ वृषवृश्चिकतुलमकरे वृष्टिः स्यात्सांक्रमे समये। विस्फोटामयतस्करपीडा वृष्टिः कृशानुभयम् ॥ अथ सौम्ययाम्यायनमिति। मकरकर्कटयोः संक्रांतिश्चेत्तदा क्रमेण सौम्ययाम्यायनं निरुक्तम्। मकरे उत्तरायणं कर्के याम्यायनं स्यात् ॥ ३ ॥

अथावशिष्टसंक्रांतिषु षडशीत्यादिसंज्ञा अनुष्टुभाह—

षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याझषे भवेत् ॥
तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे ॥ ४ ॥

षडशीत्याननमिति ॥ धनुर्मिथुनकन्यामीनेषु अर्कसंक्रमणं षडशीतिमुखसंज्ञं स्यात्। तुलामेषयोः संक्रांतिर्विषुवसंज्ञा। वृषसिंहवृश्चिककुंभेष्वर्कसंक्रांतिर्विष्णुपदसंज्ञिका ॥ ४ ॥

संक्रांतौ गौणमुख्यकालं उपजात्याह—

संक्रांतिकालादुभयत्र नाडिकाः
पुण्या मताः षोडश षोडशोष्णगोः ॥
निशीथतोऽर्वागपरत्र संक्रमे
पूर्वापराहांतिमपुण्यभागयोः ॥ ५ ॥

संक्रांतिकालादिति ॥ गणितमार्गेण य उष्णगोः सूर्यस्य संक्रांतिकाले आगतः तत उभयत्र पूर्वतः परतश्च षोडश षोडश नाडिका घटिकाः पुण्यसंपादकत्वात् पुण्या

Aho ! Shrutgyanam

मताः । ब्रह्मसिद्धांते । संक्रांतेः प्राक् परस्ताच्च सार्धाः षोडश नाडिकाः । त्रयस्त्रिंशत्संक्रमस्य पुण्याः सर्वस्य नाडिकाः ॥ अनेन संक्रांतेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कला इतिस्मृतिवाक्ये पूर्वतः परतश्च अष्टौ अष्टौ घटिका इत्येवं षोडशेति व्याख्यातं तदपाकृतं भवति । सूर्यसिद्धांतेऽपि । अर्कमानकलाः षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः । तदर्धनाड्यः संक्रांतेरर्वाक् पुण्यं तथापरे इति । अथ निशीथत इति । निशीथतोऽर्धरात्रात् अर्वाक् पूर्वं परत्र पश्चाच्च संक्रांतिकाले सति पूर्वापराहांतिमपूर्वभागयोः पूर्वापरयोरह्नोः क्रमेणांतिमपूर्वभागयोरुभयत्र षोडश षोडश घटिकाः पुण्या इति पूर्वेण संबंधः । अयमर्थः । यद्यर्धरात्रात् प्राक् संक्रांतिस्तदा पूर्वदिनस्य उत्तरार्धं पुण्यम् । यद्यर्धरात्रादुपरि संक्रांतिस्तदोत्तरदिनस्य पूर्वार्धमेव पुण्यमित्यर्थः ॥ ९ ॥

अथार्धरात्रसंक्रमणे मकरकर्कटयोश्च विशेषमुपजातिकयाह—

पूर्णे निशीथे यदि संक्रमः स्याद्दिनद्वयं पुण्यमथोदयास्तात् ॥
पूर्वं परस्ताद्यदि याम्यसौम्यायने दिने पूर्वपरे तु पुण्ये ॥ ६ ॥

पूर्णे इति ॥ पूर्णे निशीथे अर्धरात्रे यदि संक्रमः स्यात्तदा दिनद्वयं पूर्वदिनं परदिनं च पुण्यमुक्तम् । उक्तं च । यद्यर्धरात्र एव स्यात्संपूर्णे संक्रमो रवेः । तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानादिकर्मसु ॥ अथेति । अथानंतरमुदयास्तात्सूर्योदयात्सूर्यास्ताच्च पूर्वं परस्ताच्च यदि याम्यसौम्यायने कर्कमकरसंक्रांती भवतः तदा पूर्वपरे दिने पुण्ये स्याताम् । अयमर्थः । सूर्योदयात्पूर्वं कर्कसंक्रमणं स्यात्तदा पूर्वदिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने । तथा यदि सूर्यास्तानंतरं मकरसंक्रांतिः स्यात्तदोत्तरदिन एव पुण्यकालो न पूर्वदिने । गार्ग्यः । यदास्तमनवेलायां मकरं याति भास्करः । प्रदोषे चार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥ अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रांतौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविरिति । वा इवार्थे । प्रदोषलक्षणं स्कांदे । त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तं गते सतीति ॥ ६ ॥

अथोदयास्तादिति वचनस्यापवादमिंद्रवज्रयाह—

संध्या त्रिनाडीप्रमितार्कबिंबादर्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र ॥
चेद्याम्यसौम्ये अयने क्रमात्स्तः पुण्यौ तदानीं परपूर्वघस्रौ ॥ ७ ॥

संध्यात्रीति ॥ अर्कमंडलादर्धोदितादर्धास्ताच्चाध ऊर्ध्वं क्रमात्त्रिभिर्नाडीभिर्मिता संध्या संध्याकालः स्यात् । अर्धोदितार्कबिंबात् पूर्वं त्रिनाडीमिता प्रातःसंध्या तथार्धास्तादर्कबिंबादुपरि त्रिनाडीमिता सायंसंध्येत्यर्थः । तत्प्रयोजनमाह । अत्रेति । अत्र प्रातःसंध्यायां सायंसंध्यायां च क्रमाच्चेद्याम्यसौम्ये अयने दक्षिणोत्तरायणे स्तस्तदानीं परपूर्वौ घस्रौ दिवसौ पुण्यौ । यदि प्रातःसंध्यायां दक्षिणायनप्रवृत्तिस्तदा सूर्योदयानंतरं संपूर्णमहः

Aho ! Shrutgyanam

पुण्यम् । तथा यदि सायंसंध्यायां उत्तरायणप्रवृत्तिस्तदा सूर्यास्तात्पूर्वं संपूर्णमहः पुण्यं स्यादित्यर्थः । तदाह नारदः । सूर्यस्योदयसंध्यायां यदि याम्यायनं भवेत् । तदोदयादहः पुण्यं पूर्वाहः परतो यदि ॥ सूर्यास्तमनसंध्यायां यदि सौम्यायनं भवेत् । तदहः पुण्यकालः स्यात्परतश्चोत्तरेऽहनीति ॥ उदयसंध्यास्तसंध्ययोर्लक्षणं तत्रैव । अर्धार्कास्तमनात्संध्या घटिकात्रयसंमिता । तथैवार्धोदयात्प्रातर्घटिकात्रयसंमितेति । एवं सत्यर्कबिंबस्यार्धास्तादर्धोदयाद्वा क्रमात् पश्चात्प्राक् त्रिघटीमितास्तसंध्योदयसंध्या चोच्यते । तत्रास्तसंध्यायां यदि मकरसंक्रमः स्यात्तदा तद्दिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने । यद्यस्तसंध्यामतिक्रम्य मकरसंक्रांतिस्तदोत्तरदिन एव पुण्यकालो न पूर्वदिने । एवं यद्युदयसंध्यायां कर्कसंक्रांतिस्तदा सूर्योदयानंतरमेव पुण्यकालो न प्राग्दिने । यद्युदयसंध्यातः प्राक् कर्कसंक्रमस्तदा प्राग्दिन एव पुण्यकालो नोत्तरदिने । इति निष्कृष्टोऽर्थः । अथ रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषत इति रात्रौ स्नानदानादिनिषेधेऽपि । नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिष्विति सुमंतुवाक्यशेषात् । सुतजनने संक्रातावुपरागे सूर्यचंद्रयोर्नित्यम् । रात्रावपि कर्तव्यं स्नानं दानं विशेषतो नृणामिति वासिष्ठवचनात् । राहुदर्शनसंक्रांतिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कार्यं निशि काम्यव्रतेषु चेति ॥ रात्रौ संक्रमणे रात्रौ स्नानं प्राप्तम् । तत्र कर्कमकरसंक्रांतौ स्नानदानादौ देशप्रसिद्धशिष्टाचारेण व्यवस्थावगंतव्या । तत्र गौर्जरास्तु ग्रहणवदयन इति स्वीयसूत्रं स्नानं दानं ग्रहणवत्सौम्ययाम्यायनद्वय इति कश्यपसंहितोक्तं चानुसृत्य रात्रायवनसंभवे सति रात्रावेव स्नानादिकं कुर्वंति । दाक्षिणात्यास्तु । कार्मुकं तु परित्यज्य झषं याति दिवाकर इत्यादि भविष्योत्तरादिवाक्यमंगीकृत्य दिवस एव स्नानादिकं कुर्वंति । तत्रापि नारदोक्तः संध्याकालसंक्रमे विशेषो ध्येय इत्यलम् ॥ ७ ॥

अथ पूर्वपराः षोडश घटिकाः पुण्या इति पूर्वं सामान्येनोक्तमिदानीं विष्णुपदादिविशेषमनुष्टुभाह—

याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यास्तुलाजयोः ॥
षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥ ८ ॥

याम्यायन इति ॥ कर्कसंक्रांतौ विष्णुपदे वृषसिंहवृश्चिककुंभसंक्रांतिषु संक्रांतिकालाद्याः प्रथमाः षोडश घटिका अतिपुण्यदाः स्नानदानादावनंतपुण्यदा ज्ञेयाः । अग्रिमास्तु न तथा । तुलाजयोस्तुलामेषयोर्मध्या उभयतः षोडश घटिकाः संक्रांतिकालात्प्रागष्टौ परतश्चाष्टाविति दीपिकाकारेण व्याख्यातम् । यदुक्तं गुरुणा । वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दशेति तत् मध्यतृतीयांशाभिप्रायेणेति ज्ञेयम् । तथा षडशीत्यानने मिथुनकन्याधनुर्मीनसंक्रांतिषु सौम्येऽयने मकरसंक्रांतौ च संक्रांतिकालात्परा अग्रिमाः षोडश घटिका

Aho ! Shrutgyanam

अतिपुण्याः प्रथमास्तु न तथा । एवं निर्णीते पुण्यकाले स्नानाद्यवश्यं विधेयम् । तत्र स्नानाद्यकुर्वतः प्रत्यवायमाह वसिष्ठः । विषुवत्ययने ग्रहणे संक्रांतौ पुण्यदिवसे वा । पितृतृप्तिं न करोति हि दत्वा शापं व्रजति तस्य पिता ॥ आगतगतसमयेऽपि च करोति यद्दानजपहोमाद्यम् । ऊषरवापितबीजं यद्वत्तद्वच्च निष्फलं भवतीति संक्रांतिषु स्नानदानादेरनंतं फलं स्यात् । षडशीत्यां तु यद्दानं यद्दानं विषुवद्द्वये । दृश्यते सागरस्यांतस्तस्यांतो नैव दृश्यत इति भरद्वाजोक्तेः । अयने कोटिपुण्यं च सहस्रं विषुवे फलम् । षडशीत्यां सहस्रं तु फलं विष्णुपदेषु चेति वसिष्ठोक्तेश्च । अयं च निर्णयश्चंद्रादीनामपि संक्रमे ज्ञेयः । तत्र हेमाद्र्यादौ कालनिर्णयकारादिभिः याः पुण्यकालघटिका उपनिबद्धास्ताः स्थूलास्तेन षष्टिघ्नबिंबं ग्रहभुक्तिभक्तमित्यादिप्रकारेण ग्रहमध्यमभुक्तिमध्यमबिंबानीताः सूक्ष्मा घटिका लिख्यंते । स्फुटगतिस्फुटबिंबैश्चेत् साध्यंते ता अतिसूक्ष्मास्तासामनियतत्वात् श्लोके अनुपनिबंधः । मध्यमास्तु यथा । नाड्यो रामगुणा ३३ रवेरथ विधोः षड् दोः पलैर्युग्द्वयं २, २६ भौमस्याब्धिपलैर्युता नव ९, ४ विदो युक्ताः पलैः खाश्विभिः । षण्नाड्यो ६, १० ऽष्टगजा ८८ गुरोरथ भृगोर्नंदाः पलैरष्टभिः ९, ८ पुण्याः स्युः खनृपाः १६० शनेरुभयतो राश्यृक्षयोः संक्रम इति ॥ ८ ॥

निरयनांशसंक्रांतिमभिधायेदानीं सायनांशसंक्रांतिं सपुण्यकालामुपजात्याह—

तथायनांशाः खरसाहताश्च स्पष्टार्कगत्या विहृता दिनाद्यैः ॥
मेषादितः प्राक् चलसंक्रमाः स्युर्दाने जपादौ बहुपुण्यदास्ते ॥ ९ ॥

तथेति ॥ यथा राशिसंक्रमा बहुपुण्यदास्तथा चलसंक्रमा अपीति व्यवहितस्तथाशब्दः । अयनांशाः षष्ट्या गुण्याः स्पष्टसूर्यगत्या विहृता लब्धैर्दिनाद्यैः दिनघटीपलैः कृत्वा मेषादिद्वादशसंक्रांतिकालात्प्राक् चलसंक्रमाः स्युस्ते चलसंक्रमा दाने जपादौ जपश्राद्धहोमादौ बहुपुण्यदा भवंति । पुलस्त्यः । अयनांशसंस्कृतो भानुर्गोले चरति सर्वदा । अमुख्या राशिसंक्रांतिस्तुल्यः कालविधिस्तयोः ॥ स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः । सुकृतं चलसंक्रांतावक्षयं पुरुषोऽश्नुत इति । जाबालिरपि । संक्रांतिषु यथा कालस्तदीयेऽप्ययने तथा । अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परेति । अत्र चलसंक्रमाख्ये मकरायणे पूर्वा विंशतिर्घटिकाः पुण्याः । मकरसंक्रातौ तु परा विंशतिर्घटिकाः पुण्यकालः । मकरव्यतिरिक्तैकादशचलसंक्रांतिषु तत्तत्संक्रमवत्पुण्यकालो ज्ञेयः । अयनांशानयनादिविचारः सिद्धांतादवगंतव्यः । ईश्वरेच्छालोकादृष्टवशात्तत्तद्राश्यादिविभागस्य सूर्यतेजःसंपर्कश्चलसंक्रमः । मंडल[1]मध्यसंपर्कश्च राशिसंक्रम इति विषयविवेकः । तत्र निरयनगणनयैव सकलव्य-

---

१ चलसंक्रमे ।

Aho ! Shrutgyanam

वहारः साध्यः । सायनगणना तु नियतविषयैव । अयनांशाः प्रदातव्या लग्ने क्रांतौ च गमे । वित्रिभे सत्रिभे पाते तथा दृक्कर्मपातयोरिति । एवं द्वयोरपि मानयोरसंकीर्णो व हार इति सर्वमनाकुलम् । पुण्यकालस्तु उभयविधसंक्रमेऽपि ज्ञेयः । पूर्वलिखितवाक्य स्वरसात् ॥ ९ ॥

अथसंक्रांत्युपयोगित्वाज्जघन्यबृहत्समनक्षत्राण्युपजात्याह–

समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमघात्रिपूर्वास्त्रपभं बृहत्स्यात् ॥
ध्रुवद्विदैवादितिभं जघन्यं सार्पांबुपाद्रानिलशाक्रयाम्यम् ॥ १०

सममिति ॥ मृदुक्षिप्रवसुश्रवोग्निमघात्रिपूर्वास्त्रपभं समम् । अस्त्रपभं मूलं एतानि पंचदश भानि समसंज्ञानि ज्ञेयानि । ध्रुवद्विदैवादितिभं बृहत्स्यात् । ध्रुवादिषड्भानि बृहत्सं ज्ञकानि । सार्पांबुपाद्रानिलशाक्रयाम्यं जघन्यं स्यात् । आश्लेषादिषड्भानि जघन्यसंज्ञानि ॥ १० ॥

अथ संज्ञाप्रयोजनमुपेंद्रवज्रयाह–

जघन्यभे संक्रमणे मुहूर्ताः शरेंदवो बाणकृता बृहत्सु ॥
खरामसंख्याः समभे महर्घसमर्घसाम्यं विधुदर्शनेऽपि ॥ ११ ॥

जघन्यभ इति ॥ जघन्यनक्षत्रेऽर्कसंक्रमणे पंचदश मुहूर्ता ज्ञेयाः । बृहन्नक्षत्रेऽर्कसंक्रमणे बाणकृताः पंचचत्वारिंशन्मुहूर्ता ज्ञेयाः । समनक्षत्रेऽर्कसंक्रमणे खरामसंख्यास्त्रिशन्मुहूर्ता ज्ञेयाः । उक्तं च नारदेन । तासां प्रमाणं घटिकास्त्रिशन्नवतिषष्ट्य इति । फलमाह । महर्घसमर्घसाम्यमिति पंचदशमुहूर्तायां संक्रांतौ सर्वमन्नं महर्घं दुष्प्रापं भवति । पंचचत्वारिंशन्मुहूर्तायां संक्रांतौ समर्घं त्रिशन्मुहूर्तायां संक्रांतौ समं यथास्थितं भवति । विधुदर्शनेऽपीति । चंद्रदर्शनेऽप्येवमेव फलं वाच्यम् । अयमर्थः । जघन्यभे चंद्रदर्शने महर्घम् । बृहन्नक्षत्रे चंद्रदर्शने समर्घम् । समभे चंद्रदर्शने साम्यम् ॥ ११ ॥

अथ प्रसंगात्कर्कसंक्रांतावब्दविशोपकाननुष्टुभाह–

अर्कादिवारे संक्रांतौ कर्कस्याब्दविशोपकाः ॥
दिशो नखा गजाः सूर्या धृत्योऽष्टादश सायकाः ॥ १२ ॥

अर्कादीति ॥ कर्कसंक्रांतौ अर्कादिवारे सति एतेऽब्दविशोपका ज्ञेयाः । यथ रविवारे कर्कसंक्रांतौ दश विशोपकाः । एवं सोमे विंशतिः भौमेऽष्टौ ज्ञे द्वादश गुरौ धृत्योऽष्टादश शुक्रेऽष्टादश शनौ पंचेत्यर्थः ॥ १२ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ कीदृशस्य रवेः संक्रमो जातस्तत्फलमिंद्रवज्रयाह—

त्तैतिले नागचतुष्पदे रविः सुप्तो निविष्टस्तु गरादिपंचके ॥
स्तुघ्न ऊर्ध्वः शकुनौ सकौलवेऽनिष्टः समः श्रेष्ठ इहार्घवर्षणे॥१३॥

स्यात्तैतिल इति ॥ रविस्तैतिले करणे नागकरणे चतुष्पदे च करणे सुप्तः संक्रतः स्यात् । गरादिपंचके गरे वणिजे भद्रायां बवे बालवे च निविष्टः संक्रमितः स्यात् । स्तुघ्ने सकौलवे शकुनौ च ऊर्ध्वः ऊर्ध्वस्थितः संक्रमितः स्यात् । इह करणाधिकरणकक्रांतौ रविः अर्घवर्षणे अर्घे मूल्ये वर्षणे वृष्टौ उपलक्षणत्वादन्नेऽपि क्रमादनिष्टः समः श्रेष्ठः स्यात् । अयमर्थः । सुप्तरविसंक्रमा अर्घवर्षणधान्येष्वनिष्टाः महर्घवृष्टयभावधान्याभावकारकाः । एवं निविष्टः समः तथोर्ध्वः श्रेष्ठः । उक्तं च श्रीपतिना । धान्यार्घवृष्टिषु भवेत्क्रमशस्त्वनिष्टमध्येष्टतेति ॥ १३ ॥

अथ रविसंक्रांतिः करणपरत्वेन वाहनवस्त्रायुधभक्ष्यलेपनजातिपुष्पाणि सफलानि शार्दूलविक्रीडितत्रयेणोपजातिकया चाह—

सिंहव्याघ्रवराहरासभगजा वाहद्विषद्घोटकाः
श्वाजो गौश्चरणायुधश्च बवतो वाहा रवेः संक्रमे ॥
वस्त्रं श्वेतसुपीतहारितकपांड्वारक्तकालासितं
चित्रंकंबलदिग्घनाभमथ शस्त्रं स्याद्भृशुंडी गदा ॥ १४ ॥
खड्गो दंडशरासतोमरमथो कुंतश्च पाशोऽकुशो-
ऽस्त्रं बाणस्त्वथ भक्ष्यमन्नपरमान्नं भैक्षपक्वान्नकम् ॥
दुग्धं दध्यपि चित्रितान्नगुडमध्वाज्यं तथा शर्करा-
ऽथोलेपो मृगनाभिकुंकुममथो पाटीरमृद्रोचनम् ॥ १५ ॥
यावश्चोतुमदो निशांजनमथो कालागुरुश्चंद्रको
जातिर्दैवतभूतसर्पविहगाः पश्वेणविप्रास्ततः ॥
क्षत्री वैश्यकशूद्रसंकरभवाः पुष्पं च पुन्नागकं
जाती बाकुलकैतकानि च तथा बिल्वार्कदूर्वांबुजम् ॥ १६ ॥
स्यान्मल्लिका पाटलिका जपा च संक्रांतिवस्त्राशनवाहनादेः ॥
नाशश्च तद्वृत्त्युपजीविनां च स्थितस्तोपविष्टस्वपतां च नाशः ॥ १७ ॥

सिंहेति । खड्ग इति । यावश्चेति । स्यान्मल्लिकेति च ॥ बवतो बवमारभ्यैकादशकरणेषु क्रमेण वाहनादीनि स्युः। वाहनानि सिंहादीनि। रासभो गर्दभः वाहद्विषन्महिषः । लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभा इत्यमरः । अजो मेषः । चरणायुधः

Aho ! Shrutgyanam

कुक्कुटः । नारदेन तु विशेष उक्तः । खशबाल्हीकवंगेषु संक्रांतेर्धिष्ण्यवाहनम् । अन्यदेशेषु तिथ्यर्धवाहनाः स्युर्बवादय इति ॥ अश्विन्यां यदा संक्रांतिस्तदाश्विन्याः योऽश्वस्तद्वाहं न स्यात्। खशादिदेशेषु एवं सर्वनक्षत्रेषु। अथ वस्त्रं श्वेतादि हारितकं नीलवर्णं पांडु आरक्तं अरुणवर्णम् । कालं श्यामलम् । असितं श्वेतवर्णरहितम् । कज्जलवर्णमित्यर्थः । दिक् वस्त्राभावः । घनाभं मेघवर्णम् । अथ शस्त्रम् । भृशुंड्यादीनि आयुधानि प्रसिद्धानि । अथ भक्ष्यम् । अन्नं भक्तः परमान्नं पायसम् । भैक्ष्यं भिक्षासमूहः पक्वान्नमपूपादि चित्रितान्नं हरिद्रादिरंजितम् । अथ लेपो विलेपनं मृगनाभिः कस्तूरी कुंकुमं केशरं पाटीरं चंदनं मृत् प्रसिद्धा रोचनं गोरोचनमिति ॥ १४ ॥ १५ ॥ यावोऽलक्तकः ओतुमदो मार्जारघर्मः भाषया जवादिरिति। निशा हरिद्रा अंजनं कज्जलम् कालागुरुरगुरुविशेषः। चंद्रकः कर्पूरः। अथ जातिः । संकरभवा अनुलोमजाः प्रतिलोमजाश्च । अथ पुष्पम् । पुन्नागकं नागकेसरपुष्पं मल्लिका वेलिः जपा औंड्रपुष्पं जासवनम् । शेषाणि प्रसिद्धानि सर्वत्र । क्वचिद्वयोऽप्युक्तम् । शिशुः कुमारश्च गतालका युवा प्रौढा प्रगल्भा च ततश्च वृद्धा । वंध्यातिवंध्या च सुतार्थिनी च प्रव्राजिका चेति बवादिकानामिति ॥ तथा क्वचिद्भोजनपात्रमप्युक्तम् । सुवर्णरौप्यताम्राणि लोहं सीसं त्रपुस्तथा । कांस्यपाषाणकाष्ठं च मृत्पात्रं वेणुपात्रकमिति । एवं संक्रमकाले यानि वस्त्राशनवाहनादीन्यभिहितानि आदिशब्देनायुधलेपनजातिपुष्पाणि तेषां नाशो भवेत् । च पुनस्तद्वृत्त्युपजीविनां वस्त्रादिवृत्त्युपजीविनां नाशो भवेत् । स्थितोपविष्टस्वपतां च स्यात्तैतिले इत्यादिना सुप्तत्वादीन्युक्तानि तद्गुणविशिष्टानां नाशः स्यादित्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ संक्रांतिवशेन प्रतिमनुष्यं शुभाशुभमुपजात्याह—

संक्रांतिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमनं ततोऽगभे ॥
सुखं त्रिभे पीडनमंगभेऽशुकं त्रिभेऽर्थहानी रसभे धनागमः ॥१८॥

संक्रांतीति ॥ संक्रांतिर्यस्मिन्नक्षत्रे स्यात्ततोऽधरधिष्ण्यं पूर्वनक्षत्रं तस्मात्स्वजन्मनक्षत्रं गण्यं तच्चेत्प्रथमत्रिभे भवति तदा गमनं यात्रा स्यात् । ततः प्रथमत्रिकानंतरं अंगभे षण्नक्षत्रेषु यदि स्वभं तदा सुखं स्यात् । ततस्त्रिभे स्वभे पीडनं शरीरपीडा । पुनरंगभे स्वभेंऽशुकं वस्त्रादिप्राप्तिः । ततस्त्रिभे स्वभेऽर्थहानिः ततो रसभे स्वभे धनागमो धनप्राप्तिः स्यादित्यर्थः । अशुभफलदायां संक्रांतौ दानमाह नारदः । तिलोपरि लिखेच्चक्रं त्रित्रिशूलं त्रिकोणकम् । तत्र हेम विनिक्षिप्य दद्याद्दोषापनुत्तय इति ॥ १८ ॥

अथ कार्यविशेषे ग्रहविशेषबलं सामान्यतो ग्रहबलं चोपजात्याह—

नृपेक्षणं सर्वकृतिश्च संगरः शास्त्रं विवाहो गमदीक्षणं रवेः ॥
वीर्येऽथ ताराबलतो विधुर्विधोर्बलाद्रविस्तद्बलतः शुभाः परे ॥१९॥

Aho ! Shrutgyanam

नृपेक्षणमिति ॥ रवेरिति ल्यब्लोपे पंचमी । रविवारमारभ्य एतानि कार्याणि । यथा रवेः अर्कस्य बले वारे वा नृपेक्षणं राजदर्शनं विधेयम् । एवं चंद्रादावपि व्याख्येयम् । चंद्रे सर्वकृतिः सर्वकृत्यानि भौमे संगरो युद्धम् बुधे शास्त्रमध्येयमध्याप्यं वा गुरौ विवाहः शुक्रे गमनम् शनौ दीक्षणं यागादिदीक्षाविधेयेत्यर्थः । अथेति । ताराबलतो विधुः शुभो ज्ञेयः । यदा चंद्रसंक्रमणं स्यात्तदा ताराबलं चेत्तदा सपाददिनद्वयं चंद्रोऽशुभोऽपि शुभः तारादौष्ट्ये शुभोऽप्यशुभः। एवं विधोर्बलाद्रविः संक्रमणेऽशुभोऽपि मासपर्यंतं शुभः । शुभस्तु सुतरां समीचीन एव । चंद्रदौष्ट्ये शुभोऽप्यशुभ इत्यर्थः । परे भौमादयः संक्रांतिचिकीर्षवस्तद्बलतः सूर्यबलादशुभा अपि शुभा ज्ञेयाः । रविदौष्ट्ये तु शुभा अप्यशुभाः १९

अथाधिमासक्षयमासयोर्लक्षणमुपजात्याह—

स्पष्टार्कसंक्रांतिविहीन उक्तो मासोऽधिमासः क्षयमासकस्तु ॥
द्विसंक्रमस्तत्र विभागयोस्तस्तिथेर्हि मासौ प्रथमांत्यसंज्ञौ ॥ २० ॥

इति मुहूर्तचिंतामणौ तृतीयं संक्रांतिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

स्पष्टार्केति ॥ शुक्लप्रतिपदादिदर्शांतश्चांद्रो मासः स चेत् स्पष्टसूर्यसंक्रांत्या विहीनो रहितो भवेत्तदाधिमास उक्तः । चांद्रो मासो ह्यसंक्रांतो मलमासः प्रकीर्तित इति ब्रह्मसिद्धांतोक्तेः । तुर्विशेषे । कदाचित्स चांद्रो मासो द्विसंक्रमः द्वौ संक्रमौ यस्मिन्नसौ द्विसंक्रमः स्पष्टसूर्यसंक्रांतिद्वययुतस्तदा क्षयमाससंज्ञक उक्तः । आद्यंतदर्शयोर्मध्ये भानोरेव तयोर्यदा । संक्रांतिद्वितयं चेत्स्यात्क्षयमासः स उच्यत इति वसिष्ठोक्तेः। तत्र क्षयमासे जातानां वर्धापने मृतानां श्राद्धे च तिथेर्विभागयोः पूर्वोत्तरदलयोः संबंधेन प्रथमांत्यसंज्ञौ मासौ स्तः स्याताम् । तिथिपूर्वार्धजातानां मृतानां च पूर्वमासे वर्धापनं श्राद्धं च विधेयम्। तिथ्युत्तरार्धे जातानां मृतानां चोत्तरमासे वर्धापनं श्राद्धं च विधेयम् । तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वोऽपरस्मिन्नपरस्तथा । मासाविति बुधैश्चित्यौ क्षयमासस्य मध्यगाविति ॥ मासादिलक्षणभेदविचारस्तु ग्रंथगौरवभयान्न लिखितः ॥ २० ॥

अथ ग्रंथांतरसंग्रहः । योगिनीस्थितकाष्ठातः संक्रांतेरागमो मतः । चंद्रस्थदिशि दृष्टिः स्याद्गमनं वारदिक्स्मृतमिति क्वचित् । रवौ संक्रमणे पूर्वे मुखं जीवे तु उत्तरे । प्रत्यङ्मुखं शनौ सोमे शेषे दक्षिणतो मुखमिति । बवे पूर्वमुखं प्रोक्तं बालवे यमदिङ्मुखम् । कौलवे पश्चिममुखं तैतिले चोत्तरे मुखम् ॥ गरे वायव्यदिग्वक्त्रं वणिज्याग्नेयदिङ्मुखम् । भद्रायामीशदिग्वक्त्रं शकुनौ नैर्ऋतौ मुखम् ॥ चतुष्पदि च पाताले नागे चोर्ध्वमुखं भवेत् । किंस्तुघ्ने सर्वदिग्वक्त्रं संक्रांतिमुखलक्षणम् ॥ अथ दृष्टिः । चंद्रे गुरौ दृक्कथिता कृशानौ सूर्ये सिते नैर्ऋतिकोणगा दृक् । धात्रीसुते दृक् पवने निरुक्ता बुधे शनौ रुद्रदिशीक्षणं भवेत् । अथ

Aho ! Shrutgyanam

गमनम् । मंदे चंद्रे गमः सौम्ये बुधे भौमे च वारुणे । रवौ शुक्रे गमो याम्ये गुरौ प्रागगमनं स्मृतमिति ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचित०प्रमिताक्षरायां संक्रांतिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ अथ गोचरप्रकरणम् ॥

अथ गोचरप्रकरणं व्याख्यायते ॥ तत्र जन्मराशेः सकाशात् ग्रहाणां चारवशेन यच्छुभाशुभफलं तद्गोचरफलमित्युच्यते । तत्र रविचंद्रयोर्गोचरफलमुपजातिकयाह—

सूर्यो रसांत्ये खयुगेऽग्निनंदे शिवाक्षयोर्भौमशनी तमश्च ॥
रसांकयोर्लाभशरे गुणांत्ये चंद्रोंऽबराब्धौ गुणनंद्योश्च ॥ १ ॥

सूर्य इति ॥ रसांत्य इत्यादौ समाहारद्वंद्वः । शिवाक्षयोरित्यादावितरेतरयोगः । अंबराब्धावित्यादावनित्यमागमशासनमिति नुमभावो ध्येयः । एवं सर्वत्र । स्वजन्मराशेरिति पंचमश्लोकस्थमत्राध्याहार्यम् । ततः सूर्यः क्रमात् रसांत्ये शुभो विद्धश्च स्यात् । सूर्यो जन्मराशेः सकाशात् षष्ठस्थाने शुभः यदि तत एव जन्मराशेर्द्वादशस्थानस्था अन्ये ग्रहाः स्युस्तदा विद्धः सूर्यः शुभोऽप्यशुभफलदाता । अत्र शनेः सूर्यपुत्रत्वात्तद्वेधोऽनांगीकृतः । यतः पितुर्जनकस्य सुतसंबंधिनं वेधं नाहुः । सुतस्यापि पितृसंबंधिनं वेधं नाहुः । तथा खयुगे जन्मराशेर्दशमे सूर्यः शुभश्चेच्चतुर्थस्थाने शनिवर्जिता अन्ये ग्रहाः स्युस्तदा विद्ध इत्येवं श्लोकत्रयं सम्यग्व्याख्येयम् । तथाग्निनंदे तृतीयनवमयोः शिवाक्षयोरेकादशपंचमयोः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । भौमेति । भौमशनी तमोऽगुश्च त्रयोऽपि जन्मराशितः रसांकयोः लाभशरे गुणांत्ये क्रमाच्छुभा विद्धाश्चेत्यर्थः परंतु शनेः सूर्यवेधो नास्तीत्युक्तं प्राक् चंद्रोंऽबराब्धौ इत्यग्रे ॥ १ ॥

अथ बुधगुरुशुक्राणां गोचरफलमुपजातिकेंद्रवज्राभ्यामुपजातिकापूर्वार्धेन चाह—

लाभाष्टमे चाद्यशरे रसांत्ये नगद्वये ज्ञो द्विशरेऽब्धिरामे ॥
रसांकयोर्नागविधौ खनागे लाभव्यये देवगुरुः शराब्धौ ॥ २ ॥
व्यंत्ये नवांशेऽद्रिगुणे शिवाष्टौ शक्रः कुनागे द्विनगेऽग्निरूपे ॥
वेदांबरे पंचनिधौ गजेषौ नंदेशयोर्भानुरसे शिवाग्नौ ॥ ३ ॥
क्रमाच्छुभो विद्ध इति ग्रहः स्यात्पितुः सुतस्यात्र न वेधमाहुः ॥

चंद्र इति । लाभाष्टमे इति । व्यंत्य इति । क्रमादिति च ॥ जन्मभात् अंबराब्धौ गुणनंदयोः लाभाष्टमे आद्यशरे रसांत्ये नगद्वये चंद्रः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । चंद्रस्य बुधवेधो नास्ति । अथ ज्ञ इति जन्मभात् द्विशरे अब्धिरामे रसांकयोः नागविधौ खनागे लाभव्यये ज्ञो बुधः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । अत्र चंद्रवेधो

Aho ! Shrutgyanam

नास्ति । अथ देवगुरुरिति जन्मभात् शराब्धौ द्व्यंत्ये नवांशे अद्रिगुणे शिवाह्नौ देवगुरुर्बृहस्पतिः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । अथ शुक्र इति जन्मराशेः सकाशात् कुनागे द्विनगे अग्निरूपे वेदांबरे पंचनिधौ गजेषौ नंदेशयोः भानुरसे शिवाग्नौ शुक्रः क्रमाच्छुभो विद्धश्च ज्ञेयः । अत्रेदं तात्पर्यम् । सूर्यो रसांत्ये इत्यादिप्राक्पठितस्थानेषु विद्यमानः स स ग्रहः शुभदः तदनंतरपठितस्थानेषु स्थितोऽशुभफलदाता । अर्थादेवानुक्तस्थानेषु न शुभो नाप्यशुभ इति ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ वामवेधं शुक्लपक्षे चंद्रबलं चोपजात्युत्तरार्धेनाह—

दुष्टोऽपि खेटो विपरीतवेधाच्छुभो द्विकोणे शुभदः सितेऽब्जः ४

दुष्टोऽपीति ॥ दुष्टोऽपि स्वजन्मराशेः सकाशादनंतरपठितविरुद्धस्थानस्थितोऽपि विपरीतवेधाद्वामवेधाच्छुभः । यथा सूर्यो द्वादशेऽनिष्ट इत्युक्तं प्राक् स यदि शनिवर्जितैर्ग्रहैः षष्ठस्थानस्थितैर्विद्धः सन् शुभफलदाता एवमुत्तरस्थानस्थितो यःकश्चिद्ग्रहः प्राक्पठितस्थानस्थितैर्ग्रहैर्विद्धः शुभ इति सर्वत्र व्याख्येयम् । अयमेव वामवेध इत्युच्यते । कश्यपः । अपविद्धो ग्रहः किंचिन्न ददाति शुभं फलम् । वामवेधविधानेन त्वशुभोऽपि शुभप्रदः । द्विकोणे इति । सितो शुक्लपक्षे अब्जश्चंद्रो द्वितीयनवपंचमेषु स्थितः शुभदः । अत्रापि क्रमेण षष्ठाष्टमचतुर्थस्थानस्थितैर्बुधवर्जितैर्ग्रहैर्यदि न विद्धस्तदा शुभ इति ध्येयम् ॥ नारदः । शुक्लपक्षे शुभश्चंद्रो द्वितीयनवपंचमे । रिपुमृत्यंबुसंस्थैश्च न विद्धो गगनेचरैरिति ॥ ४ ॥

अथ द्विविधमतमुपजात्याह—

स्वजन्मराशेरिह वेधमाहुरन्ये ग्रहाधिष्ठितराशितः सः ॥
हिमाद्रिविंध्यांतर एव वेधो न सर्वदेशेष्विति काश्यपोक्तिः ॥५॥

स्वजन्मराशेरिति ॥ इह द्विविधवेधविधौ अन्ये नारदादयः स्वजन्मराशेः सकाशात् द्विविधमपि वेधमाहुः तथाचोभयत्रापि नारदेन जन्मत इत्युक्तम् । अन्ये कश्यपादयः स पुनर्द्विविधो ग्रहाधिष्ठितराशितः ग्रहो यस्मिन् राशौ तिष्ठति तत एव क्रमाद्वेधो वामवेधश्च भवति । यथा सूर्यो जन्मराशेः षष्ठस्थितः शुभः स सूर्यः स्वाक्रांतराशेर्द्वादशस्थानस्थितैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्न विद्धः तथा सूर्यो द्वादशस्थानस्थितोऽनिष्टः स सूर्यः स्वाक्रांतराशेः षष्ठस्थानस्थितैः शनिवर्जितैर्ग्रहैर्विद्धश्चेत्तदा शुभफलद इत्यर्थः । द्विविधवेधस्यैव विषयकल्पनोच्यते । हिमाद्रीति । हिमाचलविंध्याचलयोर्मध्यवर्तिन्येव देशे स वेधो ज्ञेयः न सर्वदेशेष्विति काश्यपोक्तिः काश्यपवचनम् । यदाह । ज्ञातव्यं जन्मराशेस्तु निखिलं यद्बलाबलम् । हिमाद्रिविंध्ययोर्मध्ये वेधजं तद्ग्रहालयम् । अपरे तु । सूर्यो रसांत्य इति क्रामिकवेधो जन्मराशेरेव ज्ञेयः । विपरीतवेधस्तु ग्रहाधिष्ठितराशित एवेति वदंति । गुरुः । जन्मतः क्रमवेधः स्याद्वाम-

Aho ! Shrutgyanam

वेधो ग्रहालयादिति । इदमपि हिमाद्रिविंध्यांतरविषयमेवेत्यन्ये । एतज्ज्ञानं दुर्घटमित्याह नारदः । अज्ञात्वा द्विविधं वेधं यो ग्रहज्ञो बलं वदेत् । स मृषावचनाभाषी हास्यं याति जने सदेति ॥ एवं गोचरदौष्ट्ये यात्रादि न कार्यम् । तत्र शांतिमाह नारदः । ग्रहेषु विषमस्थेषु शांतिं यत्नात्समाचरेदिति । सौम्येक्षितोऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः । निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रुणा चावलोकितः ॥ नीचराशिगतः स्वस्य शत्रुक्षेत्रगतोऽपि वा । शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तं गतोऽपि वेति । एतादृशस्थले दुष्टत्वाभावादेव शांत्यभाव इति फलितोऽर्थः ॥ ९ ॥

अथ गोचरप्रस्तावात् ग्रहणीयनक्षत्रफलं ग्रहणीयराहुगोचरफलं ग्रहणाशुभप्रतीकारं दुष्टग्रहणदर्शननिषेधं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा
चिंता सौख्यकलत्रदौस्थ्यमृतय स्युर्माननाशः सुखम् ॥
लाभोपाय इति क्रमात्तदशुभध्वस्त्यै जपः स्वर्णगो-
दानं शांतिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्यमाहुः परे ॥ ६ ॥

जन्मर्क्षेति ॥ यस्य जन्मनक्षत्रे ग्रहे ग्रहणे सति निधनं मरणं स्यात् । वसिष्ठः । यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ । तस्य व्याधिभयं घोरं जन्मराशौ धनक्षय इति । विशेषो भार्गवीये । यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभंगं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेदिति । राज्यनक्षत्रे राज्याभिषेकनक्षत्रे । अथ राशिफलम् । जनिभत इति जन्मराशेरारभ्य ग्रहणे सति क्रमेण घातादिकं फलं भवति । यथा जन्मराशौ ग्रहणे सति घातः शरीरपीडा । द्वितीयराशौ क्षतिर्द्रव्यनाशः तृतीयराशौ श्रीर्लक्ष्मीप्राप्तिः चतुर्थराशौ व्यथा शरीरपीडा पंचमराशौ चिंता पुत्रादीनाम् । षष्ठराशौ सौख्यम् । सप्तमराशौ कलत्रदौस्थ्यं स्त्रीकष्टम् । अष्टमराशौ मृतिर्मरणम् । नवमराशौ माननाशः । दशमराशौ सुखम् एकादशराशौ लाभः प्राप्तिः । द्वादशराशौ अपायो नाशः आत्मन इति केचित् । द्रव्यस्येत्यपरे । इदं षण्मासपर्यंतमिति ज्ञेयम् । तदनंतरं ग्रहणांतरसंभावनयोक्तं दैवज्ञमनोहरे । घातं हानिमथ श्रियं जननभाद्व्यस्ति च चिंतां क्रमात्सौख्यं दारवियोजनं च कुरुते व्याधिं च मानक्षयम् । सिद्धिं लाभमपायमर्कशशिनोः षण्मासमध्ये ग्रह इति । अथाशुभसूचकग्रहणप्रतीकारमाह । तदशुभेति । तस्य ग्रहणाशुभस्य ध्वस्त्यै नाशाय जपः स्वर्णगोदानं जपो गायत्र्यादिमंत्राणां स्वर्णं सुवर्णं गौर्धेनुर्भूमिर्वा उपलक्षणत्वादन्येषां रूप्यादीनां यथाशक्त्या दानं कार्यमिति शेषः । तद्दौस्थ्यप्रणुदुक्तवज्जपविधिस्वर्णादिदानं भवेदित्युक्तेः । दानं ज्योतिर्निबंधे । सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत् । मंत्रश्च । तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन । हेमनागप्रदानेन मम शांतिप्रदो भवेति । स्कांदे ।

Aho ! Shrutgyanam

गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः । ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेदिति । किंचात्र देशविशेषः पात्रविशेषो द्रव्यविशेषश्च नापेक्षित इत्याह व्यासः । सर्वं गंगासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोरिति । अन्यच्च । ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयत इति । तस्मिन्काले जपादिकमपि विधेयम् । सूर्येंदुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकमिति शिवरहस्योक्तेः । आदिशब्दाद्देवार्चनादि कार्यम् । अथ स्थानविशेषेण ग्रहणमरिष्टजनकमित्युक्तम् । तद्दृष्टमुतादृष्टमपीति संशये निर्णयमाह । अथो इति तुर्विशेषे परे आचार्याः । अशुभदं ग्रहणं तु नो वीक्ष्यं न द्रष्टव्यमित्याहुः । उक्तं च । जन्मसप्ताष्टरिःफांकदशमस्थे निशाकरे । दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधने तथा । जन्मर्क्षं जन्मनक्षत्रं निधनं वधतारा सप्तमी । अत्र दृष्ट इति पदश्रवणाद्दर्शनं चाक्षुषं विवक्षितमिति तेषामाशयश्चाक्षुषज्ञान एव । दृशेर्मुख्यत्वमिति परेषां मतम् तदसत् । अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः । शीघ्रमंदोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतव इति सूर्यसिद्धांते पातानामदृश्यतोक्ता । पातो राहुश्च पर्यायः । दक्षिणोत्तरयोरेवं पातो राहुश्च रंहसा । विक्षिपत्येष विक्षेपश्चंद्रादीनामपक्रमादिति सूर्यसिद्धांतोक्तेः । अतः पातानामदृश्यत्वात् राहोर्दर्शनमेवानुपन्नम् । ननु ग्रहणे चंद्रसूर्ययोश्छादको राहुर्दृश्यत एव । अत एव राहुग्रस्ते निशाकरे इत्यादिपुराणोक्तिरपीति चेन्न । भानोर्भार्धे महीछाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा । शशांकपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनक इत्युपक्रम्य छादको भास्करस्येंदुरधस्थो घनवद्भवेत् । भूछायां प्राङ्मुखश्चंद्रो विशत्यस्य भवेदसौ । असौ भूछाया अस्य चंद्रस्य छादका भवेदित्यर्थः । सूर्यसिद्धांते छाद्यछादकभावोऽभिहितः स्पष्ट एव । पुराणविरोधपरिहारस्तु भास्करेणैव राहुः कुभामंडलगः शशांकमित्यादिनोक्तः । वराहेणापि तस्मिन्काले सान्निध्यमस्यते नोपचर्यते राहुरित्युक्तस्तस्माद्राहोर्दर्शनं नास्त्येव । त्वन्मते दर्शनं चाक्षुषमेव विवक्षितम् । एवं च राहोर्दर्शनं राहुदर्शनमिति तत्पुरुषोऽनुपपन्नः । तस्माद्दर्शनशब्देनोपरागो लक्ष्यते । राहुदर्शनं राहूपरागस्तस्मिन् राहुदर्शने इति । अयमर्थः । राहुर्नाम पातस्तत्संबंधेन दर्शनमुपराग इति । न च राहुरेव लक्षणयोपरागपरस्तस्य दर्शनमिति पूर्वपक्षाभिमतार्थसिद्धिरिति वाच्यम् । लक्षणा तु अर्थांतरासंभवे सति वक्तव्या । अत्यंतादर्शने राहोस्तथा चात्यंतदर्शने । प्रजापीडा विनिर्देश्या व्याधिदुर्भिक्षकारकैरिति विष्णुधर्मोत्तरादिवाक्येषु पदांतरासन्निधानाद्राहुशब्देनोपरागो लक्ष्यते । इह च राहोः पाताख्यं ग्रहगतिरूपमर्थांतरमस्तीत्यतो राहुदर्शनग्रहपातयोः समानार्थकतास्तीत्येवं सिद्धमिति प्रागुक्तानां सर्ववचसां ग्रहणे स्नायादित्येकवाक्यार्थः फलितो भवति । केचित्तु दर्शनादर्शनविषयकयोस्तु विध्योस्तुल्यबलत्वात्सकृद्दृष्ट्वा स्नायादिति वदंति तदसत् । जन्मसप्ताष्टरिःफां-

१ तस्करैरित्यपि पाठः ।

Aho ! Shrutgyanam

केत्यादिना सामान्यतो निषिद्धस्य उपरक्तदर्शनस्य ॥ नेक्षेतोद्यंतमादित्यं नास्तं यांतं कदाचन। नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतमिति मनूक्तोपरक्तदर्शनस्य पुनर्निषेधानुपपत्तेः। प्रागुक्तदिशा राहुदर्शनपदस्य राहूपरागलक्षकत्वेन तुल्यबलत्वाभावात्। तस्मादुपरक्तयोः सूर्याचंद्रमसोर्यस्य कस्यापि दर्शननिषेधसत्वात् ग्रहणे च स्नानदानाद्युक्तेस्तज्ज्ञानं च ज्योतिःशास्त्रैकदेशगणितग्रंथेभ्यो बुध्वा तस्मिन्काले दानादि विधेयमिति सिद्धांतः। अत एव मेघाद्यावृतेऽप्युपरागे स्नानादिविधेयमेव। रात्रौ सूर्योपरागे दिवा चंद्रोपरागे च स्नानादिकं तु वचनान्न भवति। तदुक्तं निगमे। सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चंद्रग्रहो यदि। तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचिदिति। तादृशे ग्रहणे दृष्टेऽपि दोषो नास्तीत्यपि सूचितम्। जाबालिवचनं तु। संक्रांतेः पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः। चंद्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचर इति। ग्रस्तस्यास्तमनपर्यंतं दर्शनगोचरत्वात्तावान् कालः पुण्यकालो भवतीति व्याचख्युः। तदुक्तं विश्वरूपनिबंधे। दिवाचंद्रग्रहो रात्रौ सूर्यपर्व न पुण्यदम्। संधिस्थं पुण्यवज्ज्ञेयं यावद्दर्शनगोचर इति। अन्ये तु। सूर्यस्यादर्शनं रात्रिर्दिनं तद्दर्शनात्मकम्। भुजवृत्तादुपरि च स्थितोऽर्को दर्शनं स्मृतमिति वसिष्ठसिद्धांतवचनान्मेघावृतेऽनावृते चोपरागे गणितागतस्थितिघटिकाः पुण्यकाल इत्याहुः। यत्राकाशो भूम्या सह संलग्न इव दृश्यते स प्रदेशो भुजशब्दवाच्यः। अर्क इत्युपलक्षणं चंद्रादिग्रहनक्षत्राणाम्। विष्णुधर्मोत्तरे। अहोरात्रं न भोक्तव्यं चंद्रसूर्यग्रहो यदा। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परमिति। ग्रस्तास्ते गुरुः। ग्रस्तावेवास्तमानं तु रविंदू प्राप्नुतो यदि। तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाभ्यवहरेन्नरः। इत्यनयोर्वाक्ययोर्दर्शनोदयशब्दौ भुजवृत्तोपरि स्थितत्वोपलक्षकौ। अन्यथा मेघाद्यावरणेन परदिवसेऽपि दर्शनाभावे उपवासः प्रसज्येत। तथा यत्र स्पर्शकाले ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानं विहितं तत्रांतरे मेघावरणाद्रविचंद्रयोर्दर्शनाभावो दिवसद्वयं त्रयं वा स्यात्तत्राप्युपवासप्रसंगः स्यात् नच शिष्टास्तथाचरंति। तस्माद्दृशिर्दर्शनार्थ एव तस्माच्छास्त्रीयग्रहणज्ञाने सति मेघानावृतेऽपि ग्रहणमदृष्ट्वैव चक्षुष्मतांधेन गंतुमशक्तेन च वृद्धादिना स्नानादिकं विधेयमित्यरिष्टजनकत्वाभावेऽपि ग्रहणदर्शननिषेधः किं पुनरयमिति तात्पर्यार्थः। अत एव भागवते कुरुक्षेत्रे स्नानार्थं मिलितानां पांडवीयलोकानां मध्ये धृतराष्ट्रोऽपि परिगणित इति शिष्टाचारोऽप्येवमेवास्ति। एवं च सत्यरिष्टजनकत्वाभावेऽपि ग्रहणदर्शननिषेधः किं पुनररिष्टजनकत्वे। तस्माज्जन्मसप्तांकेति पद्यं निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम्। किं च प्रत्यक्षोपलब्धवसिष्ठमत्स्यपुराणादिवाक्ये दर्शनपदाभावाच्च। अत एव मूले परे इति पदं प्रयुक्तं। शांतिस्तु दर्शनाभावेऽपि विधेया। यतोऽरिष्टयोगानां स्वरूपसतामेवारिष्टजनकत्वात्। अथ ग्रहणशांतिः। येषां तु विषमस्थाने राहुश्चंद्रमुपक्रमेत्। कर्मक्षयपरिक्लेशान् प्राप्नुवंति च ते जनाः॥ पितृपक्षविनाशाय सूर्यस्थाने भवेद्ग्रहः। होरायां गृह्यते यस्य नक्षत्रे वा निशाकरः॥ प्राणसंदेहमाप्नोति अ-

Aho ! Shrutgyanam

थवा रणमृच्छति । यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे ग्रहणे शशिभास्करे ॥ तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शांतिवर्जिताः ॥ संक्रम इनस्य येषां जन्म त्रितयेऽथवा ग्रहणम् । बहुरोगमृत्युजननोक्तदानाहुतयो जपाश्च कर्तव्याः ॥ तस्माद्दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा । उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छांतिर्भविष्यति ॥ नक्षत्रदानं यथा । रूपं विधाय भुजगस्य तु कांचनेन पिष्टेन वा हिमकरे दिवसाधिपे च । ग्रस्ते त्रिजन्मदिवसे तमसा प्रदद्याद्विप्राय वेदविदुषे सुपरीक्षिताय ॥ यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसंभवः । तत्र स्नानं प्रवक्ष्यामि मंत्रौषधिसमन्वितम् ॥ चंद्रोपरागं संप्राप्य कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् । संपूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुंभानग्रतः सागरानिव ॥ गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात् । राजद्वारप्रवेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥ पंचगव्यं च कुंभेषु शुद्धमुक्ताफलानि च । रोचनं पद्मकं शंखं पंचरत्नसमन्वितम् ॥ स्फटिकं चंदनं श्वेतं तीर्थवारि च पल्लवान् । गजदंतं कुंकुमं च सर्षपोशीरगुग्गुलून् ॥ तत्सर्वं निक्षिपेत्पूर्वं कुंभेष्वावाहयेत्सुरान् । सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ आयांतु मम शांत्यर्थं दुरितक्षयकारकाः । तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसंयुतम् ॥ एवं कृत्वा प्रयत्नेन स्नानकर्म समारभेत् । आमंत्र्य नवभिर्मंत्रैः कुंभान्संकल्पपूर्वकम् ॥ योऽसौ वज्रधरो देवो ह्यादित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चंद्रोपरागसंभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु ॥ यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ॥ यमश्चंद्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ निर्ऋतिः कौणपो देवः प्रलयानलसन्निभः । खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षः पीडां व्यपोहतु ॥ नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः । सजलाधिपतिश्चंद्रग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः । वायुश्चंद्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः । चंद्रोपरागकलुषं धनक्षेत्रे व्यपोहतु ॥ योऽसाविंदुयुतो देवो भवानीपतिरीश्वरः । चंद्रोपरागजां पीडां स नाशयतु शंकरः ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णवर्कयुक्तानि तानि पापं दहंतु मे ॥ * च ततो मंत्रान्विलिख्य कान्वितान् । वस्त्रे पट्टेऽथवा भूर्जे पंचरत्नसमन्वितान् ॥ यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः । ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुमानिनीम् ॥ प्राङ्मुखं पूजयित्वा ते नत्वा चाभीष्टदेवते । चंद्रग्रहे विनिवृत्ते कृतशौचात्ममंगलः ॥ कृतस्नानश्च तत्सर्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् ॥ न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बंधुधनक्षयः । सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मंत्रेषु कीर्तयेत् ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि वा नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वत्र सुखवान् भवेदिति ॥ इति मत्स्यपुराणोक्ता ग्रहणशांतिः ॥ अथौषधीभिर्ग्रहणशांतिः ॥ रोचनं पद्मकं शंखं कुंकुमं रक्तचंदनम् । शुक्तिस्फटिकतीर्थाब्रुसितसर्षपगुग्गुलून् ॥ मधुकं देवदारुं च

११

Aho ! Shrutgyanam

विष्णुक्रांतां शतावरीम् । एलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च ॥ दूर्वांकुरोशीरशमीशिलाजित्सर्वार्थसर्वौषधिपंचमृद्भिः । स्नानं विदध्याद्ग्रहणे रवींद्वोः पीडाकरं शांतिवहं च यस्येति॥६॥

अथ चंद्रबले विशेषमनुष्टुप्छंदसाह—

पापांतः पापयुग्द्यूने पापाच्चंद्रः शुभोऽप्यसन् ॥
शुभांशे वाधिमित्रांशे गुरुदृष्टोऽशुभोऽपि सन् ॥ ७ ॥

पापांत इति ॥ शुभफलदोऽपि चंद्रः पापांतः पापद्वयमध्यवर्ती पापयुक् पापग्रहयुक्तः पापात् द्यूने सप्तमे वर्तमानस्तदा शुभोऽपि असन् अशुभ एव । यदा त्वशुभोऽपि चंद्रः शुभांशे शुभग्रहनवांशे अथवाधिमित्रनवांशे तथा गुरुणा दृष्टः सन् शुभफलदाता भवेत् ॥७॥

अन्यदप्यनुष्टुभाह—

सितासितादौ सद्दुष्टे चंद्रे पक्षौ शुभावुभौ ॥
व्यत्यासे चाशुभौ प्रोक्तौ संकटेऽब्जबलं त्विदम् ॥ ८ ॥

सितेति ॥ शुक्लपक्षादौ प्रतिपदि समीचीनचंद्रे सति संपूर्णः शुक्लः शुभः । असितादौ कृष्णपक्षप्रतिपदि दुष्टे चंद्रे सति संपूर्णः कृष्णः शुभः । व्यत्यासे च पूर्वोक्तादर्थाद्वैपरीत्ये द्वावपि पक्षावनिष्टौ । यदाशुक्लप्रतिपदि चंद्रो दुष्टश्चेत्तदा सकलपक्षोऽनिष्टः । कृष्णप्रतिपदि चंद्रः शुभश्चेत्तदा संपूर्णः कृष्णपक्षोऽनिष्टः । इदमेतावत् अब्जबलं चंद्रबलं संकटे विवाहयात्रादौ अवश्यकर्तव्ये तात्कालिकचंद्रबलाभावे च ग्राह्यम् नान्यथेत्यर्थः ॥ ८ ॥

अथ ग्रहदौष्ट्यपरिहारपूर्वकं तुष्टिसंपादनार्थं नवरत्नसमुदायधारणं शालिन्याह—

वज्रं शुक्रेऽब्जे सुमुक्ताप्रवालं भौमेऽगौ गोमेदमार्कौ सुनीलम् ॥
केतौ वैदूर्यं गुरौ पुष्पकं ज्ञे पाचिः प्राङ्माणिक्यमर्के तु मध्ये ॥ ९ ॥

वज्रमिति ॥ अत्र सुवर्णमुद्रिकायां नवधा भक्तायां प्रागादिक्रमेण नवरत्नानि निधेयानि । तत्र प्रागिति पंचम्यंतमव्ययम् । पंचमी चेयं ल्यब्लोपे । तेन प्रागादिदिक्षु इत्ययमर्थो जातः । तत्र शुक्रप्रीतये पूर्वस्यां दिशि वज्रं श्वेतहीरकं निधेयम् । एवं चंद्रप्रीतये सुमुक्ता शोभनमुक्ताफलमाग्नेय्याम् । भौमप्रीत्यर्थं दक्षिणस्यां प्रवालम् । अगौ राहौ नैर्ऋत्यां गोमेदम् । आर्कौ शनौ पश्चिमायां शोभनं नीलम् । केतौ वायव्यां वैदूर्यम् । गुरौ उत्तरस्यां पुष्पकं पुष्पराजम् । बुधे ईशान्यां पाचिः । मध्ये मध्यमकोष्ठे अर्कप्रीत्यै माणिक्यं निधेयम् ॥ ९ ॥

अथ सति सामर्थ्ये नवरत्नसमुदायधारणमुक्तं इदानीमसति सामर्थ्ये यद्ग्रहकृतदौष्ट्यं तद्ग्रहरत्नधारणमिंद्रवज्रयाह—

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम् ॥

Aho ! Shrutgyanam

गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम् ॥ १० ॥

माणिक्येति ॥ सूर्यप्रीत्यर्थं माणिक्यं धार्यम् । एवं चंद्रस्य मुक्ताफलम् । भौमस्य विद्रुमं प्रवालम् । बुधस्य गारुत्मकं गरुडः पाचिः । गुरोः पुष्पकं पुष्पराजः । शुक्रस्य वज्रं हीरकः । शनेर्नीलं लहसुणिया । राहोर्गोमेदम् । केतोर्वैदूर्यमित्येवमर्कतोऽर्कादीनां ग्रहाणां रत्नानि धार्याणि स्युः । तत्र यद्ग्रहकृतदौष्ट्यं तस्य ग्रहस्य तुष्ट्यै तद्रत्नमेव धार्यमित्यर्थः । अथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णमित्यग्रिमश्लोकेन संबंधः ॥ १० ॥

अथ महामूल्यरत्नधारणस्यासामर्थ्येऽल्पमूल्यानि रत्नानि ताराबलं च शालिन्याह–

धार्यं लाजावर्तकं राहुकेत्वो रौप्यं शुक्रेंद्वोश्च मुक्ता गुरोस्तु ॥
लोहं मंदस्यारभान्वोः प्रवालं ताराजन्मर्क्षात्त्रिरावृत्तितः स्यात् ११

धार्यमिति ॥ अथो ज्ञस्य बुधस्य मुदे संतोषार्थं सुवर्णं यथाशक्ति धार्यम् । राहुकेत्वोस्तुष्ट्यै लाजावर्तकं मणिविशेषो धार्यः । शुक्रेंद्वोस्तुष्ट्यै रूप्यम् । गुरोस्तुष्ट्यै मुक्ताफलम् । शनेस्तुष्ट्यै लोहम् । आरभान्वोस्तुष्ट्यै प्रवालं धार्यम् । तारेति । यद्दिने ताराबलं चिकीर्षितं तद्दिने या तारा सा जन्मनक्षत्रात् त्रिरावृत्तितः पुनःपुनरावृत्तित्रयेण गणनीया स्यात् । त्रिरिति सुजंतमव्ययम् । जन्मनक्षत्राद्दिननक्षत्रे गणिते नवभिर्भक्ते तिस्र आवृत्तयो भवंति । अवशिष्टतारायाः शुभमशुभं च व्याख्यातमिति फलितोऽर्थः ॥ ११ ॥

अथ शेषक्रमेण सकलास्तारासंज्ञा अनुष्टुभाह–

जन्माख्यसंपद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः ॥
वधमैत्रातिमैत्राः स्युस्तारा नामसदृक्फलाः ॥ १२ ॥

जन्माख्येति ॥ स्पष्टोऽर्थः ॥ १२ ॥

अथा वश्यकृत्ये दुष्टताराणां प्रकारद्वयेन परिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

मृत्यौ स्वर्णतिलान्विपद्यपि गुडं शाकं त्रिजन्मस्वथो
दद्यात्प्रत्यरितारकासु लवणं सर्वो विपत्प्रत्यरिः ॥
मृत्युश्चादिमपर्यये न शुभदोऽथैषां द्वितीयेंऽशका-
नादिप्रांत्यतृतीयका अथ शुभाः सर्वे तृतीये स्मृताः ॥ १३ ॥

मृत्यौ स्वर्णतिलानिति ॥ मृत्यौ वधतारायां स्वर्णतिलान् यथाशक्ति ब्राह्मणाय दद्यात् । विपदि विपत्तारायां गुडमिक्षुविकारं दद्यात् । त्रिजन्मसु तिसृषु जन्मतारासु शाकं वृंताकादि दद्यात् । अथो प्रत्यरितारकासु पंचमतारायां लवणं दद्यात् । नारदः । जन्मत्रिपंचसप्ताख्यां तारानिष्टफला स्मृता । शाकं गुडं च लवणं सतिलान् कांचनं क्रमात् ॥ अनिष्टपरिहाराय दद्याद्दानं द्विजातय इति । अथ द्वितीयः परिहारः । तत्रादिमपर्यये प्र-

Aho ! Shrutgyanam

थमावृत्तौ विपत्प्रत्यरिर्मृत्युश्च तृतीयपंचमीसप्तम्यस्ताराः सर्वा अपि सामान्यतः षष्टिघटिकात्मिका न शुभदाः स्युः। अथ द्वितीये पर्यये द्वितीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिमृत्यूनां आदिप्रांत्यतृतीयका अंशा न शुभदाः । विपत्तारायामाद्यांशः प्रथमचरणो निषिद्धः । प्रत्यरितारायां प्रांत्योंऽशश्चतुर्थचरणस्त्याज्यः । मृत्युतारायां तृतीयोंऽशस्तृतीयचरणस्त्याज्य इति । अथ तृतीयावृत्तौ विपत्प्रत्यरिर्मृत्युश्चैते सर्वे षष्टिघटिकात्मिका अपि शुभाः । उक्तं च दीपिकायाम् । पर्याये प्रथमे वर्ज्या विपत्प्रत्यरिनैधना इति ॥ १३ ॥

अथ चंद्रावस्थागणनोपायमनुष्टुभाह—

षष्टिघ्नं गतभं भुक्तघटीयुक्तं युगा४हतम् ॥
शराब्धिहृल्लब्धतोऽर्कशेषेऽवस्थाः क्रियाद्विधोः ॥ १४ ॥

षष्टिघ्नमिति ॥ अश्विनीमारभ्य गतभानि षष्ट्या गुण्यानि । वर्तमाननक्षत्रभुक्तघटीयुतानि तानि पुनर्युगैश्चतुर्भिराहतानि शराब्धि ४५ हृत् पंचचत्वारिंशता भाज्यानि यल्लब्धमागतं गतावस्थास्ताः शेषं वर्तमानावस्थायाः । तत्र लब्धांकस्यापि द्वादशाधिक्ये द्वादशभिर्भागशेषं प्रवासाद्यवस्थाश्चंद्रस्य गताः स्युः । ता अवस्था मेषराशेः पुंसः प्रवासादिसंज्ञाः । वृषराशेर्नष्टादिसंज्ञाः । एवं मिथुनादिदशराशिषु मृतादिसंज्ञा ह्यवस्थाः क्रमेण भवंतीत्यर्थः॥ १४ ॥

अथ द्वादशावस्थानामानि सफलान्याह—

प्रवासनाशौ मरणं जयश्च हास्यारतिः क्रीडितसुप्तभक्ताः ॥
ज्वराख्यकंपस्थिरता अवस्था मेषात्क्रमान्नामसदृक्फलाः स्युः॥१५॥

प्रवासनाशाविति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ १५ ॥

अथ ग्रहाणां वैकृतपरिहारार्थं सौषधजलस्नानं दक्षिणाश्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

लाजाकुष्ठबलाप्रियंगुघनसिद्धार्थैर्निशादारुभिः
पुंखालोध्रयुतैर्जलैर्निगदितं स्नानं ग्रहोत्थाघहृत् ॥
धेनुः कंब्वरुणौ वृषश्च कनकं पीतांबरं घोटकः
श्वेतो गौरसितामहासिरज इत्येता रवेर्दक्षिणाः ॥ १६ ॥

लाजाकुष्ठेति ॥ लाजा भ्रष्टशालय इति केचित् । वस्तुतस्तु औषधीसाहचर्याल्लाजाशब्देन लज्जावती गृह्यते । कुष्ठं प्रसिद्धम् । बला वरिया प्रियंगुः फलिनी घनो मुस्तः सिद्धार्थाः सर्षपाः निशा हरिद्रा दारुः देवदारुः पुंखा शरपुंखा लोध्रं प्रसिद्धं एतैरौषधैर्युतैर्जलैः स्नानं ग्रहोत्थाघहृत् दुष्टग्रहसूचितारिष्टनाशकं स्यात् । सप्रियंगुरजनीद्वयमांसीकुष्ठलाजति-

---

१ राळे.

Aho ! Shrutgyanam

लसर्षपखंडैः । वारिभिः सहवचैः सह लोध्रैः स्नानमत्ति निखिलग्रहपीडामित्युक्तेः । अथ रवेः रविमारभ्य दक्षिणा उच्यंते । सूर्याय धेनुः चंद्राय कंबुः शंखः । शंखः स्यात्कंबुरस्त्रियामित्यमरः । भौमायारुणो वृषः । बुधाय सुवर्णम् । गुरवे पीतांबरं तच्च यथाविभवं कार्पासं कोशजं वा । शुक्राय श्वेतो घोटकः । शनेः श्यामवर्णा गौः । राहवे महासिर्महामूल्यः खड्गः । केतवे छागो मेषः । एताः दक्षिणाः ॥ १६ ॥

अथ ग्रहाः गंतव्यराशेः प्राक् कियद्भिर्दिनैः फलं दद्युरित्येतदुपजात्याह—

सूर्यारसौम्यास्फुजितोक्षनागसप्ताद्रिघस्रान् विधुरग्निनाडीः ॥
तमो यमेज्यास्त्रिरसाश्विमासान् गंतव्यराशेः फलदाः पुरस्तात् १७

सूर्यारेति ॥ सूर्यादयो ग्रहाः जिगमिषितराशेः पुरस्तात्पूर्वं तत्तत्संख्यघटीदिवसमासान् शुभाशुभफलदाः स्युः । यथा सूर्यो गंतव्यराशेः प्राक् पंच दिनानि फलप्रदः भौमोऽष्ट दिवसान् बुधः सप्त दिवसान् शुक्रोऽपि सप्त दिवसान् चंद्राऽग्निनाडीर्नाडीत्रयं राहुर्गंतव्यराशेः पूर्वं त्रिमासान् शनिः षण्मासान् गुरुर्मासद्वयम् पूर्वं फलद इत्यर्थः ॥ १७ ॥

अथावश्यकृत्ये दुष्टे तिथ्यादौ दानं शालिन्याह—

दुष्टे योगे हेम चंद्रे च शंखं धान्यं तिथ्यर्धे तिथौ तंडुलांश्च ॥
वारे रत्नं भे च गां हेम नाड्यां दद्यात्सिंधूत्थं च तारासु राजा १८

दुष्टे योग इति ॥ राजा दुष्टे व्यतीपातादियोगे तथा नाड्यां घटिकायां दुर्मुहूर्तादिदुष्टायां सुवर्णं यथाशक्ति दद्यात् । एवं सर्वत्र शेषं स्पष्टम् ॥ १८ ॥

अथ वसंततिलकयान्यदाह—

राश्यादिगौ रविकुजौ फलदौ सितेज्यौ
मध्ये सदा शशिसुतश्चरमेऽब्जमंदौ ॥
अध्वान्नवह्निभयसन्मतिवस्त्रसौख्य-
दुःखानि मासि जनिभे रविवासरादौ ॥ १९ ॥

इति चतुर्थं गोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥

राश्यादीति ॥ पूर्वार्धं स्पष्टम् । अध्वान्नेति । यस्मिन्मासे स्वजन्मनक्षत्रप्रवेशे सूर्यादिवाराश्चेत्स्युस्तस्मिन्मासेऽध्वादीनि फलानि वाच्यानि । यत्र मासि रविवारे जन्मनक्षत्रे सति अध्वा मार्गो भवति एवं चंद्रवारे अन्नं भक्ष्यप्राप्तिरित्यादि ॥ १९ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैव० प्रमिताक्षरायां चतुर्थं गोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ संस्कारप्रकरणं व्याख्यायते ॥ तत्र संस्क्रियतेऽनेन श्रौतस्मार्तेन वा कर्मणा पुरुष इति संस्कारः । स्वीयस्वीयजातौ सामान्यविशेषविहितवैदिकस्मार्तकर्मानुष्ठानद्वारा दृष्टवि-

Aho ! Shrutgyanam

शेषाधायक इति यावत् । लक्षणया तदर्थोक्तदिनशुद्ध्यादि संस्कारशब्देनोच्यते । तस्य प्रकरणमुपक्रमः । ते च संस्कारा गर्भाधानादयोऽष्टचत्वारिंशत् । तत्र गर्भाधानं प्रथमसंस्कारः । स च रजस्वलात्वाधीनः । ततो रजोदर्शनाच्छुभाशुभफलमुक्तं वसिष्ठेन । प्रथमरजोदर्शनतः शुभाशुभं भवति सर्वलोकानामिति । तत्र शुभसूचकरजोदर्शनमनुष्टुभाह–

अथ संस्कारप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

आद्यं रजः शुभं माघमार्गराधेषफाल्गुने ॥
ज्येष्ठश्रावणयोः शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा ॥ १ ॥

आद्यमिति ॥ राधो वैशाखः । इष आश्विनः । अन्ये प्रसिद्धाः । एषु मासेषु आद्यं रजः प्रथमोद्भवं रजोदर्शनं स्त्रीधर्मः शुभं भविष्यच्छुभसूचकम् । तथा शुक्ले शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे तु दशमीपर्यंतं मध्यमं ज्ञेयम् । कृष्णपक्षस्य दशमी मध्यमं फलमादिशेदिति । यावदिति शेषः । सद्वारे सतां चंद्रबुधगुरुशुक्राणां वारे सत्तनौ समीचीनलग्ने शुभस्वामिकलग्ने दिवा दिवसे आद्यं रजोदर्शनं शुभमित्यर्थः । अत्राशुभफलापवादमाह वसिष्ठः । अशुभमपि समस्तं चार्तवं संप्रभूतं सुरगुरुसितयुक्ते वीक्षिते वाथ लग्ने । तिमिरमिव कठोरज्योतिरुत्पत्तिकाले क्षयमथ समुपैति प्राप्नुयादीप्सितानि ॥ कठोरज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

अथात्र शुभमध्याशुभनक्षत्राण्यनुष्टुभाह–

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौ सितांबरे ॥
मध्यं च मूलादितिभे पितृमिश्रे परेष्वसत् ॥ २ ॥

श्रुतित्रयेति ॥ श्रवणत्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातीनक्षत्रेषु सितांबरे श्वेतवस्त्रे चाद्यं रजः शुभमिति पूर्वेण संबंधः । मूले दितिभं पुनर्वसुः पितरो मघा मिश्रे कृत्तिकाविशाखे एतेषु नक्षत्रेषु मध्यमम् । परेषु भरणीज्येष्ठार्द्राश्लेषापूर्वात्रयेषु असत् अनिष्टम् । अत्र विशाखामूलयोर्मध्यमत्वाभिधानं वासिष्ठवाक्ये दुष्टफलश्रवणात् । द्विदैवभं पुष्पवती प्रमत्ता कृत्यैव मोघामयवैरिसंघा । मूले प्रकामाधिकहीनसत्वा स्यात्सर्वभक्षोद्धतदोषचित्तेति ॥ २ ॥

अथ निंद्यरजोदर्शनं शालिन्याह–

भद्रा निद्रा संक्रमे दर्शरिक्ता संध्याषष्ठी द्वादशीवैधृतेषु ॥
रोगेऽष्टम्यां चंद्रसूर्योपरागे पाते चाद्यं नो रजोदर्शनं सत् ॥ ३ ॥

भद्रेति ॥ भद्रा प्रसिद्धा । निद्रा निद्रावस्थायाम् । संध्या प्रातर्मध्याह्नसायंसंध्या । उपरागे ग्रहणे । पाते व्यतीपाते महापाते च शेषं स्पष्टम् । आद्यं रजोदर्शनं नो सत् अनिष्टफलमित्यर्थः ॥ ३ ॥

अथ रजस्वलास्नानमुहूर्तं वसंततिलकयाह–

Aho ! Shrutgyanam

हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यैः
शक्रान्वितैः शुभतिथौ शुभवासरे च ॥
स्नायादृथार्तववती मृगपौष्णवायु
हस्ताश्विधातृभिररं लभते च गर्भम् ॥ ४ ॥

हस्तानिलेति ॥ एषु एकादश नक्षत्रेषु शुभतिथौ रिक्तामारहिततिथौ शुभवारे चंद्रबुधगुरुशुक्रवारे । आर्तववती ऋतुमती स्त्री स्नायात् । अथ विशेषमाह । मृगेति । मृगरेवतीस्वातीहस्ताश्विनीरोहिणीनक्षत्रैः स्नाता ऋतुमती अरं शीघ्रं गर्भं लभते । लघुक्षिप्रमरं द्रुतमित्यमरोक्तेः । दाक्षिणात्यास्तु चतुर्थदिवस एव स्नानं कुर्वंति । अन्ये विहितदिने कुर्वंति तत्र देशाचारतो व्यवस्थेति ॥ ४ ॥

अथ गर्भाधानं शार्दूलविक्रीडितशालिनीभ्यामाह—

गंडांतं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलांतकं
दास्रं पौष्णमघोपरागदिवसान् पातं तथा वैधृतिम् ।
पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यार्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ॥ ५ ॥

गंडांतमिति ॥ अत्र स्वपत्नीगमे गर्भाधाने एतान् दोषांस्त्यजेदिति संबंधः । एतान्कान् त्रिविधं तिथिनक्षत्रलग्नानां गंडांतं । श्रीपतिः । नक्षत्रतिथिलग्नानां गंडांतं त्रिविधं स्मृतम् । नवपंचचतुर्थीनां द्व्येकार्धघटिकामितामिति । निधनजन्मर्क्षे निधनतारां जन्मतारां च मूलं अंतकं भरणीं दास्रमश्विनीं पौष्णं रेवतीं मघां उपरागदिवसं ग्रहणदिनं पातं व्यतीपातं महापातं च वैधृतिं पित्रोः मातापित्रोः श्राद्धदिनं दिवा दिवसे परिघयोगस्याद्यार्धं उत्पातहतानि दिव्यभौमांतरिक्षैस्त्रिविधोत्पातैर्हतानि दूषितानि भानि जन्मर्क्षतः जन्मराशेर्जन्मलग्नाद्वा मृत्युभवनमष्टमलग्नं पापयुतं भं नक्षत्रं लग्नं वा ॥ ५ ॥

भद्रा षष्ठी पर्वरिक्ताश्च संध्या भौमार्कार्की नाद्यरात्रीश्चतस्रः ॥
गर्भाधानं त्र्युत्तरेंद्वर्कमैत्रब्रह्मस्वातीविष्णुवस्वंबुपे सत् ॥ ६ ॥

भद्रा षष्ठीति ॥ पर्वाणि विष्णुपुराणे । चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेंद्र रविसंक्रांतिरेव चेति । स्कांदे तु । कृष्णाष्टमीचतुर्दश्यौ पूर्णिमा दर्शसंक्रम इति । संध्याद्वयं भौमसूर्यशनिवारान् आद्यरात्रीः रजोदर्शनमारभ्य दिनचतुष्टयं त्यजेत् । कालविधाने । षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा । शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशांकार्यसितेंदुजानामिति । गर्भाधानमिति । त्र्युत्तराः इंदुर्मृगः अर्को हस्तः मैत्रमनुराधा रोहिणी स्वाती श्रवणधनिष्ठाशततारकासु गर्भाधानं सत् शुभम् । गुरुः ।

Aho ! Shrutgyanam

हरिहस्तानुराधाश्च स्वाती वारुणवासवम् । उत्तरात्रितयं सौम्यं रोहिणी च शुभाः स्मृताः ॥ आधाने मूलसार्पांत्यमशुभं सममन्यभमिति ॥ ६ ॥

अथ गर्भाधाने लग्नमिंद्रवज्रयाह—

केंद्रत्रिकोणेषु शुभैश्च पापैस्त्र्यायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्ने ॥
ओजांशगेऽब्जेऽपि च युग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विषु मध्यमं स्यात्॥७

केंद्रेति ॥ शुभैः केंद्रत्रिकोणेषु सद्भिः पापग्रहैस्त्र्यायारिगैः सद्भिः पुंग्रहैः रविभौमगुरुभिर्दृष्टे लग्ने सति तथाऽब्जे चंद्रे ओजांशगे विषमराशीनां नवांशगे सति अपिशब्दाल्लग्नेऽपि विषमांशगे युग्मरात्रौ समरात्रौ गर्भाधानं कार्यम् । मध्यमभान्याह । चित्रादितीज्याश्विषु तद्गर्भाधानं मध्यमं स्यात् । गुरुः । चित्रादित्ये तथातिष्यतुरगौ चेति मध्यमाः । शेषाण्यृक्षाणि दुष्टानि स्युर्निषेकाख्यकर्मणीति । एवं गर्भाधानं विधाय पुंसा किं कार्यमित्याह । विष्णुः । निद्रासमयमासाद्य तांबूलं वदनात्त्यजेत् । पर्यंकात्प्रमदां भालात्पुंड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ॥ इति गर्भाधानम् ॥ ७ ॥

अथ सीमंतोन्नयनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रध्नभै
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे ॥
सीमंतोऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केंद्रत्रिकोणे खलै-
र्लाभारित्रिषु वा ध्रुवांत्यसदृहे लग्ने च पुंभांशके ॥ ८ ॥

जीवार्केति ॥ गुरुरविभौमवारे निर्ऋतिर्मूलं ब्रध्नभं हस्तः एतैर्नक्षत्रैः रिक्ता ४, ९, १४ अमा ३० अर्को १२ रसाः ६ अष्ट अष्टमी आभिर्वर्ज्यातिथिभिः उपलक्षिते दिने मासाधिपे पीवरे पुष्टे सतीत्यर्थः । एतादृशसमये अष्टमषष्ठमासि अष्टममासे षष्ठमासे वा सीमंतः सीमंतकर्माख्यो गर्भसंस्कारः कार्यः । तत्र शुभग्रहैः केंद्रत्रिकोणे सद्भिः खलैः पापैः लाभारित्रिषु सद्भिः पुंभांशके लग्ने पुरुषराशौ विषमराशौ लग्ने नवांशे च विषमराशौ सति तदा सीमंतः शुभः । अत्र विशेषमाह कश्यपः । चंद्रोऽपि शुभदो ज्ञेयस्त्यक्त्वा षष्ठाष्टमव्ययान् । सीमंतलग्नादेकोऽपि क्रूरः पंचाष्टरिःफगः ॥ हंति सीमंतिनीं सोऽपि तद्गर्भं वा न संशयः । न नैधने तयोर्लग्ने नैधने शुद्धिसंयुते ॥ तयोः स्त्रीपुंसयोः । अस्यापवादः । लग्नादष्टमराशीशः केंद्रगः शुभवीक्षितः । यद्यप्यष्टमभस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति । गर्गः । सीमंतोन्नयनं कार्यं शुभांशे शुभलग्नगे । कुलीरमृरकन्याश्च वर्ज्याः शेषाश्च शोभना इति । अत्र ग्रहबले सति कुलीरमिथुनकन्या अपि ग्राह्या इति ज्ञेयम् । अतएव मूले लग्नविचारो न कृतः । कारिकायाम् । पुन्नक्षत्राणि चैतानि तिष्यो हस्तः पुनर्वसुः । अभिजित्प्रोष्ठपाच्चैव

Aho ! Shrutgyanam

अनुराधाश्वियुक् तथा । ऋक्षस्य मध्यमे पादे द्वये सीमंत इष्यते इत्युक्तम् । अथ मतांतरं वा ध्रुवांत्यसदहे ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयम् अंत्यं रेवती एषु तथा सतां शुभग्रहाणां चंद्रज्ञ-गुरुशुक्राणां वारे वा कार्यम् । गुरुः । रोहिण्यैंदवमादित्यं पुष्यहस्तोत्तरात्रयम् । पौष्णं वैष्ण-वभं चैव सीमंतादिषु संमतमिति ॥ श्रीधरः । सौम्यानां वारवर्गाः स्युः सीमंतादिषु शोभना इति । जन्मभं सीमंते निषिद्धमाह वसिष्ठः । बालान्नभुक्तौ व्रतबंधने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम् । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमंतयात्रादिषु मंगलेषु । गुरुः । मासप्रयुक्तका-र्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । न दोषकृन्मलो मासो गुर्वादित्यादिकं तथा ॥ यद्यपि पुंसवनस्य प्रथमकर्तव्यत्वात्तस्य पूर्वं निरूपणमावश्यकं तथापि क्वचित् सीमंतेन सहैव विधानात् बहुषु देशेषु तथैवाचारदर्शनात् सीमंतमुहूर्त एव प्रथममुक्तः । नृसिंहः । सीमंतोन्नयनस्योक्ततिथि-वारभराशिषु । पुंसवं कारयेद्विद्वान्सहैवैकदिनेऽथवेति ॥ ८ ॥

अथ मासेश्वरान् स्त्रीणां चंद्रबलं च वसंततिलकयाह—

मासेश्वराः सितकुजेज्यरवींदुसौरि-
चंद्रात्मजास्तनुपचंद्रदिवाकराः स्युः ॥
स्त्रीणां विधोर्बलमुशंति विवाहगर्भ-
संस्कारयोरितरकर्मसु भर्तुरेव ॥ ९ ॥

मासेश्वरा इति ॥ अष्टममासतनुपः आधानलग्नाधिपः स्त्रीणामिति विवाहे गर्भसं-स्कारे गर्भाधानपुंसवनसीमंतादिरूपे स्त्रीणामपि चंद्रबलं ग्राह्यम् । इतरकर्मसु वस्त्रालंकारा-दिधारणादिषु भर्तुरेव चंद्रबलं ग्राह्यम् । यदा भर्ता मृतस्तदा पुनः स्त्रीणामेव । राजमार्तंडः । विवाहकार्ये कुसुमप्रतिष्ठागर्भप्रतिष्ठावनिताविशुद्धौ । अन्यानि कार्याणि धवस्य शुद्धौ पत्यौ विहीने प्रमदात्मशुद्ध्या ॥ ९ ॥

अथ येषां पृथगेव पुंसवनमित्याचारस्तदर्थं पुंसवनमुहूर्तं विष्णुपूजामुहूर्तं चेंद्रवज्रयाह—

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा ॥
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे ॥ १० ॥

पूर्वोदितैरिति ॥ पूर्वोदितैः सीमंतकर्मण्युदितैस्तिथ्यादिभिरुपलक्षिते तृतीये मासि पुंसवनाख्यं कर्म विधेयम् । पुमान् सूयतेऽनेन कर्मणेति पुंसवनं कर्मणा पुंस्त्वहेतुना । अ-थेति । सीमंतानंतरमष्टमे मासि विष्णुविधातृजीवैः श्रवणरोहिणीपुष्यैरुपलक्षितदिने तथा लग्ने शुभे शुभस्वामिके शुभयुते दृष्टे वा मृत्युगृहे अष्टमस्थाने शुद्धे सर्वग्रहरहिते च सति विष्णुपूजा कार्या ॥ १० ॥

अथ जातकर्मनामकरणयोर्मुहूर्तमुपजात्याह—

Aho ! Shrutgyanam

**तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि ॥
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुवाक्षिप्रचरोडुषु स्यात् ॥ ११ ॥**

तज्जातकर्मादीति ॥ जातकर्म यद्यपि जन्मनोऽनंतरमेव विहितं तथापि संक्रांतिव्यतीपातादिदुष्टदिवसतया पित्राद्यसन्निधाने च तन्न कृतं तदा मुहूर्तविचारेण कार्यम् । गर्गः । व्यतीपाते च संक्रांतौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं कर्म प्राप्तकालेऽपि नाचरेदिति ॥ अत एव कालविकल्प उक्तो नारदेन । तस्मिन् जन्ममुहूर्ते तु सूतकांते तथा शिशोः । जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकमिति ॥ अत एव जातकर्मादीनि शिशोर्जातकर्म आदिशब्दान्नामकर्मोच्यते । पर्वाणि चतुर्दश्यष्टमीकृष्णेत्यादिपूर्वोक्तानि तैः रिक्ताभिश्च ऊनतिथौ वर्जिततिथौ शुभेऽह्नि शुभवारे तथा एकादशे द्वादशे वा घस्रे दिवसे तथा मृदुध्रुवक्षिप्रचरनक्षत्रेषु तदतिक्रांतं जातकर्मादि विधेयं कर्तव्यं स्यात् । तच्च श्रवणानंतरं सचैलं स्नानं कृत्वा कार्यम् । वसिष्ठः । श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके ॥ तच्च शीतोदकेन । कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताभिः काम्यमेव चेति । रात्रावपि कार्यम् । वसिष्ठः । पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशीति ॥ सूतके तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥ रात्रौ जलाशये गमनाशक्तौ सांख्यायनः । दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसन्निधाविति ॥ जातकर्मप्रयोजनमाह गुरुः । जातकर्मक्रियां कुर्यात्पुत्रायुःश्रीविवृद्धये । ग्रहदोषविनाशाय सूतकाशुभविच्छिदे ॥ कुमारग्रहनाशाय पुंसां सत्वविवृद्धय इति ॥ वसिष्ठः । एकादशेऽह्नि विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे । वैश्यानां षोडशे नाम मासांते शूद्रजन्मन इति । वसिष्ठेन मासनामान्युक्तानि । चैत्रादिमासनामानि वैकुंठोऽथ जनार्दनः । उपेंद्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्त्रिविक्रमः ॥ योगीशः पुंडरीकाक्षः कृष्णोऽनंतो ऽच्युतस्तथा । चक्रधारीति चैतानि क्रमादाहुर्मनीषिण इति ॥ ११ ॥

अथ सूतिकास्नानमुहूर्तं वसंततिलकयाह—

**पौष्णध्रुवेंदुकरवातहयेषु सूती-
स्नानं समित्रभरवीज्यकुजेषु शस्तम् ॥
नार्द्रात्रयश्रुतिमघांतकमिश्रमूल-
त्वाष्ट्रे ज्ञसौरिवसुषड्विरिक्ततिथ्याम् ॥ १२ ॥**

पौष्णेति ॥ हयोऽश्विनी एषु रेवत्यादिनक्षत्रेषु समित्रभरवीज्यकुजेषु अनुराधानक्षत्रसूर्यगुरुभौमवारसहितेषु सूत्याः प्रसूतायाः स्त्रियाः स्नानं शस्तम् । आर्द्रात्रयश्रवणमघाभरणीमिश्रमूलचित्रासु न शस्तम् । बुधवारे शनिवारे वसुरष्टमी षट् षष्ठी रविर्द्वादशी

Aho ! Shrutgyanam

रिक्ताश्चासु तिथिषु च न शस्तम् । स्तन्यपानमुहूर्ते दैवज्ञवल्लभे । रिक्तां भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं सवैधृतिम् । मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु स्तनपानं हितं शिशोरिति ॥ १२ ॥

अथ प्रसंगात्प्रथमादिमासोत्पन्नदंतफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मासे चेत्प्रथमे भवेत्सदशनो बालो विनश्येत्स्वयं
हन्यात्सक्रमतोऽनुजातभगिनीमात्रग्रजान् द्व्यादिके ॥
षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां लक्ष्मीं
सौख्यमथो जनौ सदशनो वोर्ध्वं स्वपित्रादिहा ॥ १३ ॥

मासे चेदिति ॥ बालश्चेज्जन्मानंतरं प्रथमे मासे सदशनो दंतयुक्तो भवेत् । तदा स्वयं बालो नश्येत् । ततो द्व्यादिके द्वितीयादिमासे अनुजातभगिनीमात्रग्रजान् क्रमाद्धंति । द्वितीये मासि यदि दंतोत्पत्तिस्तदाऽनुजातं कनिष्ठभ्रातरं हंति । एवं तृतीये भगिनीं चतुर्थे मातरं पंचमे ज्येष्ठभ्रातरं षष्ठादिमासेषु अतुलं भोगं लभते सप्तमे तातात् पितुः सुखम् अष्टमे पुष्टताम् नवमे लक्ष्मीम् दशमे सौख्यम् अग्रेऽपि सुखाधिक्यमेव । अथो इति । अथो जनौ जन्मकाल एव सदशनः दंतयुक्तः स्वपित्रादिहा स्वमात्मानं पितरं च आदिशब्दान्मातरमपि नाशयतीति स्वपित्रादिहा । वोर्ध्वमिति । वा अथवा ऊर्ध्वं ऊर्ध्वपंक्तौ जन्मानंतरमविहिते निषिद्धेऽपि वा काले सदनशनश्चेत्स्यात् तदापि स्वपित्रादिहा आत्मपितृमातृनाशक इति । उक्तं च विष्णुधर्मोत्तरे । उपरि प्रथमं यस्य जायंते च शिशोर्द्विजाः । तैर्वा सह च यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ मातरं पितरं चाथ स्वदेहात्मानमेव चेति । तत्रैव शांतिरपि । गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्नापयेद्विजः । तदभावे तु धर्मज्ञ कांचने तु वरासने ॥ सर्वौषधैः सर्वगंधैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा । पंचगव्येन रत्नैश्च मृत्तिकाभिश्च भार्गव ॥ स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनंतरम् । सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् ॥ अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा । कांचनं रजतं गाश्च भुवं वासनमेव चेति ॥ १३ ॥

अथ दोलाचक्रमनुष्टुभाह—

दोलारोहेऽर्कभात्पंच शरपंचेषु सप्तभैः ॥
नैरुज्यं मरणं कार्श्यं व्याधिः सौख्यं क्रमाच्छिशोः ॥ १४ ॥

दोलेति ॥ तत्र बालस्य दोलायां रोहे दोलायां स्थापने अर्कभात् सूर्याक्रांतनक्षत्रात् पंच नक्षत्रैर्नैरुज्यं नीरोगता । तदग्रिमपंचनक्षत्रैर्मरणम् । तदग्रिमपंचनक्षत्रैर्देहे कार्श्यं कृशत्वं स्यात् । तदग्रिमैरिषुभिः पंचनक्षत्रैर्व्याधिः रोगः । ततः सप्त नक्षत्रैः सौख्यम् । शिशोरेवेदं फलं संस्कार्यत्वात् । उक्तं च । सूर्यभाच्चंद्रभं यावत् पंचपंच चतुर्दिशम् । मध्ये तु सप्त देयानि दोलिकाचक्र उत्तमे ॥ पूर्वभागे निरोगत्वं दक्षिणे मरणं ध्रुवम् । पश्चिमे तु कृशो बाल उत्तरे व्याधिसंभवः । शेषेषु सप्त धिष्ण्येषु बालकः शयने सुखी ॥ १४ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ दोलारोहणमुहूर्तं वसंततिलकापूर्वार्धेनोत्तरार्धेन निष्क्रमणमुहूर्तं चाह–

दंतार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे स्या-
द्वारे शुभे मृदुलघुध्रुवभैः शिशूनाम् ॥
दोलाधिरूढिरथ निष्क्रमणं चतुर्थ-
मासे गमोक्तसमयेऽर्कमितेऽह्नि वा स्यात् ॥ १५ ॥

दंतार्केति ॥ दंता द्वात्रिंशत् अर्का द्वादश भूपाः षोडश धृतयोऽष्टादश दिशो दश एतन्मितदिवसे तथा शुभवारे मृदुलघुध्रुवनक्षत्रैरुपलक्षिते बालानां दोलाधिरूढिः दोलायामधिरूढिरारोहः स्यात् अथ चतुर्थमासे गमोक्तसमये यात्राप्रकरणोक्तसमीचीनकाले शिशूनां निष्क्रमणाख्यसंस्कारपूर्वकं गृहाद्बहिर्गमनं स्यात् । वा अथवा अर्कमितेऽह्नि द्वादशदिवसे कुर्यात् । गृहान्निष्क्रमणं सूनोश्चतुर्थे मासि कारयेत् । यात्रोक्ते समये मासि तृतीये द्वादशेऽह्नि वेति गुरुवचनात् ॥ १५ ॥

अथ जलपूजामुहूर्तं भुजंगप्रयातेनाह–

कवीज्यास्तचैत्राधिमासे न पौषे जलं पूजयेत्सूतिकामासपूर्तौ ॥
बुधेंद्वीज्यवारे विरिक्ते तिथौ हि श्रुतीज्यादितीद्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः॥१६॥

कवीज्यास्तेति ॥ शुक्रगुर्वोरस्ते चैत्रे अधिमासे पौषे माससमाप्तौ सूतिका प्रसूता स्त्री जलं न पूजयेत् । एतद्व्यतिरिक्तकाले तथा बुधचंद्रगुरुवारे रिक्तावर्जिततिथौ हि निश्चितं श्रवणपुष्यपुनर्वसुमृगहस्तमूलानुराधा एभिर्नक्षत्रैः सहिते दिने जलं पूजयेत् । अथ क्वचिद्दुग्धपानमुहूर्तः । एकत्रिंशे वासरे वा द्वितीये जन्मर्क्षे वा शुद्धलग्नेऽनुकूले । शंखे क्षीरं सन्निदध्याच्छिशूनां वक्रे धात्री पूज्यपूजां विधाय ॥ १६ ॥

अथान्नप्राशनं स्रग्धरयाह–

रिक्तानंदाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्
लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च ॥
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पंचमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात्स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत् १७

रिक्तानंदेति ॥ अथो निष्क्रमणानंतरमेवंविधे काले बालकानामन्नप्राशनं सत् शुभं स्यात् । तत्रैते वर्ज्याः । रिक्तानंदाष्टदर्शाः ४, ९, १४, १, ६, ११, ८, ३० हरिदिवसं द्वादशी एतास्तिथीर्हित्वा उपलक्षणत्वात्तिथिक्षयं च हित्वा शनिभौमरविवारांश्च हित्वा जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं लग्नं च हित्वा जन्मराशिजन्मलग्ने ताभ्यामष्टमगृहं अष्टमलवोऽष्टमनवांशस्तौ गच्छति प्राप्नोत्येवंविधं लग्नं त्यजेदित्यर्थः । जन्मराशिविलग्नाभ्यां नैधनेंऽशे च वर्ज-

Aho ! Shrutgyanam

येदिति कश्यपोक्तेः । तथा मीनमेषालिकं च । अलिर्वृश्चिकः एतानि लग्नानि हित्वा । गोश्वकुंभतुलाकन्यासिंहकर्कनृयुग्मृगाः । शुभदा राशयश्चैते न मेषझषवृश्चिका इति कश्यपोक्तेः । षष्ठादिति षष्ठमासमारभ्य सप्तमासे षष्ठाष्टमदशमद्वादशमासेषु बालानामन्नप्राशनं कार्यम् । पुंबालविषयमेतत् । अथानंतरं हि निश्चयेन मृगदृशां कन्यानां पंचमादोजमासे पंचमसप्तमनवमैकादशेषु अन्नप्राशनं सत् । तथा च वसिष्ठः । युग्मेषु मासेषु च षष्ठमासात्संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम् । अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसंप्राशनमिष्टमेतादिति । अत्रानेककालाभिधानेऽपि स्वगृह्योक्तकालो मुख्यस्तत्र शुक्रास्तादिविचारो नास्ति । इतरेषु गौणकालेषु शुक्रास्तविचार आवश्यक एवेति नक्षत्रैरिति मृदुलघुचरसहितैः स्थिरनक्षत्रैः कुर्यात् ॥१७॥

लग्नबलं वसंततिलकयाह—

केंद्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे
लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदंति पापैः ॥
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं
मैत्रांबुपानिलजनुर्भमसच्च केचित् ॥ १८ ॥

केंद्रत्रिकोण इति ॥ लग्ने खशुद्धे दशमे शुद्धिसहिते सर्वग्रहरहिते दशमे इत्यर्थः । केंद्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः सद्भिः त्रिलाभरिपुगैः पापैरसद्भिः लग्नाष्टषष्ठस्थानरहितं चंद्रं च अन्नप्राशने प्रशस्तं वदंति । नारदः । दशमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके । शुक्लपक्षे च पूर्वाह्णे सौम्ययुक्तनिरीक्षिते ॥ त्रिषष्ठलाभगैः पापैः केंद्रधीधर्मगैः शुभैः । व्ययत्यारिनिधनस्थेन चंद्रेण प्राशनं शुभम् ॥ विशेषमाह गुरुः । शुक्रारज्ञाः क्रमाद्याताः सप्तमाष्टमधर्मगाः । भोज्यभोक्तुर्नवत्वे तु सर्वदा मरणप्रदा इति । भोज्यमन्नं गोधूमादि तस्य नवत्वेन भक्षणीयत्वे सति भोक्तुरन्नप्राशनकर्तुर्बालस्य नवत्वे सति वा शुक्रः सप्तमः भौमोऽष्टमः बुधो नवमः एते ग्रहाः मरणप्रदा इत्यर्थः । मैत्रेति । अनुराधाशततारकास्वातीजन्मनक्षत्राणि केचित् असद्वदंति । श्रीपतिना अनुक्तत्वादिति भावः । जन्मनक्षत्रनिषेधो गुरुणोक्तः । जन्मर्क्षे कर्मनक्षत्रे आधानर्क्षे च वर्जयेत् । कर्णवेधं तथा मानं क्षुरकर्मान्नभोजनमिति ॥ तत्रान्नस्य भोजनमन्नभोजनमिति व्युत्पत्त्या वार्षिकनवान्नभोजनविषयमेतत् न पुनर्बालान्नप्राशनपरम् । तत्र नारदेनातिप्राशस्त्याभिधानात् । तथा च नारदः । पट्टबंधनचौलान्नप्राशने चोपनायने । शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणीति ॥ १८ ॥

अथ ग्रहाणां स्थानवशात्फलान्यनुष्टुब्द्वयेनाह—

क्षीणेंदुपूर्णचंद्रेज्यज्ञभौमार्कार्किभार्गवैः ॥
त्रिकोणव्ययकेंद्राष्टस्थितैरुक्तं फलं ग्रहैः ॥ १९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

भिक्षाशी यज्ञकृद्दीर्घजीवी ज्ञानी च पित्तरुक् ॥
कुष्ठी चान्नक्लेशवातव्याधिमान् भोगभागिति ॥ २० ॥

क्षीणेंद्विति । भिक्षाशीति ॥ त्रिकोणे ९, ५ व्ययं १२ केंद्राणि दशमरहितानि १, ४, ७ अष्टौ ८ एषु स्थितैः क्षीणेंद्वादिभिः अष्टभिर्भिक्षाशीत्यादिकं फलं यथासंख्येनोक्तं मुनिभिरिति शेषः । यथा एषु स्थानेषु स्थितः क्षीणचंद्रश्चेत्तदान्नप्राशनकृत् बालो भिक्षाशी दरिद्रः स्यात् । पूर्णचंद्रश्चेत्तदा ज्योतिष्टोमादियज्ञकृत् गुरुश्चेद्दीर्घजीवी बुधश्चेत् ज्ञानी भौमश्चेत् पित्तरुक् पित्तकृता रुगस्यासौ पित्तरुक् अर्कश्चेत्कुष्ठी आर्किः शनिश्चेदन्नाभावसंबंधी क्लेशोऽन्नक्लेशः वातप्रधानो व्याधिर्वातव्याधिः एतौ विद्येते यस्य सोऽन्नक्लेशवातव्याधिमान् स्यात् राहुकेत्वोरप्येतदेव फलम् । शुक्रश्चेद्भोगभाक् स्यात् । क्षीणचंद्रपूर्णचंद्रयोर्लक्षणमाह वसिष्ठः । संपूर्णेंदूभयाष्टम्योर्मध्येंदुः पूर्णसंज्ञकः । विनष्टेंदूभयाष्टम्योर्मध्येऽसौ क्षीणसंज्ञक इति ॥ १९ ॥ २० ॥

अथभूम्युपवेशनं वसंततिलकयाह—

पृथ्वीं वराहमभिपूज्य कुजे विशुद्धे
रिक्ते तिथौ व्रजति पंचममासि बालम् ॥
बध्वा शुभेऽह्नि कटिसूत्रमथ ध्रुवेंदु-
ज्येष्ठर्क्षमैत्रलघुभैरुपवेशयेत्कौ ॥ २१ ॥

पृथ्वीमिति ॥ कुजे विशुद्धे भौमबले सति रिक्तावर्जिते तिथौ पंचममासि व्रजति लग्ने सति शुभेऽह्नि शुभग्रहवारे तथा ध्रुवमृगे ज्येष्ठानुराधालघुनक्षत्रैरुपलक्षिते काले कटिसूत्रं पट्टसूत्रादिनिर्मितं कटिस्थले बध्वा कौ पृथिव्यां बालमुपवेशयत् मंत्रपाठपुरःसरं उपवेशनाख्यं संस्कारं कुर्यात् । मंत्राश्च पद्मपुराणे । रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे । आयुःप्रमाणसकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये ॥ अचिरादायुषस्तस्य ये केचित्परिपंथिनः । जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् ॥ धारिण्यशेषभूतानां मातस्त्वमधिका ह्यसि । कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥ तस्योपवेशनं कृत्वा भूमौ ब्राह्मणभोजनम् । ततः कृत्वा ततः कुर्यादुत्सवं पूर्ववद्द्विज इति । उत्सवो नीराजनादिः इदं कन्यापुत्रयोः साधारणम् । विशेषाभावात् ॥ इति भूम्युपवेशनम् ॥ २१ ॥

अथ जीविकापरीक्षां भूम्युपवेशनकाल एव शालिन्याह—

तस्मिन्काले स्थापयेत्तत्पुरस्ताद्वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीं च ॥
स्वर्णं रौप्यं यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवैस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥२२॥

तस्मिन्काल इति ॥ स्पष्टार्थम् आजीवैर्जीविकाभिः । आजीवो जीविका वार्ता इत्यभिधानात् ॥ २२ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ शिशोस्तांबूलभक्षणमुहूर्तं स्रग्धरयाह–

वारे भौमार्किहीने ध्रुवमृदुलघुभैर्विष्णुमूलादितींद्र-
स्वातीवस्वभ्युपेतैर्मिथुनमृगसुताकुंभगोमीनलग्ने ॥
सौम्यैः केंद्रत्रिकोणैरशुभगगनगैः शत्रुलाभत्रिसंस्थै-
स्तांबूलं सार्धमासद्वयमितसमये प्रोक्तमन्नाशने वा ॥ २३ ॥

वारे भौमार्किहीने इति ॥ भौमशनिवर्जिते वारे श्रवणमूलपुनर्वसुज्येष्ठास्वातीधनिष्ठासहितैः ध्रुवमृदुलघुनक्षत्रैरुपलक्षिते काले मिथुनमकरकन्याकुंभवृषमीनानामन्यतमे लग्ने सौम्यग्रहैः केंद्रत्रिकोणगतैः अशुभगगनगैः पापग्रहैः षष्ठैकादशतृतीयगैः सार्धमासद्वये समये बालकस्य तांबूलदानं प्रोक्तम् । वा अथवा अन्नाशने अन्नप्राशनसमये प्रोक्तम् ॥ २३ ॥

अथ कर्णवेधमुहूर्तं स्रग्धरयाह–

हित्वैतांश्चैत्रपोषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभिः संमिते मास्यथो वा ॥
जन्माहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेंदुवारेऽथो-
जाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः ॥ २४ ॥

हित्वैतानिति ॥ एतान् पदार्थान् हित्वा कर्णवेधः प्रशस्त इत्यन्वयः । हरिशयनं आषाढशुक्लैकादशीमारभ्य कार्तिकशुद्धैकादशीपर्यंतम् । जन्ममासं यस्मिन् चांद्रमासे चैत्रादौ जन्म स जन्ममासः । केचित् । आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत् । जन्ममासः स विज्ञेयो वर्जितः सर्वकर्मसु इति लक्षणलक्षितं वर्जयंति । रिक्ताम् ४, ९, १४ युग्माब्दं समवर्षं द्वितीयचतुर्थादिकम् । जन्मतारां प्रथमदशमैकोनविंशात्मिकां च हित्वा । ऋत्विति ऋतुमुनिवसुभिः संमिते मासि षष्ठसप्तमाष्टममासेषु अथो वा जन्माहात्सूर्यैः द्वादशभिः भूपैः षोडशभिः परिगणिते दिवसे सौरसावने बुधगुरुशुक्रचंद्रवारे ओजाब्दे विषमवर्षे विष्णुयुग्मं श्रवणधनिष्ठे पुनर्वसुर्मृदूनि मृगरेवतीचित्रानुराधाः लघूनि हस्ताश्विपुष्याभिजित एतैर्नक्षत्रैः कर्णवेधः प्रशस्तः ॥ २४ ॥

अथ कर्णवेधे लग्नशुद्धिं प्रहर्षिण्याह–

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेंद्रत्र्यायस्थैः शुभखचरैः कवीज्यलग्ने ॥
पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थैर्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात् २५

संशुद्ध इति ॥ मृतिभवनेऽष्टमस्थाने संशुद्धे सर्वग्रहरहिते सति शुभग्रहैः त्रिकोणकेंद्रत्र्याय ९, ५, १, ४, ७, १०, ३, ११ स्थैः सद्भिः कवीज्यलग्ने शुक्रगुर्वोर्लग्ने वृषतु-

Aho ! Shrutgyanam

लाधनुर्मीनाख्ये पापाख्यैर्ग्रहैः तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थैः गुरौ लग्नस्थे सति कर्णवेधः शुभावहः शुभजनकः स्यात् । अथाब्दपूर्तिमूहूर्तः प्रसंगात् विधिरत्ने । अब्देन सौरेण शिशोः समाते बालं सुसंस्नाप्य च जन्मधिष्ण्ये । कृत्वायुषो वृद्धिकरं च कर्म तं धारयेद्दस्रसुवर्णसूत्रम् ॥ अत्र खंडनक्षत्रे निर्णयमाह । वृद्धगर्गः । उदयव्यापि जन्मर्क्षं तस्माद्ग्राह्यं तु जन्मतः । संगवव्यापि खंडर्क्षे तत्र जन्मकरं शुभम् ॥ दाक्षिणात्यास्तु जन्ममासीयजन्मतिथावब्दपूर्तिं कुर्वंतीति ॥ २९ ॥

अथ चूडाकर्ममुहूर्तं विवक्षुस्तन्निषेधकं प्रसंगतोऽन्यकर्मनिषेधकं च कालं स्रग्धरयाह–

गीर्वाणांबुप्रतिष्ठापरिणयदहनाधानगेहप्रवेशाश्चौलं
राजाभिषेको व्रतमपि शुभदं नैव याम्यायने स्यात् ॥
नो वा बाल्यास्तवार्धे सुरगुरुसितयोर्नैव केतूदये स्या-
त्पक्षं वार्धं च केचिज्जहति तमपरे यावदीक्षां तदुग्रे ॥ २६ ॥

गीर्वाणेति ॥ गीर्वाणाः देवाः अंबु जलं जलाशयः तयोः प्रतिष्ठा उत्सर्गः परिणयो विवाहः दहनाधानमग्न्याधानम् । गेहप्रवेशो गृहप्रवेशः चौलराजाभिषेकौ प्रसिद्धौ व्रतमुपनयनं इदं सर्वं याम्यायने दक्षिणायने शुभदं न स्यात् । तथा गुरुशुक्रयोर्बाल्ये अस्ते वार्धक्ये च पूर्वोक्तं न शुभदं स्यात् । अथ केतूदये धूमकेतोरुदयेऽपि पूर्वोक्तं न शुभं स्यात् । चंडेश्वरः । केतोरस्तदिनादूर्ध्वं सप्ताहं मंगलं त्यजेत् । यावत्केतूदयस्तावदशुद्धः समयो हि सः ॥ अत्र केचित्केतूदये जाते सति पक्षं पंचदश दिनानि जहति वर्जयंति । वराहः । दृष्टः षोडशवासरान्न शुभदः कैश्चित्प्रदिष्टः शिखीति । केचित्तु पक्षांतरे अर्धं पक्षार्धं सप्त दिनानि केतूदयानंतरं जहति इदमपि तत्रैव ।केतूदये सप्तदिनानि चोर्ध्वं विहाय यात्रादिषु गर्हितानि । दिनानि शेषाणि शुभानि नूनं वदंति रैभ्यप्रमुखा मुनींद्राः ॥ तमिति । अपरे आचार्याः तं केतुं यावदीक्षां यावद्दर्शनं यज्जहति तदुग्रे केतौ द्वित्रिचूडे तामसकीलकादावतिदुष्टफलं द्रष्टव्यम् । तेषां लक्षणमाह गर्गः । त्रिशिखाश्च त्रिताराश्च रक्तलोहितरश्मयः । प्रायशस्तूत्तरामाशां सेवंते नित्यमेव हीति । यत्तु यावद्दर्शनं केतूदये निषिद्धमित्युक्तं तदुग्रे ब्रह्मपुत्राख्ये केतौ ज्ञेयम् । ज्योतिर्निबंधे । केतोरस्तदिनादूर्ध्वं सप्त रात्राणि वर्जयेत् । ब्रह्मपुत्रोद्गमे वर्ज्यं व्रतयात्रा च मंगलम् ॥ तल्लक्षणमाह वराहः । ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगांतकरः । अनियतदिक्संप्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदंडाख्य इति ॥ २६ ॥

अथ शुक्रगुर्वोर्बाल्यवार्धक्ययोर्दिनसंख्यामनुष्टुभाह–

पुरः पश्चाद्भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्धकम् ॥
पक्षं पंचदिनं ते द्वे गुरोः पक्षमुदाहृते ॥ २७ ॥

Aho ! Shrutgyanam

पुरः पश्चादिति ॥ भृगोः शुक्रस्य पुरः पूर्वस्यां दिश्युदितस्य पश्चिमदिश्युदितस्य च यथासंख्यं त्रिदशाहं बालत्वं स्यात् । पूर्वस्यां त्रिदिनं पश्चाद्दशदिनमित्यर्थः । च पुनः भृगोर्वार्धकं पूर्वस्यामस्ते पक्षं पंचदश दिनानि पश्चादस्ते पंच दिनानि। गुरोस्ते द्वे बाल्यवार्धके पक्षं पंचदश दिनानि उदाहृते कथिते ॥ २७ ॥

अथापरमतेन बाल्यवार्धकं चानुष्टुभाह—

ते दशाहं द्वयोः प्रोक्ते कैश्चित्सप्तदिनं परैः ॥
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्धाहं च त्र्यहं विधोः ॥ २८ ॥

ते दशाहमिति ॥ दिङ्नियमं त्यक्त्वा द्वयोर्गुरुशुक्रयोः ते बाल्यवार्धके दशाहं दशदिनं प्रोक्ते कैश्चित् । अपरैस्तु सप्तदिनं बाल्यवार्धके प्रोक्ते अन्यैस्त्र्यहं त्रिदिवसं ते बाल्यवार्धके प्रोक्ते परंतु आत्ययिके कार्यस्यावश्यंभावोऽत्ययः स प्रयोजनमस्येति आत्ययिकं तस्मिन् लग्नांतराभावे सति अतिकालस्य बटोः अवश्यदेयायाः कन्याया वा यथासंभवं दश सप्त त्रिदिनानि वर्ज्यानि नान्यथेत्यर्थः । अथ देशभेदेन वा व्यवस्था । गर्गः । शुक्रो गुरुः प्राक् परतश्च बालो विंध्ये दशावंतिषु सप्तरात्रम् । वंगेषु हूणेषु च षट् च पंच शेषे तु देशे त्रिदिनं वदंति । चंद्रस्य विशेषमाह । अर्धाहमिति । विधोस्ते बाल्यवार्धके क्रमेणार्धाहं त्र्यहं च भवतः । बाल्यमर्धदिनं वार्धकं त्रिदिनं चंद्रस्येत्यर्थः । उक्तं च वसिष्ठेन । वृद्धत्वमिंदोस्त्रिदिनं दिनार्धं बालत्वमस्तत्वमहर्द्वयं च । येनोक्तमेकं दिवसं शिशुत्वमित्येतदिंदोस्तदयुक्तमेवेति । कश्यपेन बालोऽपींदुः शुभ एवोक्तः। वृद्धचंद्रः स्त्रियं हंति पतिं हंत्यस्तमागतः। यतस्त्वमृतरश्मित्वाद्बालोऽपि शुभदः शशीति । अत एव संपूर्णायामपि शुक्लप्रतिपदि द्वितीयादिने द्वितीयायां प्रातर्यज्ञोपवीतादिकं शिष्टाः कुर्वंति ॥ २८ ॥

अथ चौलमुहूर्तं स्रग्धरारथोद्धताभ्यामाह—

चूडावर्षात्तृतीयात्प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषष्ठी-
पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेंदुशुक्रेज्यकानाम् ॥
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनौ नैधने शुद्धियुक्ते
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदुचरलघुभैरायषट्त्रिस्थपापैः ॥ २९ ॥
क्षीणचंद्रकुजसौरिभास्करैर्मृत्युशस्त्रमृतिपंगुताज्वराः ॥
स्युः क्रमेण बुधजीवभार्गवैः केंद्रगैश्च शुभमिष्टतारया ॥ ३० ॥

चूडावर्षादिति । क्षीणचंद्रेति ॥ तृतीयाद्वर्षादिति ल्यब्लोपे पंचमी। तेन गर्भाधानकालाज्जन्मकालाद्वा तृतीये वर्षे पंचमे वा चूडाकरणं प्रभवति कृतं शुभोदर्कं भवतीत्यर्थः। तृतीयेऽब्दे शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषतः । पंचमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोऽपि वा सममिति । मनुना प्रथमे वर्षेऽप्युक्तम् । चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽब्दे

Aho ! Shrutgyanam

तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनादिति । अत्र बहुकालोक्तौ यथागृह्यं व्यवस्था । स्वगृह्ये विशेषकालानुक्तौ तु समबलत्वात्सर्वेषां विकल्पः । अष्टमी अर्को द्वादशी रिक्ताः आद्या प्रतिपत् षष्ठी पर्वाणि पूर्वोक्तानि चतुर्दश्यष्टमीत्यादीनि एतैरूने रहितेऽह्नि गुरुणा गलग्रहोऽपि निषिद्धः । विद्यारंभव्रतोद्देशक्षौरं चैव विशेषतः । गलग्रहे न कर्तव्यं यदीच्छेत्पुत्रजीवितमिति । विचैत्र इति चैत्ररहिते उत्तरायणे चूडा स्यात् । शुभाशुभप्रकरणोक्तो जन्ममासनिषेधोऽत्रापि ध्येयः । तथा ज्ञेंदुशुक्रेज्यकानां वारे लग्नांशयोश्चेति । सौम्यग्रहाणां वारे सौम्यग्रहाणां लग्ने तेषामेव नवांशे चूडा स्यात् । पापग्रहाणां वारेऽपि विप्राणां तु शुभो रविः । क्षत्रियाणां तु भूसूनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभ इति प्रयोगपारिजातोक्तेः । तथा स्वभनिधनतनौ भं लग्नं राशिश्च स्वस्य भे स्वभे स्वभाभ्यां निधनं अष्टमं लग्नं तन्न विद्यते यस्मिस्तनौ स्वजन्मलग्नजन्मराशिभ्यामष्टमलग्नरहिते लग्ने चूडा स्यात् । तथा नैधने अष्टमस्थाने शुद्धियुक्ते शुक्रव्यतिरिक्तसर्वग्रहरहिते लग्ने चूडा स्यात् । अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः शुक्रविवर्जिताः । शुक्रस्तु निधने चौले सर्वसंपत्करः शिशोरिति पराशरोक्तेः । ज्येष्ठायुक्तैरनूराधारहितैर्मृदुचरलघुभैर्द्वादशनक्षत्रैरुपलक्षिते काले चूडा स्यात् । अथ लग्नबलम् एकादशषष्ठतृतीयस्थानस्थैः पापग्रहैरसद्भिः तथा क्षीणचंद्रभौमशनिसूर्यैः केंद्रगतैः क्रमेण यथासंख्यं मृत्युः शस्त्रान्मृतिः पंगुता खंजत्वम् ज्वरः एतानि फलानि स्युः बुधजीवभार्गवैस्तु केंद्रस्थैः शुभं कल्याणं स्यात् । वसिष्ठेन लग्नादिविषये विशेष उक्तः । मेषे दुःखी मृगेंद्रे च वृश्चिके व्यसनं भवेत् । राजा बौधे च धनुषि शुभयुक्ते न दुष्यति ॥ विषशस्त्रजलैर्घोरैः पीड्यते मरणान्वितः । क्षौरे मृत्युर्घटे लग्ने शुभयुक्तेऽपि सक्षतः ॥ जामित्रे भास्करे क्षौरे मृत्युः स्याद्भूमिजे तथा । शुक्रे सौख्यविनाशः स्यान्मंदभाग्यं शनैश्चरे इति । नक्षत्रेषु विशेषमाह गुरुः । हस्ताश्विविष्णुपौष्णानि श्रविष्ठादित्यपुष्यभम् । सौम्यचित्रे तथा क्षौरे उत्तमा नव तारकाः । त्रीण्युत्तराणि वायव्यं रोहिणी वारुणं तथा ॥ क्षौरे षण्मध्यमाः प्रोक्ताः शेषा द्वादश गर्हिता इति । क्षौरादिषु जन्मलग्नं शुभमाह भृगुः । कृषिः प्रयाणं क्षौरं च विवाहः प्राशनं तथा । शिरोवस्त्रं च पानं च जन्मराशौ शुभं भवेत् ॥ जन्मलग्ने शुभं क्षौरं मध्ये वर्ज्यं व्ययेऽष्टम इति । गर्गस्तु । आत्मराश्युदये षष्ठे द्वादशे निधने तथा । शत्रुक्षेत्रे च नीचे च क्षौरं नैव प्रशस्यते ॥ जन्मलग्नं सति संभवे वर्ज्यमित्यनयोर्व्यवस्था । च पुनरिष्टतारया गोचरप्रकरणोक्तया शुभफलदया तारया चूडा स्यात् । केशवमानर्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्रम् । दितिमदितिं च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणमिति ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ सगर्भायां संस्कार्यमातरि विशेषमनुष्टुभाह—

पंचमासाधिके मातुर्गर्भे चौलं शिशोर्न सत् ॥
पंचवर्षाधिकस्येष्टं गर्भिण्यामपि मातरि ॥ ३१ ॥

Aho ! Shrutgyanam

पंचमासाधिक इति ॥ संस्कार्यमातुर्गर्भे पंचमासेभ्योऽधिके सति चौलं शुभं न स्यात् पंचमासेभ्यः पूर्वं चौलं शुभमित्यर्थः । गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म च । पंचमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेदिति वसिष्ठोक्तेः । अस्यापवादमाह । पंचवर्षाधिकस्येति । उल्लंघितपंचवर्षस्य शिशोर्मातरि गर्भिण्यामपि सत्यां पंचमासादूर्ध्वमपि चौलमिष्टम् । नारदः । सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पंचमाब्दात्प्रागथोर्ध्वं गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यत इति । अत्र तु पंचवर्षाणां न्यूनाधिकभावो नापेक्षितः सर्वापवादकत्वात् ॥ ३१ ॥

अथ चौले ताराबलमावश्यकमित्युक्तं तत्र दुष्टतारापवादं शालिन्याह—

तारादौष्ट्येऽब्जे त्रिकोणोच्चगे वा क्षौरं सत्स्यात्सौम्यमित्रस्ववर्गे ॥
सौम्ये भेऽब्जे शोभने दुष्टतारा शस्ता ज्ञेया क्षौरयात्रादिकृत्ये ३२

तारादौष्ट्ये इति ॥ दुष्टतारायामपि सत्यां अब्जे चंद्रे त्रिकोणोच्चगे त्रिकोणगे उच्चगे वा सति क्षौरं सत् शुभं स्यात् । वा अथवा सौम्यमित्रस्ववर्गे सौम्यानां बुधगुरुशुक्राणां षड्वर्गे चंद्रे सति अथवा स्वस्यैव षड्वर्गे सति क्षौरं सत्स्यात् । सौम्य इति । सौम्ये भे शुभग्रहराशौ चंद्रे सति स्वस्य गोचरेण शोभने सति दुष्टतारापि क्षौरयात्रादिकृत्ये शोभना समीचीना ज्ञेया ॥ ३२ ॥

अथ विशेषमनुष्टुभाह—

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाचरेत् ॥
ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यते ॥ ३३ ॥

ऋतुमत्या इति ॥ ऋतुमत्या रजस्वलायाः तथा सूतिकाया जातापत्यायाश्च सूनोश्चौलोपनयनविवाहादिकृत्यं बालस्य बालिकायाश्च वा नाचरेन्न कुर्यात् । उक्तं च प्रचेतसा । यस्य मांगलिकं कृत्यं तस्य माता रजस्वला । तदा स मृत्युमाप्नोति पंचमं दिवसं विनेति । विवाहोत्सवकार्येषु माता चैव रजस्वला । वैधव्यं जायते तत्र नृनार्योः पाणिपीडन इति । ज्येष्ठापत्यस्याद्यगर्भसुतस्य कन्याया वा शुभकृत्यं चौलादिकं ज्येष्ठे मासि न भवति । कैश्चिदिति मार्गशीर्षेऽपि कैश्चिदाचार्यैराद्यगर्भसुतकन्ययोर्मंगलकृत्यं नेष्यते । भरद्वाजः । मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् । आद्यगर्भदुहित्रोश्च यत्नेन परिवर्जयेदिति॥३३॥

अथ सामान्यतः क्षौरमुहूर्तं तन्निषिद्धं कालं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

दंतक्षौरनखक्रियात्र विहिता चौलोदिते वारभे
पातंग्याररवीन्विहाय नवमं घस्रं च संध्यां तथा ॥
रिक्तां पर्व निशां निरासनरणग्रामप्रयाणोद्यत-
स्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहि पुनः कार्या हितप्रेप्सुभिः ॥ ३४ ॥

Aho ! Shrutgyanam

दंतक्षौरेति ॥ चौलोदिते वारे नक्षत्रे दंतक्रिया घर्षणादिका क्षौरक्रिया नखक्रिया विहिता उक्ता । निषिद्धकालमाह । पातंगीति । पतंगस्य सूर्यस्यापत्यं पातंगिः शनिः भौमरवी तेषां वारान् त्यक्त्वा नवमं घस्रं यद्दिने क्षौरं कृतं ततो नवमदिने पुनः क्षौरं न कार्यम् । तथा संध्यां प्रातःसायंकालौ विहाय तथा रिक्ताम् पर्वाणि पूर्वोक्तानि निशां रात्रिं च विहाय। अथाधिकारिणो निरूप्यंते । हितप्रेप्सुभिः स्वशुभमिच्छद्भिः एतादृशैर्हि निश्चयेन क्षौरक्रिया न कार्या । कैर्निरासनैः आसनरहितैः रणः संग्रामः ग्रामप्रयाणमर्थयात्रा एतदर्थमुद्यतैः कृतोद्योगैः स्नातैः कृतस्नानैः अभ्यक्तैः कृततैलाभ्यंगैः कृताशनैः कृतभोजनैः सुवर्णाद्यलंकारभूषितैरित्यपि ध्येयम् ॥ ३४ ॥

अथ मंजुभाषिण्याविशेषमाह—

ऋतुपाणिपीडमृतिबंधमोक्षणे क्षुरकर्म च द्विजनृपाज्ञया चरेत् ॥
शववाहतीर्थगमसिंधुमज्जनक्षुरमाचरेन्न खलु गर्भिणीपतिः ॥३५॥

ऋतुपाणिपीडेति ॥ ऋतौ यज्ञे तथा पाणिपीडो विवाहस्तत्र श्मश्रुकर्मादौ मृतौ मातापित्रोर्मरणे बंधमोक्षणे कारागृहे बद्धस्य मोक्षणे द्विजाज्ञया ब्राह्मणाज्ञया राजाज्ञया च दुष्टेऽपि वारनक्षत्रादौ क्षौरं चरेत् कुर्यात् । अन्यच्च । गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेऽहनि । आधाने सोमपाने च षट्सु क्षौरं विधीयते ॥ अन्यच्च । राजकार्यनियुक्तानां नटानां रूपजीविनाम् । श्मश्रुरोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनमिति । अथ शवेति गर्भिणी गर्भवती तस्याः भर्ता शववाहं मृतकवहनम् तीर्थगमं तीर्थयात्राम् उपलक्षणत्वाद्विदेशगमनमपि सिंधुमज्जनं समुद्रस्नानम् क्षुरं क्षुरकर्म एतानि कर्माणि नाचरेत् न कुर्यात् । उक्तं च । सिंधुस्नानं द्रुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनम् । विदेशगमनं चैव न कुर्याद्गर्भिणीपतिः ॥ राजा योगी पुरंध्री च मातापित्रोस्तु जीवतोः । मुंडनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद्गर्भिणीपतिः । नारदः । वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः । श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं नान्यत्र वेदवित् ॥ ३५ ॥

अथ राज्ञां क्षौरे विशेषं सर्वथा वर्ज्यनक्षत्राणि च भुजंगप्रयातेनाह—

नृपाणां हितं क्षौरभे श्मश्रुकर्म
दिने पंचमे पंचमेऽस्योदये वा ॥
षडग्निस्त्रिमैत्रोऽष्टकः पंचपित्र्यो-
ऽद्रतोऽब्ध्यर्यमा क्षौरकृन्मृत्युमेति ॥ ३६ ॥

नृपाणामिति ॥ नृपाणां पंचमे पंचमे दिने क्षौरनक्षत्रे श्मश्रुकर्म हितं स्यात् । पंचमे दिने यदि क्षौरनक्षत्राभावस्तदर्थमाह ।अस्योदये वेति अथवाऽस्य क्षौरभस्य उदये श्मश्रुकर्म कार्यम् उदयशब्देन तन्नक्षत्रस्य स्वामिनो मुहूर्तः । तथा च गर्गः । क्षौरकर्ममहीशानां पंचमे पंचमेऽहनि । कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेऽप्यथवा तन्मुहूर्तके इति । उत्पलेन तु वाराहप-

Aho ! Shrutgyanam

द्यव्याख्यानावसरे अस्य उदये अस्य क्षौरभस्य उदये लग्ने इति व्याख्यातम् । तथा मेषलग्नं त्रिंशद्भागात्मकं तत्राद्यास्त्रयोदश भागा विंशतिकलाधिका यावता कालेन मेषलग्ने उदयं यांति तावदश्विनीनक्षत्रमुदयं यातीति तदनंतरं तावंत एवांशा यावता कालेनोदयं यांति तावद्भरण्युदय इत्यनेन न्यायेन सर्वेषां नक्षत्राणामुदया ज्ञेयाः । भ्रातरस्तु एवं व्याकुर्वते । यस्मिन् काले अश्विन्या उदयक्षितिजसंबंधः संपद्यते तं समयमारभ्ययावद्भरण्या उदयक्षितिजसंबंधस्तदंतरे यावान्कालः सोऽश्विन्या उदय उच्यते । एवं सत्युदयलग्नद्वयांशांतरालात् गणितमार्गेण यावानिष्टकाल आगच्छेत् स एव तन्नक्षत्रोदय इति निष्कृष्टोऽर्थः । षडग्निरिति अग्निः कृत्तिका क्षौरावृत्त्या षड्वारं कृत्तिका यस्य सः एवं त्रीणि मैत्राण्यनूराधा यस्य अष्टौ का रोहिण्यो यस्य पंच पित्र्याणि मघा यस्य अब्धयश्चत्वारोऽर्यमण उत्तराफल्गुन्यो यस्य स एतादृशः क्षौरकृदब्दतो वर्षानंतरं मृत्युं मरणमेति प्राप्नोति । वसिष्ठः । अष्टाब्जऋक्षः पितृपंचकश्च षड्वह्निधिष्ण्यश्चतुरर्यमर्क्षः । त्रिमैत्रभः पद्मजसन्निभोऽपि क्षौरी नरोऽब्दान्निधनं गतः सः । इति क्षौरम् ॥ ३६ ॥

अथ प्राप्तकालत्वादक्षरारंभमुहूर्तं पंचचामरच्छंदसाह—

गणेशविष्णुवाग्रमाः प्रपूज्य पंचमाब्दके
तिथौ शिवार्कदिग्द्विषट्शरत्रिके रवावुदक् ॥
लघुश्रवोनिलांत्यभादितीशतक्षमित्रभे
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने ॥ ३७ ॥

गणेशेति ॥ गणेशविष्णू प्रसिद्धौ वाक् सरस्वती रमा लक्ष्मीः एता देवताः प्रपूज्य पंचमे वर्षे सति शिव एकादशी द्वादशी दशमी द्वितीया षष्ठी पंचमी तृतीया आसामन्यतमतिथौ रवावुदक् उत्तरायणगते सति तथा लघुनक्षत्राणि हस्ताश्विपुष्याः श्रवणस्वातिरेवतीपुनर्वसुः ईश आर्द्रा तक्षा चित्राः मित्रमनुराधा एषामन्यतमनक्षत्रे सति तथा सतां सोमज्ञगुरुशुक्राणां दिने दिवसे तथा चरराशयो मेषकर्कतुलामकरास्तद्रहितशुभस्वामिके वृषमिथुनकन्याधनुर्मीनानामन्यतमे लग्ने सति शिशोर्लिपिग्रहो नूतनाक्षरालेखनप्रारंभः कार्यः ३७

अथ विद्यारंभमुहूर्तं पंचचामरेणाह—

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये
गुरुद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके ॥
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रुवांत्यमित्रभे परैः
शुभैरधीतिरुत्तमा त्रिकोणकेंद्रगैः स्मृता ॥ ३८ ॥

मृगादिति ॥ मृगात्रये मृगार्द्रापुनर्वसुषु हस्तात्रये हस्तचित्रास्वातीषु श्रुतेः श्रवणात्रये श्रवणधनिष्ठाशतभेषु अश्विन्यां मूले पूर्वात्रये गुरुद्वये पुष्याश्लेषयोः तथा सूर्यगु-

Aho ! Shrutgyanam

रुबुधशुक्राणां दिने तथा षष्ठीपंचम्यादितिथिषु शुभैः केंद्रत्रिकोणगैः सद्भिः अधीतिः शुभा स्मृता अधीतिरध्ययनम् । परैः ध्रुवांत्यमित्रभे अधीतिः शुभा प्रोक्ता । इदं वचनं धनुर्विद्याविषयमिति दीपिकोक्तेः विद्यारंभे श्रवणत्रयोपादानं महेश्वरादिमतात् । वसिष्ठादिभिः श्रवणस्य केवलस्योक्तत्वात् । इति विद्यारंभः ॥ ३८ ॥

अथ व्रतबंध इति विंशतिपद्यैः प्रोच्यते इति शेषः । तस्य त्रिविधोऽपि कालो नित्यः काम्यो गौणश्च क्रमेण तं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

विप्राणां व्रतबंधनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे
वर्षे वाप्यथ पंचमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे ॥
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद्द्वादशे वत्सरे
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ॥ ३९ ॥

विप्राणामिति ॥ गर्भदिनमारभ्याष्टमे सौरे वर्षेऽथवा जनेरुत्पत्तिदिनात्सौरवर्षेऽष्टमे सति विप्राणां व्रतबंधनं नित्यं गदितम् । अथ काम्यम् । विप्राणामेव गर्भाज्जनेर्वा पंचमे वर्षे कार्यम् । एवं क्षितिभुजां क्षत्रियाणां गर्भाज्जनेर्वा षष्ठे वर्षे काम्यम् । गर्भाज्जनेर्वा एकादशे सौरवर्षे नित्यं वैश्यानां पुनस्तथैवाष्टमे काम्यम् । तथैव गर्भाज्जनेर्वा द्वादशे नित्यम् । नारदः । आधानादष्टमे वर्षे गर्भतो वाग्रजन्मनाम् । राज्ञामेकादशे मौंजीबंधनं द्वादशे विशामिति । अत्र फलाश्रवणान्नित्यमित्यवसीयते । मनुः । ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥ अत्र फलश्रवणात्काम्यता पैठीनसिना गर्भपंचमे व्रतबंधनमुक्तम् । गर्भपंचमेऽब्दे ब्राह्मणमुपनयेदिति गर्भषष्ठेऽष्टमे च क्षत्रियविशोर्ज्ञेयं गर्भादिसंख्यावर्षाणामिति स्मृतेश्च । आपस्तंबसूत्रे गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यमिति बहुत्वान्यथानुपपत्त्या गर्भषष्ठसप्तमाष्टमेष्विति वृत्तिकृद्व्याख्यानात्त्रयाणामपि नित्यकालता । एवं गर्भैकादशेष्वित्यादावपि व्याख्येयम् । एतच्च तच्छाखाध्यायिविषयं ज्ञेयम् । अथ गौणकाल उच्यते निगदिते प्रोक्ते गर्भाज्जनेर्वाष्टमे इत्यादिके काले तस्मिन् द्विगुणे गते सति तद्व्रतबंधनं गौणमाहुः । यथा ब्राह्मणस्य षोडशवर्षपर्यंतम् क्षत्रियस्य द्वाविंशतिवर्षपर्यंतम् वैश्यस्य चतुर्विंशतिवर्षपर्यंतं गौणमित्यर्थः । मनुः । आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नाभिवर्तते । आद्वाविंशाद्ब्रह्मबंधोराचतुर्विंशतोर्विशः ॥ अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या भवंत्यपि च गर्हिता इति । केशवः । स्वस्वमौंजीमुख्यकालाच्छ्रेष्ठमध्याधमाः समाः । तिस्रः केशवदैवज्ञैः प्रोक्ता मौंजीनिबंधन इति ॥ ३९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ व्रतबंधे नक्षत्रादिकं वसंततिलकयाह—

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वा-
रौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेंदुदिने व्रतं सत् ॥
द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च
कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे ॥ ४० ॥

क्षिप्रेति ॥ गीर्वाणांबुप्रतिष्ठेत्यादिना दक्षिणायननिषेधादुत्तरायणमासषट्कं प्रशस्तमिति मासानामुक्तत्वान्नक्षत्रादिकमेवोक्तम् । तत्र काश्यपः । ऋतौ वसंते विप्राणां ग्रीष्मे राज्ञां शरद्यथ । विशां मुख्यं च सर्वेषां द्विजानां चोपनायनम् ॥ साधारणं च मासेषु माघादिषु च पंचसु । क्षिप्रेति क्षिप्राणि हस्ताश्विपुष्याः ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयम् । अहिराश्लेषा चराणि श्रवणधनिष्ठाशततारापुनर्वसुस्वात्यः मूलम् मृदूनि मृगरेवतीचित्रानुराधाः तिस्रः पूर्वारौद्रमार्द्रा एषु द्वाविंशतिभेषु व्रतबंधनं सत् । उक्तं च । प्राजापत्यादिषड्ऋक्षे भगर्क्षादिषु पंचसु । मूलादिदशके चैव समैत्रे व्रतबंधनमिति ॥ अर्थाद्भरणीकृत्तिकामघाविशाखाज्येष्ठासु न कार्यमित्यर्थः । एतानि सर्वशाखानक्षत्रमेलकाभिप्रायेणोक्तानि क्वचित् ज्येष्ठाशततारापि गृहीता श्रीपतिनिबंधे । अश्विनीमृगचित्रासु हस्ते स्वात्यां च शक्रभे । पुष्ये च पूर्वाफल्गुन्यां श्रवणे पौष्णभे तथा ॥ वासवे शततारासु व्रतबंधः प्रशस्यते । भुजबलराजमार्तंडयोरपि । हस्तत्रये दैत्यरिपुत्रये च शार्क्रेंदुपुष्याश्विनिरेवतीष्विति । हस्ते शक्राश्विचित्रादितिवसुवरुणोपेंद्रपुष्येंदुपौष्णस्वातीष्वव्याहतासु स्मृतमुपनयनं भार्गवाद्यैर्मुनींद्रैरिति च । अर्केति सूर्यबुधगुरुशुक्रचंद्रदिवसेषु व्रतं सत् अर्थात् भौमशनी निषिद्धौ । नारदः । आचार्यसौम्यकाव्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः । वारौ तौ मध्यफलदावितरौ निंदितौ व्रते ॥ तत्राप्यस्तंगतबुधस्य वारो वर्ज्यः । अस्तंगतस्य सौम्यस्य वारो वर्ज्यो द्विजन्मन इति नारदोक्तेः । द्वित्रीष्विति द्वितीयातृतीयापंचम्येएकादशीद्वादशीदशमीसंज्ञासु तिथिषु च व्रतं सत्स्यात् नारदेन सप्तमीत्रयोदश्योः प्राशस्त्यमुक्तं तद्वसंताभिप्रायेणेति ज्ञेयम् । उक्तं च तेनैव । विनर्तुना वसंतेन कृष्णपक्षे गलग्रहे । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हतीति । कृष्णादिमेति विहितमासानां कृष्णपक्षस्यादिमत्रिलवके पंचमीपर्यंतं व्रतं सत् त्यक्त्वा चतुर्थीमपि कृष्णपक्षे त्वाद्ये त्रिभागे शुभदं व्रतं सदिति वसिष्ठोक्तेः । न चेति त्रिधाविभक्तदिनस्य त्रयो विभागाः क्रमेण पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णसंज्ञका भवंति तत्रापराह्णभागे व्रतं न सत् । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हतीति नारदोक्तेः । त्रिधा विभज्य दिवसं तत्रादौ कर्म दैविकम् । द्वितीये मानुषं कार्यं तृतीयेंऽशे तु पैतृकमिति नारदोक्तेः ॥ ४० ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ व्रतबंधे सामान्यतो लग्नभंगयोगं प्रमाणिकयाह—

कवीज्यचंद्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः ॥
व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः ॥ ४१ ॥

कवीज्येति ॥ रिपौ षष्ठे मृतावष्टमस्थाने चेच्छुक्रगुरुचंद्रलग्नस्वामिनो भवंति तदा अधमा मरणकारकाः । अब्जभार्गवौ चंद्रशुक्रौ व्यये अधमौ खलाः पापग्रहाः लग्नाष्टमपंचमस्थानेषु स्थिताः अधमाः ॥ ४१ ॥

अथ सामान्यतो लग्नमनुष्टुभाह—

व्रतबंधेऽष्टषड्रिःफवर्जिताः शोभनाः शुभाः ॥
त्रिषडाये खलाः पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ॥ ४२ ॥

व्रतबंध इति ॥ शुभग्रहाः अष्टमषष्ठद्वादशस्थानस्थिताश्चेत्स्युर्न शोभनाः अन्यस्थाने व्रतबंधे शोभनाः । खलाः पापाः तृतीयषष्ठैकादशस्थानेषु शोभनाः स्युः गोकर्केति पूर्णः शुक्लपक्षीयो विधुः वृषभस्थः कर्कस्थश्च तनौ यदि भवेत्तदा सन् शोभनः नान्यथा । गुरुः । चंद्रे लग्नेऽभिशस्तः स्यात्क्षयरोगी सितेतरे । शुक्लपक्षे भवेद्यज्वा स्वभे तुंगे विशेषत इति । कश्यपस्तूच्चस्थं चंद्रं सदैव न्यषेधत् । वर्धमानोऽपि वा पूर्णश्चंद्रो यदि विलग्नगः । निःस्वं करोति व्रतिनं लग्नगः क्षयरोगिणमिति । उच्चस्थसंबंधिनोः पक्षयोर्देशाचारतो व्यवस्था स्वगृहगस्तूत्तमो मतद्वये ॥ ४२ ॥

अथ वर्णेशशाखेशान् शालिन्याह—

विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ
राजन्यानामोषधीशो विशां च ॥
शूद्राणां ज्ञश्चांत्यजानां शनिः स्या-
च्छाखेशाः स्युर्जीवशुक्रारसौम्याः ॥ ४३ ॥

विप्राधीशाविति ॥ शुक्रबृहस्पती ब्राह्मणाधीशौ भौमसूर्यौ क्षत्रियाणां स्वामिनौ ओषधीशश्चंद्रो वैश्यानां स्वामी बुधः शूद्राणां स्वामी शनिरंत्यजानां चांडालानां स्वामी ऋग्वेदोऽथयजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वण इति वेदक्रमाजीवशुक्रारसौम्याः शाखेशाः स्युः ऋग्वेदस्य गुरुः यजुषः शुक्रः साम्नो भौमः अथर्वणो बुधः स्वामी ॥ ४३ ॥

वर्णेशशाखेशयोः प्रयोजनं वसंततिलकयाह—

शाखेशवारतनुवीर्यमतीव शस्तं
शाखेशसूर्यशशिजीवबले व्रतं सत् ॥
जीवे भृगौ रिपुगृहे विजिते च नीचे
स्याद्वेदशास्त्रविधिना रहितो व्रतेन ॥ ४४ ॥

Aho ! Shrutgyanam

शाखेशेति ॥ यः स्वशाखाधिपस्तस्य वारस्तनुर्लग्नं च वीर्यं बलं गोचरप्रकारेण स्वगृहाद्यवस्थितत्वेन वा बलवत्त्वं च व्रतबंधेऽतीव शस्तम् । यथा गुरुः ऋग्वेदिनामीशोऽतो गुरुवारे गुरुलग्ने धनुर्मीनाख्ये गुरुबले च सति उपनयनमतीव शुभम् । एवं सर्वत्र विज्ञेयम् । नारदः । शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः । शाखाधिपतिलग्नं च त्रितयं दुर्लभं व्रते ॥ शाखेति शाखा वेदस्तस्येशः स्वामी तुल्यन्यायत्वाद्वर्णेशोऽपि ग्राह्यः। सूर्यशशिजीवाः प्रसिद्धाः एषां बले सति व्रतं सत्स्यात् अन्यथा नेत्यर्थः । जीवे इति जीवे भृगौ चकाराच्छाखेशे वर्णेशे वा विजिते युद्धे पराजिते नीचराशिस्थे च सति व्रतेनानुष्ठितेन सता वेदशास्त्रविधिना वेदो वेदाध्ययनं शास्त्रं शास्त्राध्ययनं विधिर्नित्यनैमित्तिकश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानाख्यस्तेषां समाहारद्वंद्वस्तेन रहितो व्रती स्यात् । वसिष्ठः । शाखेशगुरुशुक्राणां मौढ्ये बाल्ये च वार्धके । नैवोपनयनं कार्यं वर्णेशे दुर्बले सतीति । तेन भौमबुधयोरस्ते सामगाथर्वणशाखिनोरुपनयनादि न भवतीति तत्त्वम् । तत्र नीचाद्यवस्थितत्वेऽपि शाखेशादेः परिहारमाह वसिष्ठः । शत्रुनीचाधिशत्रुस्थे स्वांशे वा स्वोच्चभागगे । शाखेशे वा गुरौ शुक्रे न नीचफलमश्नुत इति । शुक्रस्य शत्रुराशिस्थत्वं वृषभस्थेऽर्के कदाचित्संभवति नीचगत्वं शरदि वैश्यमुपनयेदिति वैश्योपनयने संभवतीति ध्येयम् ॥ ४४ ॥

अथ जन्ममासादेः प्रतिप्रसवमाह—

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ॥
आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ॥ ४५ ॥

जन्मर्क्षेति ॥ जन्मनक्षत्रे जन्ममासे जन्मलग्ने आदिशब्देन जन्मतिथौ विप्राणां ब्राह्मणानां आद्यगर्भेऽपि अपिशब्दात् द्वितीयगर्भादावपि व्रती बालो व्रते यज्ञोपवीते विद्याधिकः स्यात् । क्षत्रादीनां क्षत्रियवैश्यानां पुनरनादिमे द्वितीयगर्भादिबालके सति जन्मर्क्षमासलग्नादौ विद्याधिको व्रती स्यात् । आद्यगर्भे तु तेषां सर्वथा निषेध एव । शौनकः । जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मतिथौ च राशौ । व्रतेन विप्रोऽल्पपरिश्रुतोऽपि प्रज्ञाविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ॥ गर्भाष्टमे गर्गपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबंधने तु । ततोऽधिकं जन्मसु तारकासु मासेऽथवा जन्मनि वाडवानाम् ॥ वाडवानां विप्राणां द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवा इत्यभिधानात् । प्रथमदशमैकोनविंशनक्षत्राणां ग्रहणार्थं जन्मसु तारकास्वित्युक्तम् जन्ममासनिषेधस्तु आद्यगर्भविषयः क्षत्रियवैश्ययोः विप्राणां तु वाडवानामिति विशेषोक्तेराद्यगर्भानाद्यगर्भसाधारणजन्ममासे उपनयनम् अतो जन्ममासादौ शस्तमिति ज्ञेयम् ॥ ४५ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ गुरुबलमनुष्टुभाह—

बटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः ॥
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयान्यत्र निंदितः ॥ ४६ ॥

बटुकन्येति ॥ बटुरुपनयनाधिकारी तथा कन्या स्त्रीजात्यपत्यं तज्जन्मराशेर्नवमपंचमैकादशद्वितीयसप्तमस्थानस्थितो गुरुः श्रेष्ठ उत्तमः दशषट्तृतीयप्रथमस्थानस्थितो गुरुः पूजया पूजाविधानेनानुष्ठितेन श्रेष्ठः अन्यत्र चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानस्थो निंद्यो निषिद्ध इत्यर्थः । नारदः । बालस्य बलहीनोऽपि शांत्या जीवो बलप्रदः । यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्रेनोपनायनम् ॥ वसिष्ठः । उक्तेऽपि वर्षे न गुरुर्बली चेच्छांत्या प्रशस्तं व्रतबंधकर्म । अनुक्तवर्षे सुबलप्रदोऽपि नैवैतयोरब्दबलं गरीय इति । गर्गः । व्रतबंधे विवाहे च प्रतिष्ठायां विशेषतः । गोचरेणैव कर्तव्यं वेधादिकमकारणमिति । वेधस्तु । व्यये पक्षैस्त्रिगे शैलैः खगे नंदैः सुखे शरैः । रंध्रे रुद्रैर्ग्रहैर्विद्धो गुरुः शुद्धोऽशुभोऽन्यथा ॥ प्राच्यास्तु गोचरबलाभावेऽष्टकवर्गबलमाहुः । राजमार्तंडः । अष्टवर्गविशुद्धेषु गुरुशीतांशुभानुषु । व्रतोद्वाहौ तु कर्तव्यौ गोचरेण कदाचनेति । अन्यच्च । अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु । सूक्ष्माष्टवर्गसंशुद्धिस्थूला शुद्धिस्तु गोचरे । तत्र गुरोरष्टवर्गो बृहज्जातके । दिक्स्वाद्याष्टमदायबंधुषु कुजात्स्वात्सत्रिकेष्वंगिराः सूर्यात्सत्रिनवेषुधीस्वनवादिग्लाभारिगो भार्गवात् । जायायार्थनवात्मजेषु हिमगोर्मंदात्रिषड्धीव्यये दिग्धीषट्स्वसुखाय पूर्वनवगो ज्ञात्सस्मरेषूदयात् ॥ वराहः । पूजाभिलाषं प्रति निस्पृहेऽपि कुर्याद्गुरौ शुद्धिविवर्जितेऽपि । वरस्य लाभे शुभदं विवाहं वदंति गर्गच्यवनादिमुख्याः ॥ अत्र चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानस्थितत्वेन गुरोर्द्विगुणत्रिगुणादिकां पूजां विधाय विवाहव्रतबंधादिशुभमिति संप्रदायविदः ॥ ४६ ॥

अथ गुरुदौष्ट्यापवादमनुष्टुभाह—

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ॥
रिःफाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसन् ॥ ४७ ॥

स्वोच्च इति ॥ गुरुश्चतुर्थादिनिंद्यस्थानस्थितोऽपि स्वोच्चे कर्के स्वभे धनुर्मीने स्वमैत्रे मेषसिंहवृश्चिके स्वांशे धनुर्मीननवांशे वर्गोत्तमे नवांशे । यथा वृषराशौ वृषनवांशे गुरुर्वर्गोत्तम इति वर्गोत्तमलक्षणम् । वर्गोत्तमा नवांशाश्चरादिषु प्रथममध्यांता इति । एषु स्थितो गुरुरिष्टः शुभफलदाता । अन्येषु एतादृशो गुरुरतीव शुभः । भुजबलः । वर्गोत्तमे स्वभवने भवनेऽथ मैत्रे मित्रांशके स्वभवनोच्चनवांशके वा । जन्माष्टरिःफरिपुखत्रिचतुर्थगोऽपि जीवः सुखार्थसुतवृद्धिकरो विवाहे ॥ नीचेति । नीचं मकरः अरिस्थः मिथुनकन्यातुलावृषराशिस्थः शुभोऽप्यसन् अनिष्टफलदातेत्यर्थः । उक्तं च । उच्चस्थः स्वगृहे सुहृद्भवनगो वाच·

Aho ! Shrutgyanam

स्पतिर्नित्यशः पूर्णायुर्विविधार्थसौख्यजनको जन्माष्टमस्थोऽपि चेत् । नीचस्थोऽरिगृहे दिवाकरकरच्छायानुगामी सदापीष्टोऽनिष्टफलं ददाति नियतं वैधव्यदुःखास्पदम् ॥ अत्राष्टमस्थोऽपि चेदित्यपिशब्देन चाष्टमं लक्षगुणं प्रपूजयेदिति विधानात् पूजामनीहमानेऽप्युपनयनादि शुभं स्यात् द्वादशचतुर्थस्थानस्थस्य तु द्विगुणपूजामिच्छतः तथातृतीयादिस्थानस्थस्य पूजामात्रापेक्षस्य गुरोः शुभफलदातृतास्तीति किंवक्तव्यमिति कैमुतिकन्यायसूचनार्थोऽपिशब्दः । नचाष्टमं लक्षगुणं पूजयेदिति शत्रुगृहस्थितगुर्वभिप्रायम् । अस्यापवादो रत्नकोशे । गोचराष्टकवर्गाभ्यां यस्य शुद्धिर्न लभ्यते । तस्योपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ ॥ हरौ सिंहांशगे जीवे नीचर्क्षे नीचभागगे । मौंजीबंधः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥ पाठांतरम् । जन्मभादष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुगे गुराविति । अर्थाच्चैत्रे मेषगोऽर्को निषिद्धः । तथाचोक्तम् । सौम्यायने व्रतं कार्यं चैत्रे मासि विशेषतः । झषो न निंद्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निंद्यः । मध्वाश्रितौ द्वावपि वर्जनीयावित्यादिवाचामियमेव युक्तिरिति इदं गणेशदैवज्ञैरभ्यधायि तन्निर्मूलमिव प्रतिभाति मूलवाक्याभावात् ॥ ४७ ॥

अथ व्रतबंधे वर्ज्याननुष्टुभाह—

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके ॥
प्राक्संध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबंधो गलग्रहे ॥ ४८ ॥

कृष्णेति ॥ एषु व्रतबंधो नेष्टः कृष्णे प्रथमत्रिभागरहितकृष्णपक्षे प्रदोषे यस्मिन्दिने संध्याकाले प्रदोषो भवेत्तद्दिवसे प्रदोषलक्षणमर्कतर्केत्याद्यग्रे वक्ष्यति । अनध्याये वक्ष्यमाणे निशीति अंगवंगकलिंगेषु सौराष्ट्रमगधेषु च । तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हती पुनः संस्कारप्राप्तौ निमित्तानंतरमेव नैमित्तिकमिति न्यायेन यदि रात्रिसद्भावस्तदोपनयनं माभूदिति रात्रिपदोक्तिः । तथा प्राक्संध्या प्रातःसंध्या तस्यां गर्जिते मेघशब्दे । वसिष्ठः । व्रते हि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति । तद्दिनं स्यादनध्यायो व्रतं तत्र विवर्जयेदिति । अपरार्कः । क्षीणे चंद्रेऽष्टमे शुक्रे निरंशे चैव भास्करे । कर्तव्यं नोपनयनं नानध्याये गलग्रहे ॥ राशेः प्रथमभागस्थो निरंशः सूर्य उच्यते । तथा गलग्रहे । गलग्रहानाह गुरुः । त्रयोदश्यादि चत्वारि सप्तम्यादि दिनत्रयम् । चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः ॥ दैवज्ञमनोहरे । प्रदोषे निश्यनध्याये मंदे कृष्णे गलग्रहे । मधुं विनोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हतीति । गलग्रहे प्रदोषे च स्वल्पायुरुपजायत इति च ॥ ४८ ॥

अथांशफलमनुष्टुभाह—

'क्रूरो जडो भवेत्पापः पटुः षट्कर्मकृद्वटुः ॥
यज्ञार्थभाक् तथा मूर्खो रव्याद्यंशे तनौ क्रमात् ॥ ४९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

क्रूरो जड इति ॥ षट् कर्माणि यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ । अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग्द्विज इति । अन्यत् स्पष्टम् ॥ ४९ ॥

अथ चंद्रनवांशफलं स्वनवांशे सापवादं तो जौ लगुरू वद मोटनकमिति लक्षणलक्षितेन मोटनकच्छंदसाह—

विद्यानिरतः शुभराशिलवे पापांशगते हि दरिद्रतरः ॥
चंद्रे स्वलवे बहुदुःखयुतः कर्णादितिभे धनवान्स्वलवे ॥ ५० ॥

विद्यानिरत इति ॥ यस्मिन् कस्मिन् राशौ चंद्रो यदि शुभग्रहराशिनवांशे स्यात्तदा व्रती विद्यानिरतो भवेत् । यदि पापग्रहराशिनवांशे चंद्रस्तदा दरिद्रतरः धनरहितः । यदि स्वलवे कर्कांशे स्यात् तदा बहुदुःखसहितो भवेत् । अथ स्वांशगतचंद्रस्यापवादमाह । कर्णेति । कर्णे श्रवणे अदितौ पुनर्वसौ नक्षत्रे उपनयने स्वांशे चंद्रः स्यात्तदा धनवान् भवेत् । नारदः । श्रवणादितिनक्षत्रे कर्कांशस्थे निशाकरे । तदा व्रती वेदशास्त्रधनधान्यसमृद्धिमानिति ॥ ५० ॥

केंद्रस्थानां फलमनुष्टुभाह—

राजसेवी वैश्यवृत्तिः शास्त्रवृत्तिश्च पाठकः ॥
प्राज्ञोऽर्थवान् म्लेच्छसेवी केंद्रे सूर्यादिखेचरैः ॥ ५१ ॥

राजसेवीति ॥ केंद्रे सूर्यादिखेचरैः प्रत्येकं सहिते क्रमादिदं फलं ज्ञेयम् । अन्यत्स्पष्टम् । अत्र लग्नस्थं चंद्रं केंद्रस्थं शनिं च विना सर्वे ग्रहाः शुभा इत्यवगम्यते मुनिभिस्तु केंद्रपापा निषिद्धा इत्युक्तम् । यदाह नारदः । स्फूर्जितं केंद्रगे भानौ व्रतिनो वंशनाशनम् । कूजितं केंद्रगे भौमे शिष्याचार्यविनाशनम् ॥ करोति रुदितं केंद्रसंस्थे मंदे महागदम् । लग्नकेंद्रगते राहौ रंध्रं मातृविनाशनम् ॥ उग्रकेंद्रगते केतौ व्रतिवित्तविनाशनमिति । अत्र स्वगृहोच्चाद्यवस्थिताः पापाः केंद्रस्थाः शुभफलदातारः अन्यथा नेति विरुद्धार्थवचनयोर्विषयविवेकः ॥ ५१ ॥

अथान्यदाह—

शुक्रे जीवे तथा चंद्रे सूर्यभौमार्किसंयुते ॥
निर्गुणः क्रूरचेष्टः स्यान्निर्घृणः सद्युते पटुः ॥ ५२ ॥

शुक्रेति ॥ शुक्रे जीवे चंद्रे प्रत्येकं सूर्यसंयुते व्रती निर्गुणः स्यात् । भौमसंयुते क्रूरचेष्टः क्रूरा हिंसनशीला चेष्टा यस्य तादृशः स्यात् । तथा शनिसंयुते निर्घृणो निर्लज्जो निर्दयो वा स्यात् । तथा तस्मिन्नेव जीवे शुक्रे चंद्रे वा प्रत्येकं सद्भिर्युते बटुः सर्वविद्यानिपुणः स्यात् ॥ ५२ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथान्यत्प्रमाणिकयाह—

विधौ सितांशगे सिते त्रिकोणगे तनौ गुरौ ॥
समस्तवेदविद्व्रती यमांशगेऽतिनिर्घृणः ॥ ९३ ॥

विधौ सितांशगेति ॥ चंद्रे शुक्रांशगे शुक्रे त्रिकोणगे गुरौ तनौ लग्ने च सति व्रती बटुः समस्तांश्चतुरो वेदान्वेत्तीति समस्तवेदवित्स्यात् । एवं यमांशगे शनिनवांशसंस्थिते चंद्रे सति लग्ने गुरौ च सति सिते त्रिकोणगे सति अतिनिर्घृणः कृतघ्नः स्यात् । महेश्वरः । जीवे लग्नमधिष्ठिते भृगुसुते धर्मात्मजस्थे विधौ शुक्रांशेऽखिलवेदविद्रविसुतस्यांशे कृतघ्नोऽधम इति । नारदः । लग्नं सर्वगुणोपेतं लभ्यतेऽन्यदिने न सत् । दोषाल्पत्वं गुणाधिक्यं बहुसंमतमिष्यते ॥ दोषदुष्टो हि कालो यः स ग्रहीतुं न शक्यते । दोषा वेधादयो महादोषा इत्यर्थः ॥ ९३ ॥

अथानध्यायान् जघनचपलार्ययाह—

शुचिशुक्रपौषतपसां दिगश्विरुद्रार्कसंख्यसिततिथयः ॥
भूतादित्रितयाष्टमिसंक्रमणं च व्रतेष्वनध्यायाः ॥ ९४ ॥

शुचिशुक्रेति ॥ अनध्यायाः आषाढशुक्लदशमी ज्येष्ठशुक्लद्वितीया पौषशुक्लैकादशी माघशुद्धद्वादशी एते अनध्यायाः भूतश्चतुर्दशी तदादि त्रितयं चतुर्दशीपूर्णिमाप्रतिपदः कृष्णपक्षे अमावास्या तन्मध्ये अष्टमी च तयोः समाहारः तथा संक्रमणं सूर्यस्य निरयनं संक्रातिदिनम् । चकारान्मन्वाद्यास्त्रितिथी मधावित्यादिनोक्ताः । तत्राषाढशुक्लदशमी पौषशुद्धैकादशी च मन्वादी ज्येष्ठशुक्लद्वितीया माघशुद्धद्वादशी च सोपपदे यद्यपि चैत्रशुद्धतृतीया मन्वादिः वैशाखशुद्धतृतीया युगादिस्तथापि ते उभे तृतीये नानध्यायौ तथैव फाल्गुनकृष्णद्वितीया चातुर्मास्यद्वितीयापि नानध्यायः तासां प्राशस्त्याभिधानात् । तथाच वसिष्ठः । या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य । कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजवसिष्ठमुख्यैरिति । अन्यासां युगादिमन्वादीनां व्रतबंधे अप्रसंगादेव अग्रहणम् । केचिदाचार्याः या चैत्रवैशाखेति वचनं लिखित्वापि स्वेच्छया नांगीकुर्वंति तत्र शपथमात्रमेव प्रमाणं न पश्याम इत्यलं तन्मते तृतीये अनध्यायत्वेन ज्ञेये व्रतेष्विति पदमावश्यकत्वद्योतनार्थम् । गौतमः । पक्षद्वये चतुर्दश्यामष्टमीद्वितये तथा । पक्षादावपि पक्षांते ब्रह्म नाधीयते नरैः । फलं च । अष्टमी हंत्युपाध्यायं शिष्यं हंति चतुर्दशी । अमावास्योभयं हंति प्रतिपत्पाठनाशिनी । मनुः । चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु । अष्टकासु च संक्रांतौ शय्ने बोधने हरेः ॥ अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदासु चेति । चातुर्मास्यद्वितीया गर्गेणोक्ताः । आषाढफाल्गुनोर्जेषु या द्वितीया विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदंति म-

Aho ! Shrutgyanam

हर्षयः ॥ मन्वादयो युगादयश्च पूर्वमुक्ताः । सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ॥ नैमित्तिका अनध्यायास्तु स्मृत्यर्थसारे । निर्घातभूकंपोल्कानिपतनादिसर्वाद्भुतेष्वकालिकानध्यायाः । अग्न्युत्पाते वाऽकालवृष्टौ वा आर्द्रादिज्येष्ठांतात्कालादन्यत्राकालवृष्टिः सायंसंध्यागर्जने उदयांतोऽनध्यायः । अर्धरात्रादूर्ध्वं गर्जने अर्धरात्रे वाऽऽकालिकोऽनध्यायः । प्रातःसंध्यागर्जने त्वहोरात्रामिति । कालं मर्यादीकृत्येत्याकालम् । आकाले भव आकालिकः यस्मिन्काले निमित्तमुत्पन्नं तदारभ्य द्वितीयदिने तत्कालपर्यंतमित्यर्थः । स्मृतिरत्नावल्याम् । अनूराधार्क्षमारभ्य षोडशर्क्षेषु भास्करः । यावच्चरति वै तावदकालं मनुयो विदुरिति । कालवृष्टौ तु तत्कालमकाले तु त्रिरात्रकम् । अतिमात्राथवा वृष्टिर्नाधीयीत दिनत्रयम् । आपस्तंबः । उल्कायामग्न्युत्पाते च सर्वासां विधानामाकालिकमिति । मनुः । चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रामे चाग्निकारिते । आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु चेति । अद्भुतेषु रुधिरादिवृष्टिषु । वसिष्ठः । उपलरुधिरप्रपाते त्र्यहमिति । स्मृत्यंतरे । विद्युद्गर्जितवृष्टीनां सन्निपातो यदा भवेत् । कालवृष्टौ तु तत्कालमकाले तु त्रिरात्रकमित्यादि । नैमित्तिका अनध्याया यदा मेखलाबंधात्प्रागुत्पन्नास्तदा व्रतबंधो न कार्य एव। यदा तु मेखलाबंधादनंतरं ब्रह्मौदनपाकात् प्रागुत्पन्नास्तदा जातो न निवर्तते ९४

अथ प्रदोषलक्षणमनुष्टुभाह–

अर्कतर्कत्रितिथिषु प्रदोषः स्यात्तदग्रिमैः ॥
रात्र्यर्धसार्धप्रहरयाममध्यस्थितैः क्रमात् ॥ ९५ ॥

अर्केति ॥ तदग्रिमैस्तिथिभिरर्कादितिथिषु प्रदोषः स्यात् । यथा द्वादश्यामर्धरात्रात्प्राक् त्रयोदशीप्रवृत्तौ प्रदोषः । षष्ठ्यां चार्धप्रहरमध्ये सप्तमीप्रवृत्तिस्तदा प्रदोषः । तथा तृतीयायां प्रहरमध्ये चतुर्थीप्रवेशे प्रदोषः । अत्र द्वितीयप्रहरस्य चरमघटिकातृतीयप्रहरस्याद्याघटिकेत्येवं घटिकाद्वयमितः कालो रात्र्यर्धशब्दवाच्यः । तेन समांशवाचित्वाभावादर्धं नपुंसकमिति एकदेशिसमासाभावः ॥ ९५ ॥

अथव्रतबंधानंतरं सायंकाले बह्वृचां ब्रह्मौदनाख्यः संस्कारोऽभिहितस्तत्रार्यया विशेषमाह–

प्राग्ब्रह्मौदनपाकाद्व्रतबंधानंतरं यदि चेत् ॥
उत्पातानध्ययनोत्पत्तावपि शांतिपूर्वकं तत्स्यात् ॥ ९६ ॥

प्राक्ब्रह्मौदनेति ॥ स्पष्टार्थम् । उक्तं च नृसिंहप्रसादे । ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं भवेत् । तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य तत् ॥ तस्य शांतिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । स्वस्तिवाचनपूर्वं तु हवनं कारयेद्बुधः ॥ प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शांतियजौ

Aho ! Shrutgyanam

भवेत् । सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान्पठेद्विद्यासमृद्धये ॥ गायत्री युंजतो मंत्रः प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा । धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् ॥ शिलां होमविधेः पश्चात् स्थापयेत्तत्र संसदि । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेदिति ॥ ९६ ॥

अथ वेदविशेषेण नक्षत्राणि वसंततिलकयाह—

वेदक्रमाच्छशिशिवाहिकरत्रिमूल-
पूर्वासु पौष्णकरमैत्रमृगादितीज्ये ॥
ध्रौवेषु चाश्विवसुपुष्यकरोत्तरेश-
कर्णे मृगांत्यलघुमैत्रधनादितौ सत् ॥ ९७ ॥

वेदेति ॥ मृगाश्लेषार्द्राहस्तचित्रास्वातीमूलपूर्वात्रयेषु ऋग्वेदाध्यायिनां रेवतीहस्तानुराधामृगपुनर्वसुपुष्यरोहिण्युत्तरात्रयेषु यजुर्वेदाध्यायिनां अश्विनीधनिष्ठापुष्यहस्तोत्तरात्रयार्द्राश्रवणेषु सामवेदाध्यायिनां मृगरेवतीपुष्याश्विनीहस्तानुराधाधनिष्ठापुनर्वसुषु अथर्ववेदाध्यायिनां पूर्वश्लोकानुवृत्ततत्पदपरामृष्टमुपनयनं सत् शुभमित्यर्थः । उक्तं च । मूले हस्तत्रये सार्पशैवे पूर्वात्रये तथा । ऋग्वेदाध्यायिनां कार्यं मेखलाबंधनं बुधैः ॥ पुष्ये पुनर्वसौ पौष्णे हस्ते मैत्रे शशांकभे । ध्रौवेषु च प्रशस्तं स्याद्यजुषां मौंजिबंधनम् ॥ पुष्यवासवहस्ताश्विशिवकर्णोत्तरात्रयम् । प्रशस्तं मेखलाबंधे बटूनां सामगायिनाम् ॥ मृगमैत्राश्विनीहस्तरेवत्यदितिवासवम् । अथर्वपाठिनां शस्तो भगणोऽयं व्रतार्पणे ॥ ९७ ॥

अथान्यं विशेषमनुष्टुभाह—

नांदीश्राद्धोत्तरं मातुः पुष्पे लग्नांतरे न हि ॥
शांत्या चौलं व्रतं पाणिग्रहः कार्योऽन्यथा न सत् ॥ ९८ ॥

नांदीश्राद्धेति ॥ नांदीश्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तत्कृत्यानंतरं यदि संस्कार्यमातुः पुष्पे रजोदर्शने जाते सति लग्नांतरे चासति तदावश्यकर्तव्यत्वे धर्मशास्त्रोक्तां शांतिं विधाय चौलं यज्ञोपवीतं विवाहश्च कार्यः । अन्यथा समीचीनलग्नांतरसत्वे सति चौलादि न सत् दुष्टफलदमित्यर्थः । मेधातिथिः । चौले च व्रतबंधे च विवाहे यज्ञकर्मणि । पत्नी रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् । स्मृत्यंतरे । प्राप्तमभ्युदयं श्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि । पत्नी रजस्वला जाता न कुर्यात्तत्पिता तदेति । तत्पितेति नांदीश्राद्धकर्तुरुपलक्षणम् । अतो ज्येष्ठभ्रात्रादिना करिष्यमाणनांदीश्राद्धात्प्राक् तत्पत्नी रजस्वला चेत्तदा नांदीश्राद्धनिषेधान्मंगलं न कार्यमेव । संस्कार्यमातरि रजस्वलायां तु सन्निहितलग्नांतरासंभवे शांतिं कृत्वा तदानीमेव तन्मंगलं कार्यम् । आरब्धत्वान्न स्मृत्युक्तदोषः । अपशकुननिरासार्थं शांतिः कार्या । उक्तं च । वधूवरान्यतरस्य जननी चेद्रजस्वला । संपूर्णे तु बले प्राप्ते कुर्यात्तत्पा-

Aho ! Shrutgyanam

णिपीडनमिति बले ग्रहबले च । वाक्यसारे। अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते । श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो मंगलमाचरेत् ॥ हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत् । प्रत्यृचं पायसं हुत्वाभिषिच्य हितमाचरेत् । यदा तु कृतेऽपि मंगले मंडपोद्वासनात्प्राक् मातरि रजस्वलायां शांत्यादिकं कार्यमेव मंगलस्यासमाप्तत्वात् । यदा तु ज्येष्ठभ्रात्रादिना कृतान्नांदीश्राद्धात् परं तत्पत्नी रजस्वला चेत्तदा न कोऽपि दोषः । अन्योऽपि विशेषस्तत्रैव । उपवासेन शुद्ध्यंति नार्यः सद्यो रजस्वलाः । एकाकिन्यो विवाहादौ देशभंगेषु चापदीति ५८

अथ छूरिकाबंधनमुहूर्तमनुष्टुभाह—

विचैत्रव्रतमासादौ विभौमास्ते विभूमिजे ॥
छूरिकाबंधनं शस्तं नृपाणां प्राग्विवाहतः ॥ ५९ ॥

विचैत्रेति ॥ चैत्रवर्जितेषूपनयनमासेषु माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठेष्वित्यर्थः । आदिशब्देन व्रतबंधोक्ततिथिनक्षत्रजन्मलग्नादीनां ग्रहणं कीदृशे व्रतमासादौ विभौमास्ते भौमास्तरहिते गुरुशुक्रास्तादिवर्जनं सामान्यनिषेधादेव सिद्धम् । तथा विभूमिजे भौमवाररहिते सूर्यादिवारे नृपाणां क्षत्रियाणां विवाहतः पूर्वं छूरिकाया अल्पशस्त्रविशेषस्य बंधनं कट्यामिति शेषः । तच्छस्तं हितम् । विवाहात्प्रागित्युक्तेरवधिनिश्चयात्समावर्तनानंतरं कार्यम् । अन्यथोपनयनानंतरं कार्यमित्येव ब्रूयात् ॥ ५९ ॥

अथकेशांतसमावर्तनमुहूर्तावनुष्टुभाह—

केशांतं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम् ॥
व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥ ६० ॥

केशांतमिति ॥ षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे चूडावर्षेत्यादिना कथितशुभमुहूर्ते गोदानापरपर्यायं केशांतसंज्ञं कर्म शुभं स्यात् । गावः केशा दीयंते खंड्यंते यस्मिंस्तद्गोदानम् । गोदानं षोडशे वर्षे इत्येतद्ब्राह्मणविषयम् । क्षत्रियविशोः द्वाविंशे चतुर्विंशे च विधानात् । तथाच मनुः । केशांतं षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबंधोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके तत इति । आश्वलायनः । प्रथमं स्यान्महानाम्नी द्वितीयं च महाव्रतम् । तृतीयं स्यादुपनिषद्गोदानाख्यं ततः परम् ॥ अत्र जाताधिकाराद्गोदानं जन्माद्यब्दे तु षोडशे इति वृत्तिकारवचनात् त्रयोदशादिषु महानाम्न्यादीनि भवंति । त्रयोदशे महानाम्नी चतुर्दशे महाव्रतं पंचदशे उपनिषद्व्रतं षोडशे गोदानमिति । एवंक्षत्रियविशोरपि उक्तगोदानकालात्प्राग्वर्षचतुष्टयक्रमेण महानाम्न्यादीनि भवंति । व्रतोक्तेति । हि निश्चयेन यज्ञोपवीतोक्तदिवसे आदिशब्देन वारनक्षत्रतिथिलग्नांशकेषु समावर्तनकर्मेष्यते । अत्र कश्यपेन चैत्रो वर्जितः । चैत्रमासविवर्जेषु माघादिषु च पंचसु । एतच्च गोदानानंतरं विवाहात्प्राक् कार्यम् ।

Aho ! Shrutgyanam

कुर्यात्समावर्तनकर्मपश्चाद्गोदानतः पाणिनिपीडनात् प्रागिति वसिष्ठोक्तेः। क्वचित् द्वितीयवर्षे तन्निषेध उक्तः। वधूप्रवेशं व्रतमोक्षणं च पुंसां पुनर्दारपरिग्रहं च। नाब्दे द्वितीये विदधीत धीमान् वदंति गर्गात्रिवसिष्ठमुख्या इति तन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम्। परिकरोऽलंकार उत्सर्गापवादरूपः शेषं स्पष्टम् ॥ ६० ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुत०प्रमिताक्षरायां पंचमं संस्कारप्रकरणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

॥ अथ विवाहप्रकरणं व्याख्यायते ॥

तत्रानाश्रमी न तिष्ठेतेत्यादिवचनात्समावर्तनानंतरं सर्वाश्रमाणामुपकारकत्वाद्गृहस्थाश्रम एव मुख्यः। स च सुशीलस्त्र्यधीनः शीलं सुलग्नाधीनमित्यतो लग्नशुद्धिकथनं वसंततिलकया प्रतिजानीते ॥

॥ अथ विवाहप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः ॥
तस्माद्विवाहसमयः परिचिंत्यते हि
तन्निघ्नतामुपगताः सुतशीलधर्माः ॥ १ ॥

भार्येति ॥ शुभं भर्त्रादेरनुकूलं शीलं स्वभावो यस्याः सा त्रिवर्गस्य धर्मार्थकामरूपस्य करणमतिशयेन साधनम्। तस्याः सुलग्नवशेन शीलं शुभं भवति यतः सुतशीलधर्माः तन्निघ्नतां विवाहाधीनताम्। अधीनो निघ्न आयत्त इत्यमरोक्तेः। उपगताः प्राप्ताः अतो हीति निश्चयेन विवाहसमयः परिचिंत्यते विचार्यत इति। ननु जन्मकालीनग्रहजनितं शुभाशुभं दुरतिक्रममिति विवाहलग्नानर्थक्यमिति चेन्न। ज्योतिषस्मृत्या वेदितशुभसमयारब्धविधिजन्यापूर्वजनितशुभफलेन जन्मांतरीयदुर्दिष्टध्वंसो भवतीत्येवमर्थतया सार्थक्यात् अत एव सत्याचार्यः। शुभक्षणक्रियारंभजनिताः पूर्वसंभवाः। संपदः सर्वलोकानां ज्योतिस्तत्र प्रयोजनमिति सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ १ ॥

अथ प्रश्नलग्नाद्विवाहयोगद्वयं स्रग्धरयाह—

आदौ संपूज्य रत्नादिभिरथ गणकं वेदयेत्स्वस्थचित्तं
कन्योद्वाहं दिगीशानलहयविशिखे प्रश्नलग्नाद्यदींदुः ॥
दृष्टो जीवेन सद्यः परिणयनकरो गोतुलाकर्कटाख्यं वा
स्यात्प्रश्नस्य लग्नं शुभखचरयुतालोकितं तद्विदध्यात् ॥ २ ॥

Aho ! Shrutgyanam

आदौ संपूज्येति ॥ अथशब्दो मंगलार्थः । आदौ गणकं ज्योतिर्विदं रत्नादिभिः मणिवस्त्रफलादिभिः संपूज्य ततः प्रष्टा कन्याया उद्वाहं गणकं वेदयेत् । गतिबुद्धीत्यादिना कर्तुः कमत्वम् । कीदृशं गणकं स्वस्थचित्तं अव्याकुलांतःकरणम् । स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संभवंतीत्युक्तेः । उत्पलः । प्रष्टा मणिकनकयुतैः फलकुसुमै राशिचक्रमभ्यर्च्य । पृच्छेद्यथाभिलषितं भक्त्या विनयान्वितः प्रश्नम् । दिगिति । यदि प्रश्नलग्नाद्दशमैकादशतृतीयसप्तमपंचमानामन्यतमे स्थाने स्थितश्चंद्रो जीवेन गुरुणा दृष्टः सद्यः शीघ्रं परिणयनकरः स्यात् । वा अथवा । गोतुलेति । वृषतुलाकर्कणामन्यतमं प्रश्नलग्नं स्यात्तच्च शुभग्रहैर्युतमवलोकितं वा भवेच्चेत्तत्परिणयनं विदध्यात् ॥ २ ॥

अथान्यं योगद्वयं द्रुतविलंबितेनाह—

विषमभांशगतौ शशिभार्गवौ तनुगृहं बलिनौ यदि पश्यतः ॥
रचयतो वरलाभमिमौ यदा युगलभांशगतौ युवतिप्रदौ ॥ ३ ॥

विषमभांशगताविति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ३ ॥

अथ प्रश्नलग्नाद्वैधव्ययोगत्रयं शालिन्याह—

षष्ठाष्टस्थः प्रश्नलग्नाद्यदींदुर्लग्ने क्रूरः सप्तमे वा कुजः स्यात् ॥
मूर्ताविंदुः सप्तमे तस्य भौमो रंडा सा स्यादष्टसंवत्सरेण ॥ ४ ॥

षष्ठाष्टस्थ इति ॥ चंद्रः प्रश्नलग्नात्षष्ठाष्टमस्थस्तदा कन्याष्टसंवत्सरेण विवाहवर्षाद्रंडा भर्तृनाशिका स्यात् । अथवा लग्ने यः कश्चित्क्रूरग्रहः स्यात्ततः सप्तमे कुजो भवेत्तदाष्टवर्षमध्ये रंडा स्यात् । केचित्सप्तमेऽपि पापं एवं प्रश्ने निषेधंति । कश्यपः । एको लग्नगतः पापो ह्यन्यः सप्तमराशिगः । आसप्तमाब्दान्मरणं पुरुषस्य न संशय इति तेषां मते सप्तमे वा खलः स्यादिति पाठः । अथवा मूर्तौ लग्ने चंद्रस्तस्य सप्तमे भौमो भवेत् तदाऽष्टवर्षेण रंडा स्यात् ॥ ४ ॥

अथ प्रश्नलग्नात् कुलटामृतवत्सायोगं दोधकवृत्तेनाह—

प्रश्नतनोर्यदि पापनभोगः पंचमगो रिपुदृष्टशरीरः ॥
नीचगतश्च तदा खलु कन्या सा कुलटा त्वथवा मृतवत्सा ॥ ५ ॥

प्रश्नतनोरिति ॥ स्पष्टार्थः । कश्यपः । स्वनीचगः शत्रुदृष्टः पापः पंचमगो यदा । मृतपुत्रां करोत्येव कुलटां वा न संशय इति ॥ ५ ॥

अथ विवाहभंगयोगं पुष्पिताग्रयाह—

यदि भवति सितातिरिक्तपक्षे
तनुगृहतः समराशिगः शशांकः ॥

Aho ! Shrutgyanam

अशुभखचरवीक्षितोऽरिरंध्रे
भवति विवाहविनाशकारकोऽयम् ॥ ६ ॥

यदीति ॥ सितातिरिक्तपक्षे कृष्णपक्षे यदि चंद्रः समराशिषु वृषकर्कादिषु गतः सन् तनुगृहतः प्रश्नलग्नादरिरंध्रे षष्ठेऽष्टमे वा स्थाने स्थितः पापग्रहावलोकितो भवति तदायं योगो विवाहस्य विनाशकारको भवति ॥ ६ ॥

एवं प्रश्नलग्नाद्वैधव्यादियोगमभिधायेदानीं जन्मलग्नादावपि बालवैधव्ययोगविचारमतिदिशन् तत्परिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जन्मोत्थं च विलोक्य बालविधवायोगं विधाप्य व्रतं
सावित्र्या उत पैप्पलं हि सुतया दद्यादिमां वा रहः ॥
सल्लग्नेऽच्युतमूर्तिपिप्पलघटैः कृत्वा विवाहं स्फुटं
दद्यात्तां चिरजीविनेऽत्र न भवेद्दोषः पुनर्भूभवः ॥ ७ ॥

जन्मोत्थमिति ॥ प्रश्नलग्नाद्यथा विधवायोगो विचारितस्तथा जन्मोत्थं जन्मलग्नोद्भवं च बालविधवायोगं जातकशास्त्रात् । बाल्ये विधवा भौमे पतिसंत्यक्ता दिवाकरेऽस्तस्थे । सौरे पापैर्दृष्टे कन्यैव जरां समुपयाति । तथा । लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे । कन्या भर्तृविनाशाय भर्ता कन्याविनाशक इत्याद्युक्तैर्बालविधवायोगं विचार्य वक्ष्यमाणं व्रतं वैधव्यपरिहारकरं कारयेदित्यन्वयः । तत्र वैधव्ययोगपरिहारः । यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिरिति । सप्तमस्थानं स्वस्वामिसौम्येक्षितं चेद्भवति तदा भर्तृसुखं भवतीति । अन्ये स्त्रीणां महत्यरिष्टयोगे भर्तुश्च स्वल्पेऽरिष्टयोगे तत्परिहारमाहुः । अथापरिहार्ये वैधव्ययोगे प्रतीकारमाह—विधाप्येति । रह इति वक्ष्यमाणमिहापि योज्यम् । पित्रादिः सुतया कन्यया कृत्वा रह एकांते हि निश्चयेन सावित्र्या व्रतं विधाप्य पश्चादिमां कन्यां चिरजीविने वराय दद्यात् । तदुक्तं व्रतखंडे । सावित्र्यादिव्रतादीनि भक्त्या कुर्वंति याः स्त्रियः । सौभाग्यं च सुहृत्त्वं च भवेत्तासां सुसंततिरिति । व्रतग्रहणप्रकारस्तत एवावगंतव्यः । पिप्पलव्रतं ज्ञानभास्करे । बलवद्विधवायोगे बाल्ये सति मृगीदृशाम् । पिता रहसि कुर्वीत तद्भंगं शास्त्रसंमतम् ॥ सुदिने शुभनक्षत्रे चंद्रताराबलान्विते । अवैधव्यकरैर्योगैर्लग्ने ग्रहबलान्विते ॥ व्रतारंभं प्रकुर्वीत बालवैधव्यनाशकम् । सुस्नातां चित्रवसनां कन्यां पितृगृहाद्बहिः ॥ नीत्वाश्वत्थशमीस्थाने यद्वा बदरिकाश्रमे । आलवालं प्रकुर्वीत विपुलं मृदु कर्षितम् ॥ कुमार्याचार्यनिर्दिष्टं कृत्वा संकल्पमादरात् । करकांबुप्रपूर्णेन सिंचनं प्रतिवासरम् ॥ चैत्रे वाश्विनमासे वा तृतीयाऽसितपक्षतः । यावत्कृष्णतृतीयान्या मासमेकं यथाविधि ॥ ब्राह्मणानां तथा स्त्रीणां पूजनं च समाचरेत् । तदाशि-

Aho ! Shrutgyanam

षाप्नुयात्कन्या सौभाग्यं च सुखान्वितम् ॥ प्रतिमां पार्वतीनाम्नीं वैणवे भाजनेऽर्चयेत् । चंदनाक्षतदूर्वाद्यैर्बिल्वपत्रैर्यथाविधि ॥ उपचारैर्यथाशक्त्या नैवेद्यैः प्रतिवासरम् । एवं व्रतप्रभावेण बालवैधव्यनिष्कृतिः ॥ जायते कन्यकानां च ततः पाणिग्रहक्रिया । इत्यश्वत्थव्रतम् । अन्यमपि वैधव्ययोगपरिहारमाह । वा रह इत्यादिना । अथवा रह एकांते अच्युतमूर्तिर्विष्णुप्रतिमा पिप्पलघटौ प्रसिद्धौ । एषां मध्येऽन्यतरेण सह सल्लग्ने वक्ष्यमाणदोषरहिते सौभाग्यगुणान्विते च विवाहलग्ने विवाहं कृत्वा पश्चात्तां कन्यां स्फुटं लोकप्रसिद्धं यथा भवति तथा चिरजीविने वराय दद्यात् पित्रादिकः । तदुक्तं मार्कंडेयेन । बालवैधव्ययोगेऽपि कुंभद्रुप्रतिमादिभिः । कृत्वा लग्नं रहः पश्चात्कन्योद्वाह्येति चापरे इति । कुंभ इति मंथन्या अप्युपलक्षणम् । द्रुर्वृक्षोऽश्वत्थ एव प्रतिमा विष्णोः सौवर्णी करशिरोवयवादिसहिता न शालग्रामादिरूपा । तत्र कुंभ विवाहः । सूर्यारुणसंवादे । विवाहात्पूर्वकाले तु चंद्रताराबले शुभे । विवाहोक्तेन मंथन्या कुंभेन च सहोद्वहेत् ॥ पिता संकल्प्य बाह्यं च विवाहविधिपूर्वकम् । सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतंतुविधानतः ॥ कुंकुमालंकृतं देहं तयोरेकांतमंदिरे । ततः कुंभं विनिःसार्य प्रभज्य सलिलाशये ॥ ततोऽभिषेचनं कुर्यात्पंचपल्लववारिभिः । तत्सर्वं वस्त्रपूजाद्यं ब्राह्मणाय निवेद्य च ॥ कन्यालंकारवस्त्राद्यं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । प्रार्थना । वरुणांगस्वरूप त्वं जीवनानां समाश्रय । पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रान्सुखं वरम् । देहि विष्णुवरानंद कन्यां पालय दुःखत इति । इति कुंभविवाहः । अश्वत्थविवाहोऽपि तत्रैव । सुहृद्विजगुरून्नारी मंगलोच्चारणैः समम् । आहूयोद्वाहकाले च रम्यभूमौ च मंडपे ॥ गत्वा प्रणम्य गौरीं च गणनाथं च भूरुहम् । भवानीं चैव मंथानीं पिता मंत्रमुदीरयेत् ॥ उद्वाहयिष्ये विधिवदश्वत्थेन मनोहराम् । कन्यां सौभाग्यसौख्यार्थहेतवेऽहं द्विजोत्तमाः ॥ नमस्ते विष्णुरूपाय जगदानंदहेतवे । पितृदेवमनुष्याणामाश्रयाय नमोनमः ॥ वनानां पतये तुभ्यं विष्णुरूपाय भूरुह । नमो निखिलपापौघनाशनाय नमोनमः ॥ पूर्वजन्मकृतं पापं बालवैधव्यकारकम् । नाशयाशु सुखं देहि कन्याया मम भूरुह ॥ इत्यश्वत्थविवाहे संकल्पप्रार्थने । विवाहस्तु कुंभविवाहवद्विधेयः । एवमेव सौवर्ण्या विष्णुप्रतिमया सह विवाहं विधाय प्रतिमां ब्राह्मणाय दद्यात् । दानप्रकारस्तत्रैव । शुभे मासे सिते पक्षे सानुकूलग्रहे दिने । ब्राह्मणं साधुमामंत्र्य संपूज्य विविधार्हणैः ॥ तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् । शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः ॥ निर्मितां रुचिरां शंखगदाचक्राब्जसंयुताम् । दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम् ॥ सदक्षिणां च तां दद्यान्मंत्रमेतमुदीरयेत् । यन्मया पूर्वजनुषि घ्नंत्या पतिसमागमम् ॥ विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतोवाऽतिविरक्तया । प्राप्यमाणं महाघोरं यशः सौख्यधनापहम्॥ वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय सुखलब्धये । महासौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम् ॥

---

१. भवं. २. बहु.

Aho ! Shrutgyanam

सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज । अनया त्वहमस्मीति त्रिवारं प्रवदेदिति ॥ एवमस्त्विति विप्राशीर्गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् । ततो वैवाहिकं तातो विधिं कुर्यान्मृगीदृशाम् । इति प्रतिमादानविधिः । एवं घटादिभिः सह विवाहं एकांते विधाय पश्चाद्वादित्रघोषपुरःसरं पित्रादिः कन्यामायुष्मते वराय दद्यात् । अत्र पुनर्विवाहात्पुनर्भूत्वदोषो न भवति । यतो विधानखंडे । स्वर्णांबुपिप्पलानां च प्रतिमाविष्णुरूपिणी । तया सह विवाहे च पुनर्भूत्वं न जायत इत्युक्तत्वात् । चकारात् घटस्यापि । लक्ष्मीरूपा सदा कन्या हरिरूपं सदा जलम् । हरेर्दत्तं च यद्दानं दातुः पापहरं सदा । लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै या दत्ता कन्यका बुधैः ॥ तारयेत्सकलं दातुः कुलं पूर्वापरं सदा । चंद्रवह्न्यंबुगंधर्वशिवसोमस्मरा इमे ॥ पतयः कन्यकानां च बाल्यात्संति सदैव ते ॥ तदुद्वाहविधिर्यत्नात्कृतो नो जनयेदघम् । यथालिभुक्तकमलं देवानां पूजनाय वै ॥ अर्हं भवति सर्वत्र तथा कन्या नृणां भवेत् । श्रुतावपि सोमादिभिः सह विवाहोऽभिहितः । सोमः प्रथमो विविदे गंधर्वो विविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा इति । अतो दैवतभोग्यानां कन्यानां पुरुषविवाहे यथा न दोषः पुनर्भूभवस्तथात्रापि । अत एव । मंथन्या भास्करो यत्नात्कृतवान् दुहितुर्विधिम् । रेणुकोऽपि स्वकन्यायास्तरूद्वाहं चकार स इति विधानखंडेऽभिधानात् । अत एव । पित्रा मात्रा तथा भ्रात्रा दत्ता या तोयधारया । विप्राग्निसुहृदां साक्ष्यं कृत्वा सोद्वाहिता भवेदिति कात्यायनादिपरिभाषितत्वादेकदा कन्यापुरुषविवाहं निर्वर्त्य पुनर्द्वितीयपुरुषविवाहे जाते सा पुनर्भूरेवेत्यलम् ॥ ७ ॥

अथान्यत्स्त्रग्विण्याह—

प्रश्नलग्नक्षणे यादृशापत्ययुक् स्वेच्छया कामिनी तत्र चेदाव्रजेत् ॥
कन्यका वा सुतो वा तदा पंडितैस्तादृशापत्यमस्या विनिर्दिश्यते ८

प्रश्नलग्नक्षण इति ॥ तत्र ज्योतिर्वित्समीपे यादृशापत्ययुक् । यादृशापत्यत्वमेव विवृणोति कन्यकेत्यादि । शेषं स्पष्टम् ॥ ८ ॥

अथ सामान्यतो निमित्तवशेन शुभाशुभप्रश्नं स्त्रग्विण्याह—

शंखभेरीविपंचीरवैर्मंगलं जायते वैपरीत्यं तदा लक्षयेत् ॥
वायसो वा खरः श्वा सृगालोऽपि वा प्रश्नलग्नक्षणे रौति नादं यदि ९

शंखभेरीति ॥ विपंची वीणा एतेषां रवैः प्रश्नलग्ने श्रुतैर्मंगलं जायते । उपलक्षणत्वान्मनोह्लादितुरगगजच्छत्रादिसान्निध्येऽपि शुभम् । अथाशुभयोगाः । वैपरीत्यमिति । वायसः काकः खरो गर्दभः श्वा कुक्कुरः सृगालः प्रसिद्धः । यदि प्रश्नलग्नक्षणे वायसादिर्नादं शब्दं करोति तदा वैपरीत्यमशुभं लक्षयेत् । उपलक्षणादुलूकोष्ट्रमहिषनादोऽप्यशुभः । अन्ये शु-

Aho ! Shrutgyanam

भयोगाः शौनकादिभ्यो ज्ञेयाः । विवाहवृंदावने उपश्रुतिरप्युक्ता । आरोप्याक्षतपूरिते गणपतिं प्रस्थादिपात्रे शनैः संमार्जन्यधिवेष्टिते युवतयस्तिस्त्रः सकन्या निशि । निर्याता रजकादिवेश्मसु करे कृत्वा तमभ्यर्चितं यां वाचं शृणुयुस्तदर्थसदृशी लोके किलोपश्रुतिः । तन्मंत्रश्च । उपश्रुति महादेवि चांडालगृहवासिनि । यथार्थं ब्रूहि देवि त्वं शक्रराज्यप्रवर्धिनि॥९॥

अथ कन्यावरणमुहूर्तं मत्तमयूरच्छंदसाह—

विश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रै-
र्वस्वाग्नेयैर्वा करपीडोचितऋक्षैः ॥
वस्त्रालंकारादिसमेतैः फलपुष्पैः
संतोष्यादौ स्यादनु कन्यावरणं हि ॥ १० ॥

विश्वस्वातीति ॥ उत्तराषाढादिनक्षत्रैरुपलक्षिते काले वस्त्रालंकारादिशब्देन खाद्यादिमधुरवस्तुभिः सहितैः फलपुष्पैः आदौ कन्यां संतोष्य तोषयित्वाऽनु पश्चात्कन्यावरणं हि निश्चयेन स्यात् । कन्यावरयोर्लक्षणानि सामुद्रिकाध्यायादवगंतव्यानि ॥ १० ॥

अथ वरवरणमुहूर्तमाह—

धरणिदेवोऽथवा कन्यकासोदरः
शुभदिने गीतवाद्यादिभिः संयुतः ॥
वरवृतिं वस्त्रयज्ञोपवीतादिना
ध्रुवयुतैर्वह्निपूर्वात्रयैराचरेत् ॥ ११ ॥

धरणिदेव इति ॥ धरणिदेवो ब्राह्मणः पुरोहितादिः । चंडेश्वरः । पूर्वात्रितयमाग्नेयमुत्तरात्रितयं तथा । रोहिणी तत्र वरणभगणः शस्यते सदा ॥ उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च । देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वेति ॥ ११ ॥

अथ कन्याविवाहकालं ग्रहशुद्धिं च वसंतमालिकाच्छंदसाह—

गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात् ॥
रविशुद्धिवशाच्छुभो नराणामुभयोश्चंद्रविशुद्धितो विवाहः ॥ १२ ॥

गुरुशुद्धिवशेनेति ॥ कन्यानां विवाहः षडब्दकोपरिष्टात् षड्वर्षातिक्रमानंतरं समवर्षेषु युग्मवर्षेषु सत्सु बटुकन्याजन्मराशेरित्याद्युक्तगुरुशुद्धौ सत्यां विवाहः शुभः । अर्थात्पुरुषाणां विषमवर्षेषु गोचरप्रकरणोक्तरविशुद्धौ सत्यां विवाहः शुभः । राजमार्तंडः । तृतीयः षष्ठगश्चैव दशमैकादशस्थितः । रविः शुद्धो निगदितो वरस्यैव करग्रहे ॥ जन्मस्थे च द्वितीयस्थे पंचमे सप्तमेऽपि वा । नवमे भास्करे पूजां कुर्यात्पाणिग्रहोत्सवे ॥ चतुर्थे वाष्टमे

Aho ! Shrutgyanam

चैव द्वादशे भास्करे स्थिते । वरः पंचत्वमाप्नोति कृते पाणिग्रहोत्सव इति । यत उक्तम् । षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं ततः । सोमो भुंक्तेऽथ गंधर्वस्ततः पश्चाद्भुताशन इति । व्यासः । अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला। वात्स्यः । द्वादशे वृषली स्मृतेति । गौरीं ददद्ब्रह्मलोकं सावित्रं रोहिणीं ददत् । कन्यां ददत्स्वर्गलोकमतः परमसद्गतिम् । प्राप्नोतीति शेषः । अत्र युग्मेऽब्दे जन्मतः स्त्रीणां शुभदं पाणिपीडनमित्युक्तत्वात् पुनर्नववर्षाया रोहिण्या अयुग्मवर्षत्वाद्विवाहनिषेधः प्राप्नोतीत्यत्र व्यवस्थामाह श्रीपतिः । मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मे तु मासत्रयमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदंति संतो वात्स्यादयो गर्गवराहमुख्या इत्यतो नववर्षस्यायुग्मत्वनिषेधोऽष्टवर्षानंतरं मासत्रयपर्यंतमेव । तदनंतरं तु सुखेन विवाह इत्यविरोधः । एवं च षष्ठवर्षानंतरं जन्मतो विषमवर्षीयमासत्रयानंतरं नव मासाः शुभाः । समवर्षे आद्यमासत्रयं चेति गर्भतो युग्मवर्ष इति निष्कृष्टोऽर्थः । उभयोरिति । स्त्रीपुंसयोश्चंद्रविशुद्धितो विवाहः शुभः । उभयोश्चंद्रबलमावश्यकमित्यर्थः । शुद्धिर्गोचरेणाभिहिता । गोचरबलाभावे अष्टकवर्गादिबलं ग्राह्यमित्याह नारदः । गोचरं वेधजं चाष्टवर्गजं रूपजं बलम् । यथोत्तरं बलाधिक्यं स्थूलं गोचरमार्गजमिति । व्यासः । कन्याया ग्रहशुद्धिश्च दशवर्षावधिः स्मृता । दशवर्षव्यतिक्रांता कन्या शुद्धिविवर्जिता । तस्यास्तारेंदुलग्नानां शुद्धौ पाणिग्रहो मत इति ॥ १२ ॥

अथ विहितान्मासान् द्रुतविलंबितेनाह—

मिथुनकुंभमृगालिवृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचेः ॥
अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि ॥ १३ ॥

मिथुनेति ॥ अलिर्वृश्चिकः एतद्राशिगते रवौ सति तत्रापि मिथुनस्थिते रवौ सति शुचेः आषाढस्य त्रिलवे तृतीयांशे आषाढशुद्धप्रतिपदमारभ्य दशमीपर्यंतं करपीडनं विवाहो भवति अर्थादितरराशिगे सूर्ये आषाढशुद्धदशम्यनंतरं मिथुनराशिगेऽर्केऽपि हरिशयने च विवाहो न स्यात् । अलीति । एतद्राशिगे सूर्ये कार्तिकपौषमधुष्वपि करपीडनं स्यात् । वृश्चिके कार्तिके मकरे पौषे मेषे चैत्रेऽपीत्यर्थः । इदं तु सौरमासग्रहिलानां मतम् । श्रीधरोऽपि । पौषेऽपि कुर्यान्मकरस्थितेऽर्के चैत्रे भवेन्मेषगते यदा स्यात् । प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदंति गर्गा मिथुनस्थितेऽर्के इति । ये तु चांद्रमासानेवाहुर्नारदादयः माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः । मध्यमः कार्तिको मार्गशीर्षो वै निंदिताः परे इति । तेषां मते फाल्गुनो विहित इति तत्र मीनसंक्रमणसद्भावेऽपि शुभः चैत्रो निषिद्ध इति मेषसंक्रमणसद्भावेऽप्यशुभः । तदुक्तं वृंदावने । झषो न निंद्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निंद्यः । मध्वाश्रितौ द्वावपि वर्जनीयाविति । अजस्तु वैशाखगतो न निंद्य इति तु निर्मू-

Aho ! Shrutgyanam

लमेव । वस्तुतस्तु वसिष्ठेन उभयमासविधानात्सौरचांद्रमासैक्ये उत्तमो विवाहः । एकतरपक्षाश्रयेण मध्यमः । दिनाधिपे मेषवृषालिकुंभनृयुग्मनक्राख्यषटर्क्षसंस्थे । माघद्वये माधवशुक्रयोश्च मुख्योऽथवा कार्तिकसौम्ययोश्चेति । अथ प्रसंगात्सौरचांद्रमासविधायकवचनानि तेषां व्यवस्था च लिख्यते । तत्र ऋष्यशृंगः । विवाहव्रतयज्ञेषु सौरमानं विधीयते । गार्ग्योऽपि । विवाहोत्सवयज्ञेषु सौरमानं प्रशस्यते । वृद्धगर्गः । विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनः स्मृत इत्येवमादीनि सौरमासविधायकवचनानि । अथ चांद्रमासविधायकानि । तथा च वसिष्ठः । उद्वाहयज्ञोपनयप्रतिष्ठातिथिव्रतक्षौरमहोत्सवाद्यम् । पर्वक्रिया वास्तुगृहप्रवेशाः सर्वं हि चांद्रेण विगृह्यते तत् । नारदः । यात्रोद्वाहव्रतक्षौरतिथिवर्षेशनिर्णयम् । पर्ववास्तूपवासादि कृच्छ्रं चांद्रेण गृह्यत इत्यादीनि तत्रैकतरमासावलंबनेऽपरवैयर्थ्यं स्यादित्यत्र समाधीयते । यत्र सौरचांद्रमानाभ्यां मासशुद्धिरुपलभ्यते स उत्तमो विवाहः एकतरपक्षावलंबने मध्यम इत्युक्तं प्राक् मध्यमपक्षावलंबनं च अवश्यदेया कन्या विषयं वेदितव्यम् । अपरे । पुनर्देशविवाहयोः तथा । तापिनीकृष्णयोर्मध्ये चांद्रो मासः प्रशस्यते । अन्येषु सर्वदेशेषु सौरो व्रतविवाहयोः । तथा । विंध्याद्रेर्दक्षिणे भागे चांद्रो मासः प्रशस्यते । उदग्भागे तु विंध्यस्य सौरं मानं विधीयते ॥ अन्येषु सर्वदेशेषु मिश्रमानं प्रकल्पयेदिति ॥१३॥

अथ मासप्रसंगाज्जन्ममासादिप्रयुक्तनिषेधाविधीन् रथोद्धतयाह—

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयोर्जन्ममासभतिथौ करग्रहः ॥
नोचितोऽथ विबुधैः प्रशस्यते चेद्द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ॥ १४ ॥

आद्येति ॥ यस्मिन् चांद्रे मासे जन्म स जन्ममासः । जन्मतिथिमारभ्य त्रिंशत्तिथ्यात्मको मासो जन्ममासो वेत्युच्यते । पक्षद्वयमध्ये प्रथमप्रकारेण प्रतिपादितम् । जन्मनक्षत्रं जन्मतिथिः । समाहारद्वंद्वः जन्ममुहूर्तोऽपि तत्राद्यगर्भयोः सुतकन्ययोर्द्वयोः करग्रहो विवाहो नोचितो निषिद्धः । वासिष्ठः । स्वजन्ममासर्क्षतिथिक्षणेषु वैनाशिकाद्यृक्षगणेषु चैवम् । नोद्वाहमात्माभ्युदयाभिकांक्षी नैवाद्यगर्भद्वितयं कदाचित् । एतदपवादोऽपि । जातं दिनं दूषयते वसिष्ठ इत्यादि पूर्वमुक्तम् । अथेति । द्वितीयजनुषोरनाद्यगर्भयोश्चेद्विवाहस्तर्हि सुतप्रदो विबुधैः पंडितैः प्रशस्यते । अत्राद्यगर्भराहित्यं सर्वथा विवक्षितम् । अथवा चेदनाद्यजनुषोरिति पठितव्यम् । तथा च च्यवनः । जन्मर्क्षे जन्ममासे वा तारायामथ जन्मनि । जन्मलग्ने भवेद्वोढा पुत्राढ्या पतिवल्लभेति । एतच्चानाद्यगर्भविषयम् । आद्यगर्भे साक्षान्निषेधात् ॥ १४ ॥

ज्येष्ठमासे विशेषं शालिन्याह—

ज्येष्ठद्वंद्वं मध्यमं संप्रदिष्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदापि ॥
केचित्सूर्यं वह्निगं प्रोज्झ्य चाहुर्नैवान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः १५

Aho ! Shrutgyanam

ज्येष्ठद्वंद्वमिति ॥ पुत्रो ज्येष्ठः कन्या च ज्येष्ठा मासोऽपि ज्येष्ठ इत्येतात्त्रिज्येष्ठं यत् तत् कदापि नैव युक्तं न प्रशस्तम् । ज्येष्ठमासे ज्येष्ठयोर्वधूवरयोर्विवाहो नैव कार्य इत्यर्थः । यदा त्वेकतरज्येष्ठत्वे ज्येष्ठमासो भवति तदा मध्यमं संप्रदिष्टम् । अगतिविषयकमित्यर्थः । एकं ज्येष्ठं अन्यद्द्वयमज्येष्ठं तदा शुभमेव। वराहः। द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकज्येष्ठः शुभावहः । ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम् ॥ अस्यापवादमाह । केचिदिति । सत्यावश्यकत्वे सूर्यं वह्निगं कृत्तिकास्थं त्यक्त्वा ज्येष्ठमासेऽपि ज्येष्ठवरस्य कन्याया विवाहः शुभ इति केचिदूचुः । एतच्च ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे इति सामान्यतो मंगलकृत्यनिषेधेऽपि द्रष्टव्यम् । भरद्वाजः । ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कुर्वीत भास्करे चानलस्थिते । सोत्सवादीनि कार्याणि दिनानि दश वर्जयेदिति । अत्र ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोर्ज्येष्ठमासवत् मार्गशीर्षेऽपि मंगलकृत्यनिषेधमाह । भरद्वाजः । मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयव्रतम् । आद्यपुत्रदुहित्रोस्तु यत्नेन परिवर्जयेदिति । स्वयमपि । ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यत इत्युक्तं प्राक् । केचिद्ग्रहणं शिष्टाचाराभावादिति सूचयितुं नैवान्योऽन्यमिति ज्येष्ठायाः कन्यायाः ज्येष्ठपुत्रेण सह विवाहो नैव स्यात् । गर्गः । ज्येष्ठायाः कन्यकायाश्च ज्येष्ठपुत्रस्य वै मिथः । विवाहो नैव कर्तव्यो यदि स्यान्निधनं तयोरिति ॥ १९ ॥

अथान्यं विशेषं हरिणीछंदसाह–

सुतपरिणयात्षण्मासांतः सुताकरपीडनं
न च निजकुले तद्वद्वा मंडनादपि मुंडनम् ॥
न च सहजयोर्देये भ्रात्रोः सहोदरकन्यके
न सहजसुतोद्वाहोऽब्दार्धे शुभे न पितृक्रिया ॥ १६ ॥

सुतपरिणयादिति ॥ निजकुले इति देहलीदीपन्यायेनात्रापि संबध्यते । निजकुले स्ववंशे सुतस्य पुत्रस्य परिणयात् षण्मासांतः षण्मासमध्ये सुताकरपीडनं कन्याविवाहो न स्यात् । नारदः । पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न[1] तयोर्व्रतमुद्वाहान्मंडनादपि मुंडनमिति । तद्वदिति निजकुले त्रिपुरुषमध्ये पुत्रस्य कन्याया वा मंडनाद्विवाहान्मुंडनं चौलोपनयनसमावर्तनादि वा तद्वत् षण्मासमध्ये न कार्यम् । अत्रिः । कुले ऋतुत्रयादर्वाग्मंडनान्न तु मुंडनम् । प्रवेशान्निर्गमं चैव न कुर्यान्मंगलत्रयमिति। अत्र विशेषः शार्ङ्गीये। व्रतं समावर्तनकं सचौलं केशांतमेतानि वदंति तज्ज्ञाः । क्षौरं पुरस्कृत्य भवंति यस्माच्चत्वारि तस्मादिह मुंडनानि । चूडासीमंतकेशांतविवाहोपनयान् बुधाः । गुरु मंगलमित्याहुस्तदन्यल्लघु मंगलम् ॥ ज्येष्ठं कृत्वा तु षण्मासं न कुर्याल्लघु मंगलम् । कुर्वंति मुनयः केचिदन्यस्मिन्नपि वत्सरे ॥ लघु वा मंगलं कार्यं कार्यं नैमित्तिकं हि तु । पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः क-

१ कुर्यान्न.

न्योद्वाहस्तु निर्गमः ॥ मुंडनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मंगलम् । चौलं मुंडनमेवोक्तं वर्जयेद्वरणात्परम् ॥ मौंजी तूभयतः कार्या यतो मौंजी न मुंडनम् । अभिन्ने वत्सरेऽपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत् । अभेदे दिवसस्यापि न कुर्यादेकमंडप इति । एषां समूलत्वे देशकालसंकटे सति बोद्धव्यम् । उक्तं च । एकोदरयोर्द्वयोरेकदिनोद्वाहने भवेन्नाशः । नद्यंतर एवैके दिनेऽप्याहुः संकटे च शुभम् । न प्रतिषिद्धं लग्नं संप्राप्ते संकटे महति । एकोदरसंभवयोरेकाह्ने भिन्नमंडपे काल इति । न चेति सहजयोः सोदरयोर्भ्रात्रोः सहोदरकन्यके न देये नोद्वाह्ये । नारदः । न चैकजन्मनोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके । नूनं कदाचिदुद्वाह्ये नैकदा मुंडनद्वयमिति । अत्र चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थस्तेनैकस्मै वराय सहोदरकन्याद्वयमपि न देयम् । न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचनेति वसिष्ठोक्तेः । न सहजसुतोद्वाहोऽब्दार्धे इति सुतश्च सुतश्च सुतौ सुता च सुता च सुते सरूपाणामेकशेष इत्येकशेषः । सुता च सुतश्च सुतौ च पुमान् स्त्रियेत्येकशेषः । सुतौ च सुता च सुते च सुतो वेति सुताः इति कृतैकशेषेण द्वंद्वे पुमान् स्त्रियेत्येकशेषः । सहजाश्च ते सुताश्चेति कर्मधारयः । तेषां सोदरभ्रातृणां विवाहः अब्दार्धे षण्मासमध्ये न कार्यः । उद्वाह इत्युपलक्षणम् । ततश्चैकमातृजयोः पुत्रयोः कन्ययोर्वा पुत्रकन्ययोर्वा समानसंस्कारो न कार्य इत्यर्थः । वृद्धमनुः । एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । न समानां क्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥ समानक्रिया मुंडनादिका । भिन्नमातृजयोः समानक्रियायां न दोषः । नारदः । समानापि क्रिया कार्या मातृभेदे तथैव च । विवाहो दुहितुः कार्यो न विवाहश्चतुर्दिनमिति । भिन्नमातुर्दुहितुर्विवाहः समानक्रियायां यदि दिनचतुष्टयमध्ये न कार्य इत्यर्थः । वसिष्ठेन विशेष उक्तः । एकोदरप्रसूतानां नात्र कार्यत्रयं भवेत् । भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीदिति । चौलोपनयनविवाहरूपं कार्यत्रयम् । आदौ चौलं ततो मौंजी विवाहश्च शुभप्रदः । मातृभेदे बुधैरुक्तो मातुरैक्ये न कर्हिचित् । एवं सति भिन्नोदरमंगलमावश्यकत्वे गृहभेदात् एकगृहे आचार्यभेदाद्वा कार्यम् । वसिष्ठः । द्विशोभनं त्वेकगृहे न चेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु । आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेऽथवा चार्यविभेदतो वेति । यमलजातयोस्त्वयमपि निषेधो नास्ति । एकस्मिन्वत्सरे चैव वासरे मंडपे तथा । कर्तव्यं मंगलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः । तत्रापि ज्येष्ठानुक्रमेण कार्यम् । ज्येष्ठानुक्रमस्तु गर्भोत्पत्तिक्रमेण तथा च भागवते तृतीयस्कंधे हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तौ । प्रजापतिर्नाम तयोकार्षीद्यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजा[illegible] । तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रत इति । तथा वैद्यके आत्रेयसंहितायाम् । यदाविशेद्द्विधाभूतं बीजं पुष्पे परिक्षरत् । तदा भवेद्द्विधा गर्भः सूतिर्वेशविपर्ययात् ॥ तेन प्रथमं जातः कनिष्ठः अनंतरं जातो ज्येष्ठः । अत एव । यमयोश्चैव गर्भे जन्मतो ज्येष्ठता मतेति । मनुना गर्भे जन्मत इत्युक्तं जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतामिति तु मनु-

Aho ! Shrutgyanam

वचनमेककोशजातयमलविषयम् । तथा च देवलः । यस्य जातस्य यमयोः पश्यंति प्रथमं मुखम् । संतानः पितरश्चैव तस्मिन् ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितमिति । संतानो वंशः यदा तु पुंसो बलातिशयाद्रेतसो द्विधा पातस्तदा कोशद्वये यमलोत्पत्तिः। यदा तु गर्भवायुना एकस्मिन्नेव कोशे रेतसो द्वैधीभावस्तदा एककोशे एव युगपद्यमलं जन्यते । ननु स्त्रीणां विवाह उपनयनस्थान इति स्मृतेः कन्याविवाहस्य पुत्रोपनयनस्य च समानत्वमिति चेन्न । अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेदिति वचने ब्राह्मणग्रहणात् स्त्रीशूद्राणां व्रतबंधनिषेधाच्च । यत्तु स्त्रीणां विवाह उपनयनस्थान इत्युक्तं तत्तासां द्विजत्वसिद्ध्यर्थं अतः स्त्रीविवाहे विवाह एव न तूपनयनम् । तस्मात्सोदरकन्यापुत्रयोर्विवाहोपनयनयोः समानसंस्कारत्वाभावात् षण्मासमध्येऽपि ते कार्ये शुभे इति । शुभे विवाहादिमंगलकृत्ये पितृक्रिया श्राद्धक्रिया न कार्या मंगलेनाप्यमंगलमिति नारदोक्तेः । अमंगलं श्राद्धम् । समाप्ते एव मंगले कार्यं न मध्ये इत्यर्थः ॥ १६ ॥

अथ प्रतिकूलनिर्णयमिंद्रवज्रयाह—

वध्वा वरस्यापि कुले त्रिपूरुषे नाशं व्रजेत्कश्चन निश्चयोत्तरम् ॥
मासोत्तरं तत्र विवाह इष्यते शांत्याथवा सूतकनिर्गमे परैः॥ १७ ॥

वध्वा वरस्येति ॥ निश्चयोत्तरं वाग्दानानंतरं यदि वध्वाः कन्यायाः वरस्य वा कुले वंशे त्रिपुरुषे पुरुषत्रयमध्ये कश्चन सपिंडो नाशं प्राप्नुयात् तत्र मासोत्तरं मरणदिनादारभ्य त्रिंशद्दिनं प्रतिकूलं ततः शांत्या स्वनुष्ठितया विवाहः सुखेन इष्यते इदं पित्रादिभिन्नविषयम् । मांडव्यः । अन्येषां तु सपिंडानामाशौचं माससंमितम् । तदंते शांतिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते । पित्रादिमरणे तु विशेषः । वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः । एतेषां प्रतिकूलं चेन्महाविघ्नकरं भवेत् ॥ पिता मातामहश्चैव माता वापि पितामही । पितृव्यः स्त्री सुतो भ्राता भगिनी वा विवाहिता ॥ एभिरेव विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् । वाग्दानानंतरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् ॥ पितुराशौचमब्दं स्यात्तदर्धं मातुरेव हि। मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अन्यच्च । प्रतिकूले सपिंडस्य मासमेकं विवर्जयेत् । विवाहस्तु ततः पश्चात्तयोरेव विधीयते ॥ दुर्भिक्षे राष्ट्रभंगे च पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां प्रतिकूलं न दुष्यति ॥ दीर्घरोगाभिभूतस्य दूरदेशस्थितस्य च । उदासवर्तिनश्चैव प्रतिकूलं न विद्यते ॥ संकटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शांतिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् ॥ अथावश्यकत्वेऽपवादमाह । अथवेति । आशौचनिर्गमे शांत्या स्वनुष्ठितया विवाहः परैराचार्यैः इष्यते । ज्योतिःप्रकाशे । प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यो विवाहो मासमंतरा । शांतिं विधाय गां दत्वा वाग्दानादि चरेद्बुधः ॥ १७ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथान्यदपि विशेषांतरमुपजात्याह—

चूडाव्रतं चापि विवाहतो व्रताच्चूडा न चेष्टा पुरुषत्रयांतरे ॥
वधूप्रवेशाच्च सुताविनिर्गमः षण्मासतो वाब्दविभेदतः शुभः ॥१८॥

चूडाव्रतमिति ॥ अपिशब्दात्समावर्तनादि चौलमुपनयनं समावर्तनं च विवाहानंतरं पुरुषत्रयमध्य एव नेष्टम् तथा व्रतादुपनयनात् चूडा च पुरुषत्रयपर्यंतं नेष्टा तथा वध्वाः स्नुषायाः प्रवेशात्सुताया विनिर्गमोऽपि पुरुषत्रयपर्यंतमेव नेष्टः । मेधातिथिः । पुरुषत्रयपर्यंतं प्रतिकूले स्वगोत्रिणाम् । प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मुंडनमंडने इति तस्मान्मूलपुरुषस्य चतुर्थत्वे नायं दोषः । स चायं दोषः पुरुषत्रयेऽपि षण्मासपर्यंतमेव । अत एव षण्मासत इति मासषट्कानंतरं परतोऽपि विवाहादिः शुभः । एतन्मूलवाक्यं कुले ऋतुत्रयादर्वागित्यादिना प्रागुक्तं अत्रापवाद उच्यते । वेति । अथवा । अब्दभेदात् वर्षभेदात् षण्मासमध्येऽपि शुभः । यथा माघे विवाहो वैशाखे चौलं यज्ञोपवीतं वा भवतीत्यर्थः । संहितासारावल्याम् । फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलंघनमिति ॥ १८ ॥

अथ मूलाद्यनिष्टनक्षत्रोत्पन्नयोर्वधूवरयोः श्वशुरादिपीडकत्वं वसंततिलकयाह—

श्वश्रूविनाशमहिजौ सुतरां विधत्तः
कन्यासुतौ निर्ऋतिजौ श्वशुरं हतश्च ॥
ज्येष्ठाभजाततनया स्वधवाग्रजं च
शक्राग्निजा भवति देवरनाशकर्त्री ॥ १९ ॥

श्वश्रूविनाशमिति ॥ अहिजौ आश्लेषानक्षत्रोत्पन्नौ कन्यापुत्रौ श्वश्र्वाः साक्षाद्वरस्य मातुः कन्याया वा साक्षान्मातुः विनाशं विधत्तः कुरुतः । तथा निर्ऋतिजौ मूलोत्पन्नौ श्वशुरं हतः नाशयतः । जनकं जननीं हंति भर्तुर्मूलाहिधिष्ण्यजेति वसिष्ठोक्तेः । तुल्यन्यायत्वात्कन्याया अपि साक्षान्मातरम् । ज्येष्ठेति ज्येष्ठानक्षत्रोत्पन्ना कन्या स्वधवाग्रजं भर्तुर्ज्येष्ठभ्रातरं हंति । शक्राग्निजाविशाखोत्पन्ना देवरस्य भर्तुः कनिष्ठभ्रातुर्नाशकर्त्री । उक्तं च । ऐंद्री पत्यग्रजं हंति देवरं तु द्विदैवजेति ॥ १९ ॥

एतदपवादमनुष्टुभाह—

द्वीशाद्यपादत्रयजा कन्या देवरसौख्यदा ॥
मूलांत्यपादसार्पाद्यपादजाते तयोः शुभे ॥ २० ॥

द्वीशाद्येति ॥ स्पष्टार्थम् । न हंति देवरं कन्या तुलामिश्रद्विदैवजा । तदंतपादजा त्याज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवदिति वृद्धनारदोक्तेः । मूलेति । मूलचतुर्थचरणोत्पन्नौ कन्यासुतौ श्वशुरसौख्यदौ आश्लेषाप्रथमचरणोत्पन्नौ च श्वश्र्वाः । नारदः । सुतः सुता वा नियतं

Aho ! Shrutgyanam

श्वशुरं हंति मूलजौ । तदंत्यपादजौ नैव तथाश्लेषाद्यपादजाविति पुंस्त्वमविवक्षितम् । ज्योतिर्निबंधे मौंजीबंधनानंतरं मूलाश्लेषादोषो नास्तीत्युक्तम् । मूलव्यालोद्भवो दोषः पुंसां मौंज्यां विनश्यतीति भूपालवल्लभवचनादिति तन्न । मूलाश्लेषादोषः शूद्रविषयः पर्यवस्याति तथा ज्येष्ठोत्पन्नः पुमान्पत्न्यग्रजमग्रजां वा हंति विशाखोत्पन्नश्च पत्न्यनुजमनुजां वा हंति । उक्तं च कलत्रपटले । पत्यग्रजामग्रजं वा हंति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यानुजां चैवानुजं हंति द्विदैवज इत्युक्तम् । तत्परिहारश्च तत्रैव । मूलांत्यपादजौ श्रेष्ठौ तथाश्लेषाद्यपादजौ । द्वीशांत्यपादजौ दुष्टौ तद्वज्ज्येष्ठांत्यपादजाविति । ज्येष्ठाविशाखोत्पन्नपुंसः दोषतत्परिहारनिरूपणं ग्रंथेष्वदृष्टत्वादुपेक्ष्यम् ॥ २० ॥

अथाष्टकूटानां नामान्यनुष्टुभाह–

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ॥
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ॥ २१ ॥

वर्ण इति ॥ एते वर्णादिमैत्र्यां सत्यां गुणाधिका एकादिगुणाधिकाः स्युः । यथा वर्णमैत्र्यामेको गुणः वश्ये द्वावित्यादि ॥ २१ ॥

तत्रादौ वर्णकूटं प्रमाणिकयाह–

द्विजाझषालिकर्कटास्ततो नृपा विशोंऽघ्रिजाः ॥
वरस्य वर्णतोऽधिका वधूर्न शस्यते बुधैः ॥ २२ ॥

द्विजा इति ॥ मीनकर्कटवृश्चिका द्विजाः ब्राह्मणाः । ततोऽनंतरमन्ये मेषसिंहधनुराशयो नृपाः क्षत्रियाः । वृषकन्यामकरा विशो वैश्याः । मिथुनतुलाकुंभा अंघ्रिजाः शूद्राः। तत्र वरवधूराश्योर्वर्णौ ज्ञात्वा वरस्य वर्णतो ब्राह्मणादिका वधूरधिका ज्येष्ठवर्णा बुधैर्न शस्यते । किंतु समा हीना वा शस्यत इत्यर्थः । एको गुणः सदृग्वर्णे तथावर्णोत्तमे वरे । हीनवर्णे वरे शून्यं केप्याहुः सदृशे दलमिति ॥ २२ ॥

अथ वश्यकूटमिंद्रवज्रयाह–

हित्वा मृगेंद्रं नरराशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजास्तु भक्ष्याः ॥
सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनालिं ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ॥२३॥

हित्वेति ॥ नरराशयो मिथुनकन्यातुला एषां मेषादयः सर्वेऽपि सिंहं त्यक्त्वा वश्याः । ननु जलचराणां सहानवस्थानात् कथं वश्यत्वं तत्राह । जलजास्तु भक्ष्या इति । एषां नरराशीनां जलजाः मकरकुंभमीनकर्कास्तु भक्ष्याः किंपुनर्वश्या इति सूचयितुं तुशब्दः सिंहस्यालिं वृश्चिकं विना सर्वे वश्याः अन्यदनुक्तं चतुष्पदानां जलचराणां वश्यावश्यं नराणां मनुष्याणां व्यवहारतो ज्ञेयम् । वश्यकूटं वश्यभक्ष्यवैरभेदेन त्रिधा तत्र वरराशेः स्त्रीराशौ वश्ये सति गुणद्वयम् । भक्ष्य एको गुणः वैरे गुणाभावः ॥ २३ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ ताराकूटमनुष्टुभाह—

कन्यर्क्षाद्वरभं यावत् कन्याभं वरभादपि ॥
गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वद्रिभमसत्स्मृतम् ॥ २४ ॥

कन्यर्क्षादिति ॥ कन्यानक्षत्राद्वरनक्षत्रं यावद्गणयेत् तथा वरनक्षत्रादपि कन्यानक्षत्रं गणयेत् । ततोऽवशिष्टेऽके नवभिर्भक्ते यदवशिष्टं तच्चेत्त्रिपंचसप्तमितं भवेत्तदाऽसदशुभं स्मृतम् । अन्यथा एकद्विचतुःषडष्टनवमितं चेत्तदा शुभम् । उभयत्रापि त्रिपंचाद्रिमिते शेषे तारामैत्री नास्त्येव अतो गुणाभावः । एकत्र चेत्तदार्धा मैत्री तदा सार्धैको गुणः उभयत्रापि चेत्त्र्यादिशेषाभावः तदा पूर्णमैत्रीत्यतो गुणत्रयम् ॥ २४ ॥

अथ योनिकूटं शार्दूलविक्रीडितद्वयेनाह—

अश्विन्यंबुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः
सिंहो वस्वजपाद्भयोः समुदितो याम्यांत्ययोः कुंजरः ॥
मेषो देवपुरोहितानलभयोः कर्णांबुनोर्वानरः
स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैव नकुलश्चांद्राब्जयोन्योरहिः ॥ २५ ॥
ज्येष्ठामैत्रभयोः कुरंग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा
मार्जारो दितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोंदुरुः ॥
व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णबुध्न्यर्क्षयो-
र्योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं भयोन्योस्त्यजेत् ॥ २६ ॥

अश्विन्यंबुपयोरिति । ज्येष्ठामैत्रभयोरिति च ॥ अश्विनीशततारकयोर्हयोऽश्वो योनिरुक्तः । एवं स्वातीहस्तयोः कासरो महिषः । लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभा इत्यमरोक्तेः । कर्णः श्रवणः अंबु पूर्वाषाढा तयोर्वानरो मर्कटः । चांद्रं मृगः अब्जयोनिर्ब्रह्मा तद्भं रोहिणी तयोरहिः सर्पः । कुरंगो हरिणः अनुराधाज्येष्ठयोः । द्वीशभं विशाखाचित्रयोर्व्याघ्रः । बुध्न्यर्क्षं उत्तराभाद्रपदा अर्यमोत्तराफाल्गुनी तयोर्गौर्योनिः । अन्यत्स्पष्टम् । फलमाह । पादगयोरिति । एकस्मिन्पादे चरणे गतयोरुक्तनक्षत्रयोन्योः परस्परमहावैरं भवेत् । यथा । अश्विन्यंबुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासर इति पादः तत्रोक्तयोर्भयोन्योरश्वमहिषयोर्महावैरम् । एवं सिंहहस्तिनोरित्यादि एतत्फलमाह । अत्रिः। एकयोनिषु संपत्त्यै दंपत्योः संगमः सदा । भिन्नयोनिषु मध्यः स्यादरिभावो न चेत्तयोः ॥ योनेरथो वैरभावः स तु कार्ये वियोगदः । राशिवश्यं च यद्यस्ति कारयेन्न तु दोषभाक् । अत्रातिवैरवैरोदासीनमैत्रातिमैत्रक्रमेण गुणविभागः गोव्याघ्रादीनां अतिवैरं तत्र गुणाभावः शुनकमार्जारादीनां वैरं तत्रैको गुणः । अश्वमेषादीनामौदास्यं तत्र गुणद्वयम् । गोमेषादीनां मैत्रं तत्र गुणत्रयम् । एकयोनौ अतिमैत्रं तत्र गुणचतुष्टयम् ॥ २५ ॥ २६ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ ग्रहमैत्रीं शार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह–

मित्राणि द्युमणेः कुजेज्यशशिनः शुक्रार्कजौ वैरिणौ
सौम्यश्चास्य समो विधोर्बुधरवी मित्रे न चास्य द्विषत् ॥
शेषाश्चास्य समः कुजस्य सुहृदश्चंद्रेज्यसूर्या बुधः
शत्रुः शुक्रशनी समौ च शशभृत्सूनोः सिताहस्करौ ॥ २७ ॥
मित्रे चास्य रिपुः शशी गुरुशनिक्ष्माजाः समा गीष्पते-
र्मित्राण्यर्ककुजेंदवो बुधसितौ शत्रू समाः सूर्यजः ॥
मित्रे सौम्यशनी कवेः शशिरवी शत्रू कुजेज्यौ समौ
मित्रे शुक्रबुधौ शनेः शशिरविक्ष्माजा द्विषोऽन्यः समः॥२८॥

मित्राणीति । मित्रे चेति ॥ द्युमणेः सूर्यस्य भौमगुरुचंद्राः मित्राणि शुक्रशनी अस्य वैरिणौ अस्य सौम्यो बुधः समः । विधोः चंद्रस्य बुधरवी मित्रे च पुनरस्य विधोर्द्विषत् शत्रुर्नास्ति मंगलगुरुशुक्रशनयः समा एव । अथ भौमस्य गुरुचंद्रसूर्याः मित्राणि बुधः शत्रुः शुक्रशनी समौ । अथ । शशभृत्सूनोः बुधस्य सिताहस्करौ शुक्ररवी मित्रे अस्य बुधस्य शशी शत्रुः गुरुशनिभौमाः समाः । अथ गीष्पतेर्गुरोः सूर्यभौमचंद्राः मित्राणि बुधशुक्रौ शत्रू सूर्यजः शनिः समः । अथ कवेः शुक्रस्य बुधशनी मित्रे चंद्रसूर्यौ शत्रू कुजगुरू समौ । अथ शनेः शुक्रबुधौ मित्रे रविचंद्रभौमा द्विषो वैरिणः अन्यो गुरुः समः । अत्र गुणाविचारः । तत्रैकाधिपतित्वे परस्परमित्रत्वे पंच गुणाः सममित्रत्वे चत्वारः उभयसमत्वे त्रयो गुणाः मित्रवैरे गुणद्वयं समवैरे एको गुणः परस्परं वैरे गुणाभावः ॥२७॥२८॥

अथ गणकूटं वसंततिलकया शालिन्या चाह–

रक्षोनरामरगणाः क्रमतो मघाहि-
वस्विंद्रमूलवरुणानलतक्षराधाः ॥
पूर्वोत्तरात्रयविधातृयमेशभानि
मैत्रादितींदुहरिपौष्णमरुल्लघूनि ॥ २९ ॥
निजनिजगणमध्ये प्रीतिरत्युत्तमा स्या-
दमरमनुजयोः सा मध्यमा संप्रदिष्टा ॥
असुरमनुजयोश्चेन्मृत्युरेव प्रदिष्टो
दनुजविबुधयोः स्याद्वैरमेकांततोऽत्र ॥ ३० ॥

रक्षोनरेति । निजनिजेति ॥ क्रमतो रक्षोनरामरगणाः पादत्रयेणोच्यंते। तक्षा चित्रा राधा विशाखा मघादि एतत्पर्यंतं नक्षत्राणि रक्षोगणः पूर्वात्रयमुत्तरात्रयं विधाता रोहिणी यमो भरणी ईश आर्द्रा एतानि भानि नरगणो मनुष्यगणः मैत्रमनुराधा अदितिः

Aho ! Shrutgyanam

पुनर्वसुः इंदुर्मृगः हरिः श्रवणः पौष्णं रेवती मरुत्स्वाती लघूनि अश्विनीपुष्यहस्ताः एतानि नव भान्यमरगणो देवगण इति ॥ २९ ॥ निजेति । स्वस्वगणे विद्यमानयोः स्त्रीपुरुषनक्षत्रगणयोरत्युत्तमा प्रीतिः स्यात् । अमरमनुजयोर्देवमनुष्ययोः स्त्रीपुरुषयोः परस्परं प्रीतिर्मध्यमा स्यात् । असुरमनुजयो राक्षसमनुष्ययोः स्त्रीपुरुषयोर्मृत्युरेव प्रदिष्टः । प्रबलदुर्बलन्यायेन मनुष्यगणस्यैव नाशः । शार्ङ्गीये । रक्षोगणः पुमान् चेत्स्यात्कन्या भवति मानवी । केपीच्छंति तदोद्वाहं व्यस्तं कोऽपीह नेच्छति ॥ एतत्तुल्यन्यायाद्देवराक्षसयोरपि द्रष्टव्यम् । अस्यापवादमाह गर्गः । रक्षोगणो यदा पुंसां कुमारी नृगणा भवेत् । सद्भकूटं खगप्रीतिर्योनिशुद्धं शुभं तदेति । अत्रेयं गुणकल्पना । नररक्षसोर्महद्वैरं तत्र गुणाभावः देवरक्षसोर्वैरं तत्र गुणाभावः देवमनुष्यत्वे चत्वारः गणैकत्वे षड्गुणाः ॥ ३० ॥

अथ राशिकूटमनुष्टुभाह—

मृत्युः षडष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे ॥
द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ॥ ३१ ॥

मृत्युरिति ॥ स्त्रीपुरुषयोः परस्परं षष्ठाष्टमराशित्वे सति मृत्युर्ज्ञेयः । एवं नवात्मजे नवपंचमेऽपत्यानां हानिः एवं द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं दारिद्र्यं स्यात् । अन्यत्र तृतीयैकादशचतुर्थदशमे समसप्तमे वा सति सौख्यकृत्पाणिपीडनं स्यात् ॥ ३१ ॥

अथास्य दुष्टभकूटस्य परिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

प्रोक्ते दुष्टभकूटके परिणयस्त्वेकाधिपत्ये शुभो-
ऽथोराशीश्वरसौहृदेऽपि गदितो नाड्यृक्षशुद्धिर्यदि ॥
अन्यर्क्षेंशपयोर्बलित्वसखिते नाड्यृक्षशुद्धौ तथा
ताराशुद्धिवशेन राशिवशताभावे निरुक्तो बुधैः ॥ ३२ ॥

प्रोक्ते इति ॥ स्त्रीपुरुषराश्योर्द्वयोरेकाधिपत्ये सति एकस्वामिकत्वे सति प्रोक्ते दुष्टभकूटे षडष्टकादावपि विवाहः शुभो गदितः । यथा । मेषवृश्चिकयोः तुलावृषभयोर्वा नवपंचमे त्वेकाधिपत्याभावः द्विर्द्वादशे मकरकुंभयोः अथवा राशीश्वरयोः राशिस्वामिनोः सौहृदे मैत्रेऽपि यदि नाडीनक्षत्रयोः शुद्धिर्वेधो न भवेत्तदापि दुष्टकूटके विवाहः शुभः । यथा षट्काष्टके मीनसिंहराश्योर्नवपंचमे मेषधनुषोर्द्विर्द्वादशे मीनमेषयोरित्यादौ । तथाच वसिष्ठः । द्विर्द्वादशे वा नवपंचमे वा षट्काष्टके राक्षसयोषितो वा । एकाधिपत्ये भवनेशमैत्रे शुभाय पाणिग्रहणं विधेयमिति । अन्यच्च । विषमात्कन्यकाराशेः षष्ठं षष्ठाष्टकं न सत् । समात्षष्ठं शुभं ज्ञेयं विपरीतं न शोभनम् । अन्यर्क्षेंशपयोरिति । अन्यर्क्षे प्रीतिषट्काष्टकादिभ्योऽन्यराशौ राशिस्वामिनोः परस्परशत्रुत्वे वा सति अंशपयोस्तद्राशिनवांशस्वामिनोर्बलित्वसखिते स्याताम् । बलित्वं च सखिता च प्रथमाद्विवचनांतं पदं बलित्वं उच्चादिस्थानस्थित-

Aho ! Shrutgyanam

त्वेन सबलत्वं सखिता परस्परमैत्री ते उभे चेद्भवतः तथा नाड्यृक्षशुद्धौ नाडीनक्षत्रयोर्वेधाभावे सति तथा ताराशुद्धिवशे च सति राशिवशताभावे च राशिवश्यत्वे च सति दुष्टभकूटकेऽपि विवाहः शुभो निरुक्तः । उक्तं च जगन्मोहने वसिष्ठेन । राशिनाथे विरुद्धेऽपि सबले वंशकाधिपौ । तन्मैत्रेऽपि च कर्तव्यं दंपत्योः सुखमिच्छतेति । अन्यच्च । तस्मिन्नेव प्रकरणे वसिष्ठवाक्यम् । राशिनाथे विरुद्धेऽपि मित्रत्वे चांशनाथयोः । विवाहं कारयेद्धीमान् दंपत्योः सौख्यवर्धनमिति । अत्रैकस्मिन्नेव प्रकरणे वसिष्ठवाक्ययोरन्यवाक्यानर्थक्यापत्तेरुपसंहारन्यायो न प्रवर्तते । तेनावश्यं वाक्यद्वयस्य भिन्नार्थत्वं वाच्यम् । तत्र कस्य कोऽर्थ इति संदेहे न्यूनार्थं द्वितीयं वचनं केवलग्रहवैरापवादकं तुल्यबलत्वात् । अंशनाथसबलत्वाभिधायकं प्रथमवचनमुभयविरोधस्य ग्रहवैरराशिवैररूपस्यापवादकम् । तेन राशिनाथे विरुद्धेऽपीत्यत्र राशी च नाथौ च एतेषां समाहारो राशिनाथं तस्मिन् राशिनाथे । तथा चायमर्थः । राशी विरुद्धौ षट्काष्टकादिना नाथौ विरुद्धौ कयोरित्याकांक्षायां ययोः षट्काष्टकादिविचारस्तयोरेव सन्निहितत्वात् ग्रहणं तयो राश्योर्नाथौ विरुद्धौ मित्राणि द्युमणेरित्यादिना परस्परं शत्रू स्यातां तद्राशिनवांशस्वामिनोः सबलत्वे च समुचिते स विवाहः शुभः । नन्वस्मिन्वाक्ये क्लिष्टव्याख्याने किं मानम् । उच्यते । अंशनाथसबलत्वस्याधिककरणमेव तच्च युगपदुत्पन्नस्य दोषद्वैविध्यस्य राशिविरोधग्रहविरोधरूपस्य परिहाररूपमित्यवगम्यते । अस्मिन्नपि पक्षे नाडीशुद्धिस्ताराशुद्धिः राशिवशता चापेक्षितेति ॥ ३२ ॥

अथदुष्टानां गणकूटभकूटग्रहकूटानां परिहारं शालिन्याह—

मैत्र्यां राशिस्वामिनोरंशनाथद्वंद्वस्यापि स्याद्गुणानां न दोषः ॥
खेटारित्वं नाशयेत्सद्भकूटं खेटप्रीतिश्चापि दुष्टं भकूटम् ॥ ३३ ॥

मैत्र्यामिति ॥ स्त्रीपुरुषयो राशिस्वामिनोर्मैत्र्यां सत्यां तथा राशिनवांशनाथयोर्द्वंद्वस्यापि मैत्र्यां सत्यां दुष्टगुणानां दोषो न स्यात् । अत्रिः । राशीशयोः सुहृद्भावे मित्रत्वे चांशनाथयोः । गणादिदौष्ट्येऽप्युद्वाहः पुत्रपौत्रप्रवर्धनः । अथ सद्भकूटं तृतीयैकादशादिकं खेटारित्वं ग्रहवैरकृतं दोषं नाशयेत् । एवमेव खेटप्रीतिः ग्रहमैत्री चापि दुष्टं भकूटं षडष्टादिकं नाशयेत् । असद्भकूटे गुणाभावः । भकूटदोषापवादे चत्वारो गुणा इति ॥३३॥

अथ नाडीकूटं स्रग्धरयाह—

ज्येष्ठारौद्रार्यमांभःपतिभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी
पुष्येंदुत्वाष्ट्रमित्रांतकवसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या ॥
वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरा स्या-
द्दंपत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां हि मृत्युः ॥ ३४ ॥

Aho ! Shrutgyanam

ज्येष्ठारौद्रेति ॥ ज्येष्ठा रौद्रमार्द्रा अर्यमोत्तराफाल्गुनी अंभःपतिर्वरुणः शततारका एभ्यो नक्षत्रेभ्यो युगयुगं द्वयं द्वयम् ज्येष्ठा मूलम् उत्तरा हस्तः आर्द्रा पुनर्वसुः शततारा पूर्वाभाद्रपदा दास्रभमश्विनी च । एतन्नक्षत्रनवकं परस्परमेकनाडीत्युच्यते । पुष्यमृगचित्रानुराधा भरणी धनिष्ठा पूर्वाषाढा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराभाद्रपदा एतन्नक्षत्रनवकं मध्यनाडीत्युच्यते । अथ वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगं वायुः स्वाती तद्युगं द्वयं स्वाती विशाखा अग्निः कृत्तिका रोहिणी व्यालः आश्लेषा मघा विश्वोडुयुगं विश्वे उत्तराषाढा श्रवणश्च पौष्णभं रेवती एतन्नक्षत्रनवकं अपरा तृतीयैकनाडीत्युच्यते । एतत्फलमाह । दंपत्योः स्त्रीपुंसयोः एकनाड्यां परिणयनमसद्दुष्टफलं स्यात् । मध्यनाड्यां हि निश्चयेन मृत्युर्द्वयोरपि स्यात् नारदेन तु विशेष उक्तः । चतुस्त्रिद्व्यंघ्रिभोत्थायाः कन्यायाः क्रमशोऽश्विभात् । वह्निभादिंदुभान्नाडीत्रिचतुःपंचपर्वसु ॥ गणयेत्संख्यया चैकनाड्यां मृत्युर्न संशयः । एकनाडीविवाहश्च गुणैः सर्वैः समन्वितः ॥ वर्जनीयः प्रयत्नेन दंपत्योर्निधनं यत इति । अमुमर्थं स्पष्टमाह गर्गः । चतुष्पात्कन्यका ऋक्षं गणयेदश्विभादिकम् । त्रिभं सव्यापसव्येन भिन्नं पर्वशुभावहम्[1] ॥ कन्यकाभं त्रिपाच्चेत्स्याद्गणयेत्कृत्तिकादिकम् । चतुर्भिः पर्वभिस्तद्वदभिजित्तारकान्वितम् ॥ कन्यकर्क्षं[2] द्विपाच्चेत्स्याद्गणयेत्सोम्यभादिकम् । पंचभिस्त्ववरोहे तु पंचमांगुलिवर्जितम् ॥ एतत्फलमप्याह गर्गः । संश्लिष्टा मध्यनाडी तु पुरुषं हंति वेगतः । संश्लिष्टा पार्श्वनाडी तु कन्यकां हंत्यसंशयमिति । आसन्ना त्वेकनाडी स्यादासन्नमृतिदायिनी । दूरस्था चैकनाडी स्याद्दूरस्थानिष्टकारिणीति । नाडीविचारे चंडेश्वरः । पृष्ठमध्ये शुभसमन्वितभोगः क्रोडे वनितावित्तवियोगः । मध्ये रेखे भवति विवाहे उभयोर्मरणं वदति वराहः अश्व्यादिनाडीवेधर्क्षे क्रमात्षष्ठद्वितीयकम् । याम्यादितुर्यतुर्यं च कृत्तिकादिद्विषष्ठकम् । अन्यच्च । अर्केंदुजक्षोणितनूजजीवाः केतुः सितो राहुशशांकसौराः । जन्मादिनाडीत्रितये शुभाः स्युः शुभे शुभं स्यादशुभेऽशुभं च ॥ तद्यथा । अर्कः १, १०, १९ बुधः २, ११, २० मंगलः ३, १२, २१ बृहस्पतिः ४, १३, २२ केतुः ५, १४, २३ शुक्रः ६, १५, २४ राहुः ७, १६, २५ चंद्रः ८, १७, २६ शनिः ९, १८, २७ शुभग्रहनाडीनक्षत्रे शुभकार्यं कुर्यान्नाशुभग्रहनाडीनक्षत्रे इत्यर्थः । चतुर्नाडी त्वहल्यायां पांचाले पंचनाडिका । त्रिनाडी सर्वदेशेषु वर्जनीया प्रयत्नत इति । मनुस्तु । अहल्यायां चतुर्नाडीसंयोगः कालमृत्युदः । एष योगोऽन्यदेशेषु ह्यपमृत्युफलप्रदः ॥ पंचनाडीसमयोगः पांचाले कालदंडदः इतरत्र समायोगो दुःखदारिद्र्यदोषकृत् ॥ त्रिनाड्यां तु समायोगः सर्वत्रानिष्टकारक इति । आवश्यकत्वे गुरुः । दोषापनुत्तये नाड्यां मृत्युंजयजपादिकम् । विधाय ब्राह्मणांश्चैव तर्पयेत्कांचनादिना ॥ हिरण्मयीं दक्षिणां च दद्याद्वर्णादिकूटके । गावोऽन्नवसनं हेम सर्वदो-

---

१ सुखावहमित्यपि पाठः । २ कन्यर्क्षमित्यपि पाठः ।

Aho ! Shrutgyanam

षापहारकमिति । अन्यच्च । षट्काष्टके गोमिथुनं प्रदद्यात्कांस्यं सरूप्यं नवपंचमेऽपि । वस्त्रं प्रदेयं कनकं च शक्त्या द्विर्द्वादशे ब्राह्मणतर्पणं चेति ॥ ३४ ॥

अथेंद्रवज्रया पूर्वमध्यापरभागयोगीनि भान्याह—

पौष्णेशशक्राद्रससूर्यनंदा
पूर्वार्धमध्यापरभागयुग्भम् ॥
भर्ता प्रियः प्राग्युजि भे स्त्रियाः स्या-
न्मध्ये द्वयोः प्रेमपरे प्रिया स्त्री ॥ ३५ ॥

पौष्णेति ॥ पौष्णाद्रेवत्याः षट् भम् भानि जात्यभिप्रायमेकवचनम् । पूर्वार्धयोगीनि ज्ञेयानि आर्द्रादिद्वादश मध्यभागयोगीनि ज्ञेयानि । ज्येष्ठादीनि नव अपरभागयोगीनि ज्ञेयानि । फलमाह । भर्ता प्रिय इति । अयं भावः । राज्ञामंतःपुरस्थस्त्रीसमागमे गणिकादिसमागमे वा पूर्वार्धयुजि नक्षत्रे सति स्त्रीणां भर्ता प्रियः मध्यभागयुजि भे परस्परं प्रीतिर्भवेत् । परे परभागयुजि भे स्त्री नृणां प्रिया भवेदिति । एवं वधूवरयोर्नवसमागमेऽपि ज्ञेयमिति रत्नमालाटीकायां महादेवेनोक्तम् ॥ ३५ ॥

अथ प्राच्यसंमतं वर्गकूटमार्ययाह—

अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम् ॥
सर्पाखुमृगावीनां निजपंचमवैरिणामष्टौ ॥ ३६ ॥

अकचटेति ॥ अज्वर्गोऽवर्गसंज्ञकः कुचुटुतुपु इति पंचवर्गाः एको यवर्गोऽन्यः शवर्गः एवमष्टौ वर्गाः । तत्र अवर्गः खगेशस्य गरुडस्य कवर्गो मार्जारस्य चवर्गः सिंहस्य टवर्गः शुनः तवर्गः सर्पस्य पवर्ग आखोर्मूषकस्य यवर्गो मृगस्य शवर्गोऽवेर्मेषस्य । अत्र निजात् स्वस्मात् पंचमा वैरिणो येषां ते तथोक्ताः गरुडसर्पयोर्मार्जारमूषकयोः सिंहमृगयोः श्वमेषयोः परस्परं महावैरमित्यर्थः। स्त्रीपुंसयोर्नक्षत्रद्वयं भक्ष्यभक्षकवर्गे चेत्तदा अशुभम् । यदा त्वेकवर्गे तदा शुभम् । एतच्च स्वामिसेवकयोरपि विचार्यम् ॥ ३६ ॥

इदानीं नक्षत्रराश्यैक्ये विशेषं शालिन्याह—

राश्यैक्ये चेद्भिन्नमृक्षं द्वयोः स्यान्नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं तथैव ॥
नाडीदोषो नो गणानां च दोषो नक्षत्रैक्ये पादभेदे शुभं स्यात् ३७

राश्यैक्ये चेदिति ॥ द्वयोर्वधूवरयोः एकराशित्वे सति यदि भिन्नमृक्षं स्यात्तदा नाडीदोषो गणानां च दोषो न स्यात् । यथा । शततारा पूर्वाभाद्रपदापादत्रयं च तथैव नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं राशिद्वयं चेत्स्यात्तदापि प्रागुक्तो दोषो न स्यात् यथा पूर्वाभाद्रपदापादत्रयं चतुर्थचरणश्च अत्रापि विशेषमाह गर्गः । एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये पुंतारा प्रथमा भवेत् । अतीव शोभना प्रोक्ता स्त्रीतारा चेत्त्वशोभना । अथैकराशिनक्षत्रैक्येऽपवादमाह ।

Aho ! Shrutgyanam

नक्षत्रैक्य इति । वधूवरयोः राश्यैक्ये नक्षत्रैक्ये च यदि चरणभेदस्तदापि शुभं स्यात् । जन्मनक्षत्राज्ञाने उपायमाह । वसिष्ठः । अज्ञातजन्मनां नृणां नामभे परिकल्पना । तेनैव चिंतयेत्सर्वं राशिकूटादि जन्मवत् ॥ जन्मभं जन्मधिष्ण्येन नामभं नामधिष्ण्यतः । व्यत्ययेन यदा योज्यं दंपत्योर्निधनप्रदमिति ॥ ३७ ॥

सेवकादिभस्य स्वाम्यादिभात् पूर्वत्वे विशेषं वसंततिलकयाह—

सेव्याधमर्णयुवतीनगरादिभं चे-
त्पूर्वं हि भृत्यधनिभर्तृपुरादि सद्भात् ॥
सेवाविनाशधननाशनभर्तृनाश-
ग्रामादिसौख्यहृदिदं क्रमशः प्रदिष्टम् ॥ ३८ ॥

सेव्याधमर्णेति ॥ स्पष्टार्थम् । तथा चोक्तं डामरसंग्रहे । भामिनीजन्मनक्षत्राद्द्वितीयं पतिजन्मभम् । न शुभं भर्तृनाशाय कथितं ब्रह्मयामले ॥ प्रथमं सेव्यजन्मर्क्षं द्वितीयं सेवकस्य च । न सेवा सुस्थिरा तस्य जलबुद्बुदवत्प्रियेति ॥ ऋणग्राहकजन्मर्क्षं प्रथमं ऋणदस्य भात् । द्वितीयमृणसंबंधो न कर्तव्यः कदाचन ॥ कदाचिद्द्रव्यलोभेन क्रियते नैव लभ्यते । पार्वतीप्राणनाथेन प्रोक्तं डामरसंग्रहे ॥ ग्रामभं प्रथमं यस्य द्वितीयं जन्मभं भवेत् । न ग्राह्यः सर्वथा ग्रामो यतः प्राप्यार्थनाशद इति ॥ ३८ ॥

अथ राशिस्वामिनो नवांशविधिं च मंजुभाषिण्याह—

कुजशुक्रसौम्यशशिसूर्यचंद्रजाः
कविभौमजीवशनिसौरयो गुरुः ॥
इह राशिपाः क्रियमृगास्यतौलिकें-
दुभतो नवांशविधिरुच्यते बुधैः ॥ ३९ ॥

कुजशुक्रेति ॥ स्पष्टार्थम् । क्रियमृगास्येति । क्रियो मेषः मृगास्यं मकरः तौलिकं तुला इंदुभं कर्कः एभ्यो राशिभ्यो बुधैर्नवांशविधिरुच्यते । मेषे मेषादेव वृषे मकरात् मिथुने तुलातः कर्के कर्कादेव एवं सिंहे मेषात् कन्यादिषु मकरादिभ्यः एवमेव धनुरादिष्वपि मेषादिभ्य एव ॥ ३९ ॥

अथ होरां गायत्रीच्छंदोभेदेन शशिवदनावृत्तेनाह—

समगृहमध्ये शशिरविहोरा ॥
विषमभमध्ये रविशशिनोः सा ॥ ४० ॥

समगृहेति ॥ पंचदशभागमितैकैका होरा ततः समराशिमध्ये प्रथमा चंद्रस्य द्वितीया सूर्यस्य विषमराशिमध्ये प्रथमा रवेरपरा चंद्रस्येत्यर्थः ॥ ४० ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ त्रिंशांशद्रेष्काणान् वसंततिलकयाह—

शुक्रज्ञजीवशनिभूतनयस्य बाणशै-
लाष्टपंचविशिखाः समराशिमध्ये ॥
त्रिंशांशको विषमभे विपरीतमस्माद्रे-
ष्काणकाः[1] प्रथमपंचनवाधिपानाम् ॥ ४१ ॥

शुक्रेति ॥ समराशिमध्ये क्रमेण प्रथमतः पंचांशानां शुक्रः स्वामी ततः शैलानां सप्तानां बुधः ततोऽष्टानां गुरुः ततः पंचानां शनिः ततः पंचानां भौमः विषमभे तु अस्मात्समराशेऽर्विपरीतं ज्ञेयम् । प्रथमतः पंचानां भौमः ततः पंचानां शनिः ततोऽष्टानां जीवः ततः सप्तांशानां बुधः ततः पंचानां शुक्रः अयं त्रिंशांशकसंज्ञः । द्रेष्काणका इति । अस्य प्रमाणं दशांशाः तत्र प्रथमदशांशः प्रथमो द्रेष्काणः स प्रथमस्य स्वाधीशस्य ततो दशांशाः विंशतिभागपर्यंतं द्वितीयो द्रेष्काणः स स्वराशितः पंचमराशीश्वरस्य ततो विंशतिभागानंतरं दशांशास्तृतीयो द्रेष्काणः स स्वराशेर्नवमाधीश्वरस्य यथा मेषे प्रथमद्रेष्काणो भौमस्य द्वितीयः सूर्यस्य तृतीयो गुरोरिति ॥ ४१ ॥

अथ द्वादशांशं षड्वर्गोपसंहारं च सफलं वसंततिलकयाह—

स्याद्वादशांश इह राशित एव गेहं
होराथ दृक्कनवमांशकसूर्यभागाः ॥
त्रिंशांशकश्च षडिमे कथितास्तु वर्गाः
सौम्यैः शुभं भवति चाशुभमेव पापैः ॥ ४२ ॥

स्याद्वादशांश इति ॥ इह षड्वर्गे द्वादशांशः राशितः स्वराशेरेव सार्धभागद्वयात्मको ज्ञेयः मेषस्य मेषादिः वृषस्य वृषादिरित्यर्थः । गेहं होराद्दक्कः नवमांशः द्वादशांशः त्रिंशांशः इमे षड्वर्गाः कथिताः । एते वर्गाः सौम्यग्रहाणां चेद्भवंति तदा शुभम् पापानां चेदशुभम् मिश्राश्चेदधिकवर्गसदृशं फलम् । अत्र नारदादिभिरेकविंशतिर्महादोषा उक्ताः यथा । पंचांगशुद्धिरहितो दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्तितः । उदयास्तशुद्धिरहितो द्वितीयः सूर्यसंक्रमः ॥ तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः । गंडांतं कर्तरी रिःफषडष्टेंदुश्च सग्रहः ॥ दंपत्योरष्टमं लग्नं राशिर्विषघटी तथा । दुर्मुहूर्तो वारदोषः खार्जूरिकसमांघ्रिभम् ॥ ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम् । कुनवांशो महापातवैधृतावेकविंशतिरिति । अन्यैस्तु दश दोषा उक्ताः । वेधश्च लत्ता च तथा च पातः खार्जूरयोगं दशयोगचक्रम् । पुनश्च जामित्रमुपग्रहाश्च बाणाख्यवज्रौ दश चैव दोषा इति । अत्र ग्रंथकृता लक्षणस्य पृथग्वक्तव्यत्वाद्दोषनामानि नोक्तानि । तत्र पंचांगशुद्धिदुर्मुहूर्तवारदोषग्रहणोत्पातनक्षत्रदोषा आद्ये

[1] द्रेक्काणका इत्यपि पाठः ।

Aho ! Shrutgyanam

शुभाशुभप्रकरणे निरूपिता एवेति पुनर्नोच्यंते। दुर्मुहूर्तवारदोषयोः पुनरभिधानप्रयोजनं तत्रैव वक्ष्यामः। तत्र पापषड्वर्गाख्यो दोषः कुजशुक्रेत्यादिभिश्चतुर्भिः श्लोकैर्निरूपितः ॥४२॥

अथ गंडांतदोषं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

ज्येष्ठापौष्णभसार्पभांत्यघटिकायुग्मं च मूलाश्विनी-
पित्र्यादौ घटिकाद्वयं निगदितं तद्भस्य गंडांतकम् ॥
कर्काल्यंडजभांततोऽर्धघटिका सिंहाश्वमेषादिगा
पूर्णांताद्घटिकात्मकं त्वशुभदं नंदातिथेश्चादिमम् ॥ ४३ ॥

ज्येष्ठापौष्णेति ॥ गंडांतं नाम संधिविशेषः स चानेकविधः नक्षत्रतिथिलग्नसंधिः तथा योगकरणवर्षायनर्तुमासपक्षदिनरात्रिमध्याह्नप्रातःसायंनिशीथसंधिश्चेति। तत्र नक्षत्रतिथिलग्नसंधिर्गंडांतसंज्ञ उच्यते। ज्येष्ठा पौष्णभं रेवती सार्पभमाश्लेषा एतेषामंत्यघटिकाद्वयं तथा मूलाश्विनीमघानामादौ घटिकाद्वयं तद्भस्य नक्षत्रस्य गंडातं ज्ञेयम्। यथा। रेवत्यश्विन्योराश्लेषामघयोर्ज्येष्ठामूलयोरंतरालवर्तिघटीचतुष्टयं नक्षत्रगंडांतमशुभदमित्यर्थः। अथ लग्नगंडांतं कर्केति कर्कः अलिर्वृश्चिकः अंडजो मीनः। मीनो वैसारिणोंडज इत्यभिधानात्। एषां लग्नानामंततोऽर्धघटिका। सप्तम्यर्थे तसिः। अंतेऽर्धघटिका तथा सिंहमेषौ प्रसिद्धौ अश्वो धनुः एषां लग्नानां आदिगतार्धघटिका लग्नगंडातम् यथा कर्कसिंहयोर्मीनमेषयोर्वृश्चिकधनुषोश्चांतरालवर्तिन्येका घटिका तिथिगंडांतमशुभदमित्यर्थः। पूर्णांतादिति। पूर्णाः पंचमी दशमी पंचदश्यस्तासामंते घटिकैका तथा नंदाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः तासामादिगतैका घटिका तिथिगंडांतं नाम यथा पंचमीषष्ठ्योः दशम्येकादश्योः पंचदशीप्रातिपदोः तिथ्योरंतरालवर्ति घटीद्वयं तिथिगंडांतमशुभमित्यर्थः। एवं गंडांतसंज्ञः संधिः अतोऽन्येऽपि संधयो वसिष्ठेनोक्ताः। पक्षोऽब्दसंधिस्त्रिदिनं च माससंधिस्त्रिनाड्यः खलु संध्ययोश्च। नाड्यश्चतस्त्रस्तिथिऋक्षयोगसंधिस्तदर्धं करणस्य संधिः॥ पक्षांते पुत्रनाशः स्यान्मासांते तु धनक्षयः। वर्षांते वर्गनाशः स्यात्करणात्सर्वनाशनमिति ॥ आवश्यकत्वे तु। नक्षत्रयोगतिथिसंधिषु नाडिकैका तिथ्यष्टविंशतिपलैः सहितोभयत्र। कर्कालिमीनतनुसंधिषु दिक्पलानि वर्ज्यानि शेषविवरेषु च पंच पंचेति। वासनासिद्धं केशवार्कवाक्यमनुसर्तव्यम्। गंडांतपरिहारमाह वसिष्ठः। गंडांतदोषमखिलं मुहूर्ताभिजिदाह्वयः। हंति यद्वन्मृगं व्याधः पक्षिसंघमिवाखिलमिति ॥ ४३ ॥

अथकर्तरीदोषमनुष्टुभाह—

लग्नात्पापावृज्वनृजू व्ययार्थस्थौ यदा तदा ॥
कर्तरी नाम सा ज्ञेया मृत्युदारिद्र्यशोकदा ॥ ४४ ॥

लग्नात्पापाविति ॥ यदा पापग्रहौ ऋज्वनृजू लग्नाद्व्ययार्थस्थौ द्वादशस्थः पाप-

Aho ! Shrutgyanam

ग्रहो ऋजुमार्गी द्वितीयस्थः पापोऽनृजुर्वक्री स्यात्तदा कर्तरीनामदोषः स्यात् मृत्युदारिद्र्यशोकदा भवेत् । कर्तरीकारकौ ग्रहौ उभावपि वक्रिणौ शीघ्रगौ वा तदा कर्तरी नेत्याह । वसिष्ठः । लग्नस्य पृष्ठाग्रगयोरसाध्वोः सा कर्तरी स्यादृजुवक्रगत्योः । तावेव शीघ्रौ यदि वक्रचारौ न कर्तरी चेति पितामहोक्तिरिति । इयं कर्तरी चंद्रस्यापि द्रष्टव्या । कश्यपः । चंद्रस्य कर्तरी तद्वच्छुभदृष्टा न दोषदेति । परंतु लग्नस्य चंद्रस्य वा क्रूरमध्यगतत्वदोषोऽस्त्येव कर्तरीतः स्वल्पफलः कन्यानाशकरत्वात् । क्रूरग्रहमध्यगते लग्ने चंद्रेऽथवा करग्रहणम् । ते यमसदनाभिमुखं गमनं स्वेच्छंति कन्याया इति वसिष्ठोक्तेः । कर्तरीदोषापवादमग्रे स्वयमपि वक्ष्यति ॥ ४४ ॥

अथ सग्रहदोषमनुष्टुभाह—

चंद्रे सूर्यादिसंयुक्ते दारिद्र्यं मरणं शुभम् ॥
सौख्यं सापत्न्यवैराग्ये पापद्वययुते मृतिः ॥ ४५ ॥

चंद्रेति ॥ सूर्ययुक्ते चंद्रे दारिद्र्यं स्यात् । एवं भौमादिषु मरणादिफलं क्रमेण स्यादित्यर्थः । पापद्वययोगे चंद्रस्य मृतिः स्यात् । नारदादिभिर्बुधगुरुराहित्यफलमशुभमुक्तम् । अत्र तु श्रीपतिवाक्यानुरोधात् वसिष्ठेन च केचिन्मते शुभत्वोक्तेश्च शुभमुक्तम् । श्रीपतिः । शुभं च दंभोलिभृदीज्यविद्भ्यामिति । वसिष्ठः । दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन न स्युः प्रजा दौर्भाग्यं गुरुणा सितेन सहिते चंद्रे ससापत्न्यकम् । प्रव्रज्यार्कसुतेन सद्ग्रहयुजौ वांछंति केचिच्छुभं व्याद्यैर्मृत्युरसद्ग्रहैः शशियुतैर्दीर्घः प्रवासः शुभैरिति । एतत्परिहारो नारदेनोक्तः । स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतो विधुः । युतिदोषाय न भवेद्दंपत्योः श्रेयसे तदेति ॥ ४५ ॥

अथाष्टमलग्नदोषं सापवादमनुष्टुभाह—

जन्मलग्नभयोर्मृत्युराशौ नेष्टः करग्रहः ॥
एकाधिपत्ये राशिशमैत्रे वा नैव दोषकृत् ॥ ४६ ॥

जन्मलग्नभयोरिति ॥ जन्मलग्नजन्मराशिसंबंधिनि मृत्युराशौ अष्टमराशौ अष्टमलग्ने करग्रहो विवाहो नेष्टः । अत्र जन्मलग्ने जन्मराशौ च विशेषमाह नारदः । जन्मराश्युद्गमे नैव जन्मलग्नोदयः शुभः । तयोरुपचयस्थानं यदि लग्नगतं शुभम् । अष्टमलग्नापवादमाह । एकेति । जन्मराशिजन्मलग्नयोरन्यतरस्य विवाहलग्नस्य च स्वाम्यैक्ये सति यथा मेषवृश्चिकयोः तथा तयो राशीश्वरयोर्मैत्रे सति यथा सिंहमीनयोः एतादृशे विषये अष्टमलग्नदोषो न स्यात् ॥ ४६ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथोत्तरार्धोक्तमेवार्थं स्पष्टमुपजातिकयाह–

मीनोक्षकर्कालिमृगस्त्रियोऽष्टमं लग्नं यदा नाष्टमगेहदोषकृत् ॥
अन्योन्यमित्रत्ववशेन सा वधूर्भवेत्सुतायुर्गृहसौख्यभागिनी ॥ ४७ ॥

मीनोक्षेति ॥ उक्षा वृषः स्त्री कन्या एते राशयो यद्यष्टमं लग्नं स्युस्तदाष्टमलग्नदोषकृन्न भवेत् । यथा सिंहान्मीन इत्यादि । कुत इत्यत आह । अन्योऽन्येति परिहारांतरमाह गुरुः । लग्नादष्टमराशीशः केंद्रगः शुभवीक्षितः । यद्यष्टमगतस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति ॥ रंध्रेशः स्वशुभांशस्थस्तुंगस्वक्षेत्रमित्रगः । अष्टमस्थानदोषो हि विनश्यति न संशय इति ॥ ४७ ॥

अथान्यदपि कुसुमविचित्राच्छंदसाह–

मृतिभवनांशो यदि च विलग्ने तदधिपतिर्वा न शुभकरः स्यात् ॥
व्ययभवनं वा भवति तदंशस्तदधिपतिर्वा कलहकरः स्यात् ॥ ४८ ॥

मृतीति ॥ अष्टमभवननवांशो यदि लग्ने स्यादथवाष्टमलग्नेशः स्यात्तदा शुभकरो न स्यात् । अथ व्ययभवनं जन्मलग्नजन्मराशीभ्यां द्वादशभवनम् अथवा व्ययभवनांशः अथवा तत्स्वामी यदि लग्ने स्यात्तदा कलहकृत्स्यात् । कश्यपः । दंपत्योरष्टमे लग्ने राशौ वापि तदंशके । तदीशे वा लग्नगते तयोर्मृत्युर्न संशय इति । तथैव द्वादशे लग्ने तदंशे वा तदीश्वरे । विवाहलग्नगे नैस्व्यं नित्यः स्यात्कलहो द्वयोरिति ॥ ४८ ॥

अथ विषघटीदोषं वंशस्थाभ्यामिंद्रवज्रया चाह–

खरामतो ३०ऽत्यादितिवह्निपित्र्यभे
खवेदतः ४० के रदत ३२ श्च सार्पभे ॥
खबाणतो ५० ऽश्वे धृतितो १८ऽर्यमांबुपे
कृते २० भगत्वाष्ट्रभविश्वजीवभे ॥ ४९ ॥
मनो १४ र्द्विदैवानिलसौम्यशाक्रभे
कुपक्षतः २१ शैवकरेष्टि १६ तोऽजभे ॥
युगाश्वितो २४ बुध्न्यभतोययाम्यभे
खचंद्रतो १० मित्रभवासवश्रुतौ ॥ ५० ॥
मूलेंगबाणा ५६ द्विषनाडिकाः कृता
वर्ज्याः शुभेऽथो विषनाडिका ध्रुवाः ॥
निघ्नाभभोगे नखतर्क ६० भाजिताः
स्फुटा भवेयुर्विषनाडिकास्तथा ॥ ५१ ॥

खरामेति । मनोरिति । मूले इति ॥ रेवतीपुनर्वसुकृत्तिकामघानक्षत्रेषु ख

Aho ! Shrutgyanam

रामतस्त्रिंशद्धटिकोत्तरं कृताश्चतस्रो घटिकाः विषनाडिकाः शुभकार्ये वर्ज्याः स्युरिति तृतीयश्लोकेनान्वयः । एवं सर्वत्र व्याख्येयम् । के रोहिण्याम् अजभे पूर्वाभाद्रपदायाम् तदेवं षष्टिघटिकात्मके नक्षत्रभोगे ध्रुवका उक्ताः । न्यूनाधिकत्वे स्पष्टीकरणमाह । अथो इति । विषनाडिका ध्रुवाः खरामत इत्येवमादयः इष्टनक्षत्रभोगेन निघ्नाः खतर्कैः षष्ट्या भाजिताः तथा विषनाडिका अपि भोगेन निघ्नाः षष्ट्या भाजिताः लब्धाः स्पष्टा भवेयुरित्यर्थः । परिहारमाह गुरुः । चंद्रो विषघटीदोषं हंति केंद्रत्रिकोणगः । लग्नं विना शुभैर्दृष्टः केंद्रे वा लग्नपस्तथेति । विषनाड्युत्थितं दोषं हंति सौम्यर्क्षगः शशी । मित्रदृष्टोऽथवा स्वीयवर्गस्थो लग्नपोऽपि वेति । दैवज्ञमनोहरे तिथिवारविषघटिका उक्ताः । तिथीषुनागाद्रिगिरीषुवारिधिर्गजाद्रिदिक्पावकदिग्विभाकराः । मुनीभसंख्याः प्रथमात्तिथेः क्रमात्परं विषं स्याद्धटिकाचतुष्टयम् १९, ९, ८, ७, ७, ९, ४, ८, ७, १०, ३, १०, १२, ७, ८ नखा द्वयं द्वादश दिक् च शैला बाणाश्च तत्त्वानि यथाक्रमेण । सूर्यादिवारेषु परं चतस्रो नाड्यो विषं स्यात्खलु वर्जनीयम् २०, २, १२, १०, ७, ५, २५ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ दुर्मुहूर्तदोषं विवक्षुरादौ दिवामुहूर्तान्मालिनीछंदसाह—

गिरिशभुजगमित्राः पित्र्यवस्वंबुविश्वे-
ऽभिजिदथ च विधातापींद्र इंद्रानलौ च ॥
निर्ऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाथो भगः स्युः
क्रमश इह मुहूर्ता वासरे बाणचंद्राः ॥ ५२ ॥

गिरिशेति ॥ अथ बाणचंद्रा इत्युक्तेर्दुर्मुहूर्तस्य पार्थक्येन लक्षणं नोक्तम् । इंद्रानलौ इंद्राग्नी एते वासरे पंचदश मुहूर्ताः स्युः ॥ ५२ ॥

रात्रिमुहूर्ताननुष्टुभाह—

शिवोऽजपादादष्टौ स्युर्भेशा अदितिजीवकौ ॥
विष्णवर्कत्वाष्ट्रमरुतो मुहूर्ता निशि कीर्तिताः ॥ ५३ ॥

शिव इति ॥ प्रथममुहूर्तस्वामी शिव एवं अजपादादष्टौ भेशाः नक्षत्रस्वामिनो मुहूर्तेशाः स्युः । यथा अजपादः अहिर्बुध्न्यः पूषा अश्विनौ यम अग्निः ब्रह्मा सोम इत्यष्टौ ततो दशममुहूर्तोऽदितिः जीवको गुरुः विष्णवर्कत्वाष्ट्रमरुतः प्रसिद्धाः एते सर्वे निशि मुहूर्ताः प्रकीर्तिताः । अह्नः पंचदशो भागो मुहूर्तोऽथ तथा निशीति कश्यपोक्तेः ॥ ५३ ॥

अथ दुर्मुहूर्तान् भुजंगप्रयातेनाह—

रवावर्यमा ब्रह्मरक्षश्च सोमे कुजे
वह्निपित्र्ये बुधे चाभिजित्स्यात् ॥

Aho ! Shrutgyanam

गुरौ तोयरक्षौ भृगौ ब्राह्मपित्र्ये
शनावीशसार्पौ मुहूर्तौ निषिद्धाः ॥ ५४ ॥

रवावर्यमेति ॥ रवौ अर्यमा मुहूर्तो निषिद्धः एवं सोमे ब्रह्मरक्षः। द्वंद्वैकत्वम्। ब्रह्मरक्षःस्वामिकौ मुहूर्तौ निषिद्धौ अन्यत्स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

अथ वेधं विवक्षुर्विहितनक्षत्रादिकमभिजिन्मानं च प्रहर्षिण्याह—

निर्वेधैः शशिकरमूलमैत्रपित्र्यब्रा-
ह्मांत्योत्तरपवनैः शुभो विवाहः ॥
रिक्तामारहिततिथौ शुभेऽह्नि वैश्वप्रां-
त्यांघ्रिः श्रुतितिथिभागतोऽभिजित्स्यात् ॥ ५५ ॥

निर्वेधैरिति ॥ वेधरहितैर्मृगादिनक्षत्रैर्विवाहः शुभः। रिक्तेति रिक्तामा ४, ९, १४, ३० आभिर्वर्जिततिथिषु शुभेऽह्नि शुभग्रहवारे विवाहः शुभः। अभिजिल्लक्षणमाह। अथ वैश्वेति। वैश्वमुत्तराषाढा तस्य प्रांत्यांशश्चतुर्थचरणः श्रुतेः श्रवणस्य तिथिभागः पंचदशांशो मिलित्वाभिजिद्योगः स्यात् ॥ ५५ ॥

अथ वेधदोषं पंचशलाकाचक्रोद्धारनिरपेक्षं स्पष्टं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वेधोऽन्योन्यमसौ विरिंच्यभिजितोर्याम्यानुराधर्क्षयो-
र्विश्वेंद्वोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तराभाद्रयोः ॥
स्वातीवारुणयोर्भवेन्निर्ऋतिभादित्योस्तथोपांत्ययोः
खेटे तत्र गते तुरीयचरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः ॥ ५६ ॥

वेधोऽन्योन्यमिति ॥ विरिंच्यभिजितोः रोहिण्यभिजितोर्ग्रहकृतो वेधोऽन्योन्यं परस्परं भवेत्। रोहिणीस्थे ग्रहेऽभिजिद्विद्धः अभिजित्स्थे रोहिणी विद्धा। एवं सर्वत्र व्याख्येयम्। चरणवेधमाह। खेट इति। तत्र तस्मिन्नक्षत्रे विद्यमाने ग्रहे सति यदि चतुर्थपादेऽस्ति तदा परनक्षत्रस्य प्रथमपादस्य वेधः। यदि तृतीयपादे तदा द्वितीयचरणस्य वेधः। एवं यदा द्वितीयपादे तदा तृतीयपादस्य वेधः। यदि प्रथमपादे तदा चतुर्थपादस्य वेध इत्यर्थः। अयं चरणवेधः सौम्यग्रहपर एव। नारदः। पादमेवं शुभैर्विद्धमशुभैर्नैव कृत्स्नत इति। क्रूरविद्धं युतं धिष्ण्यं क्रूराक्रांतं च कृत्स्नभम्। मणिहेममयं हर्म्यं भूताक्रांतमिव त्यजेदिति। श्रीपतिः। वधूप्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने। वेधः पंचशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाकक इति। ज्योतिर्निबंधे गर्गः। मघायाः प्रथमे पादे मूलस्य प्रथमे तथा। रेवत्याश्च चतुर्थेऽशे विवाहः प्राणनाशन इति तद्वंडांतांतरं ज्ञेयम् ॥ ५६ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ विवाहादन्यत्र यज्ञोपवीतादौ कैश्चिद्विवाहेऽपि सप्तशलाकाचक्रवेधो वर्ज्य उक्तस्तदर्थं चक्रन्यासं विनैव सप्तशलाकावेधं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शाक्रेज्ये शतभानिले जलशिवे पौष्णार्यमर्क्षे वसु-
द्वीशे वैश्वसुधांशुभे हयभगे सार्पानुराधे मिथः ॥
हस्तोपांतिमभे विधातृविधिभे मूलादिती त्वाष्ट्रभा-
जांघ्री याम्यमघे कृशानुहरिभे विद्धे कुभृद्रेखिके ॥ ९७ ॥

शाक्रेज्ये इति ॥ कुभृद्रेखिके सप्तशलाकाचक्रे शाक्रेज्ये ज्येष्ठापुष्यनक्षत्रे मिथः परस्परं क्रूराधिष्ठितत्वेन विद्धे ज्ञेये। एवं जलशिवे पूर्वाषाढार्द्रे इत्यादि व्याख्येयम्। दीपिकायाम् । यस्याः शशी सप्तशलाकचक्रे पापैरपापैरथवा विवाहे । उद्वाहवस्त्रेण सुसंवृतांगी श्मशानभूमिं रुदती प्रयातीति ॥ ९७ ॥

अथ क्रूराक्रांतादिदोषं सापवादमनुष्टुभाह—

ऋक्षाणि क्रूरविद्धानि क्रूरभुक्तादिकानि च ॥
भुक्त्वा चंद्रेण मुक्तानि शुभार्हाणि प्रचक्षते ॥ ९८ ॥

ऋक्षाणीति ॥ क्रूरग्रहैर्विद्धानि तथा क्रूरैर्मुक्तानि त्यक्तानि आदिशब्दात्क्रूरयुतानि क्रूरगंतव्यानि चकारात्रिविधोत्पातदूषितानि च नक्षत्राणि तानि यदि चंद्रेण भुक्त्वा मुक्तानि तदा शुभार्हाणि शुभकर्मार्हाणि विवाहादौ योग्यानि बुधाः प्रचक्षते कथयंति ॥ ९८ ॥

अथ लत्तादोषमुपजातिकयाह—

ज्ञराहुपूर्णेंदुसिताः स्वपृष्ठे भं सप्तगोजातिशरैर्मितं हि ॥
संलत्तयंतेऽर्कशनीज्यभौमाः सूर्याष्टतर्काग्निमितं पुरस्तात् ॥ ९९ ॥

ज्ञराह्विति ॥ गावो नव जातयो द्वाविंशतिः शराः पंच एतैर्मितं भं स्वाक्रांतनक्षत्रात् ज्ञराहुपूर्णेंदुसिताः स्वपृष्ठे संलत्तयंते । यथा बुधः सप्तमं राहुर्नवमं राहोः सदा वक्रगत्वान्नवमगणना क्रमेणैव कार्या यथाश्विन्यां राहुराश्लेषां लत्तयतीति पूर्णेंदुः पूर्णिमांतचंद्रो द्वाविंशम् । तच्च । कृष्णपक्षे पंचम्यादितिथौ संभवति शुक्रः पंचमं स्वपृष्ठे लत्तयतीत्यर्थः । अर्कशनीज्यभौमाः क्रमेण पुरस्तादग्रे सूर्याष्टतर्काग्निमितं संलत्तयंते । यथा । सूर्यः स्वाक्रांतनक्षत्राद्द्वादशं शनिरष्टमम् गुरुः षष्ठं भौमस्तृतीयं नक्षत्रं अग्रतो लत्तयंतीत्यर्थः । वराहः । रविलत्ता वित्तहरी नित्यं कौजी विनिर्दिशेन्मरणम् । चांद्री नाशं कुर्याद्बौधी नाशं वदत्येव । सौरी मरणं कथयति बंधुविनाशं बृहस्पतेर्लत्ता । मरणं लत्ता राहोः कार्यविनाशं भृगोर्वदतीति ॥ ९९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ पातदोषं पथ्यार्ययाह—

हर्षणवैधृतिसाध्यव्यतिपातकगंडशूलयोगानाम् ॥
अंते यन्नक्षत्रं पातेन निपातितं तत्स्यात् ॥ ६० ॥

हर्षणेति ॥ व्यतीपातक इति स्वार्थे कः हर्षणेत्यादि षड् योगानामंते यच्चंद्रनक्षत्रं भवेत् तत्पातेन चंडीशचंडायुधाख्येन निपातितं स्यात् ॥ ६० ॥

अथ क्रांतिसाम्यापरपर्यायं महापातदोषं शालिन्याह—

पंचास्याजौ गोमृगौ तौलिकुंभौ कन्यामीनौ कर्क्यली चापयुग्मे ॥
तत्रान्योन्यं चंद्रभान्वोर्निरुक्तं क्रांतेः साम्यं नो शुभं मंगलेषु ॥६१॥

पंचास्येति ॥ पंचास्याजौ सिंहमेषौ अन्ये प्रसिद्धाः एषु राशियुग्मेषु पाठक्रमेण व्युत्क्रमेणावस्थितयोश्चंद्रभान्वोः क्रांतिसाम्यं निरुक्तं तन्मंगलेषु नो शुभं स्यात् । अनेन क्रांतिसाम्यसंभवमात्रं सूचितम् । तदानयनं सूर्यसिद्धांताद्रामविनोदाद्वा स्पष्टं ज्ञेयम् ॥ ६१ ॥

अथ खार्जूरदोषं सुबोधमिंद्रवज्रयाह—

व्याघातगंडव्यतिपातपूर्वशूलांत्यवज्रे परिघातिगंडे ॥
योगे विरुद्धे त्वभिजित्समेतः खार्जूरमर्काद्विषमे शशी चेत्॥६२॥

व्याघातेति ॥ अंत्यो वैधृतिः यस्मिन् दिने व्याघातादिके विरुद्धे दुष्टे योगे सति अर्कादर्कनक्षत्रात् शशी चंद्रोऽभिजित्समेतो विषमे विषमसंख्याके नक्षत्रे स्यात्तदा खार्जूराख्यो दोषः स्यात् । यदा समे स्यात्तदा न दोष इत्यर्थः । एकार्गलो दृष्टिपातश्चाभिजिद्रहितानि वै इति कश्यपेनात्राभिजिद्गणना निषिद्धा केशवार्कत्रिविक्रमादिभिरंगीकृतेति उभयवचनप्रामाण्याद्विकल्पः ॥ ६२ ॥

अथोपग्रहदोषमुपेंद्रवज्रयाह—

शराष्टदिक्शक्रनगातिधृत्यस्तिथिर्धृतिश्च प्रकृतेश्च पंच ॥
उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराः शुभा न देशे कुरुबाह्लिकानाम् ॥६३॥

शराष्टेति ॥ सूर्यभतः सूर्याक्रांतनक्षत्रादब्जताराश्चंद्रनक्षत्राणि पंचाष्टदशचतुर्दशसप्तैकोनविंशतिः पंचदशाष्टादशैकविंशतिद्वाविंशतित्रयोविंशतिचतुर्विंशतिपंचविंशतिसंख्याश्चेत् स्युस्तदा उपग्रहनामका दोषाः स्युः । प्रकृतिरेकविंशतिः एषां देशभेदेन परिहारमाह । शुभा नेति । कुरुदेशे बाल्हिकदेशे शुभा न ॥ ६३ ॥

---

१ एकार्गलाख्यो ह्यभिजित्समेतो दोषः शशी चेद्विषमर्क्षगोऽर्कादित्यपि क्वचित्पाठः ।

Aho ! Shrutgyanam

अथ प्रसंगात्पातोपग्रहलत्तास्वपवादमर्धयामं चानुष्टुभाह—

पातोपग्रहलत्तासु नेष्टोंऽघ्रिः खेटपत्समः ॥
वारस्त्रिघ्नोऽष्टभिस्तष्टः सैकः स्यादर्धयामकः ॥ ६४ ॥

पातेति॥ पातश्चंडीशचंडायुधाख्यो दोषः उपग्रहाः प्रागुक्ताः लत्ता ज्ञराहुपूर्णेंदुसितेत्यादिनोक्ता तत्र खेटपत्समः ग्रहचरणतुल्यो नक्षत्रचरणो नेष्टः । अयमर्थः । उपग्रहे पाते रविर्यस्मिन् चरणे स्यात्तत्संख्य एव तस्य चरणो वर्ज्यो नान्यः । लत्तायां तु । लत्ताकारी ग्रहो यत्र चरणे स्यात्तत्समसंख्य एव चरणो लत्तितनक्षत्रस्य वर्ज्यो नान्यः । उक्तं च । उपग्रहेषु लत्तायां तथा चंडायुधाह्वये । ग्रहोऽस्ति यत्प्रमाणांशे विद्धांशस्तत्प्रमाणक इति । अयं परिहारः खार्जूरिकेऽपि द्रष्टव्यः । सूर्यो यस्मिन् पादे भवेत् तत्समसंख्य एव चरण एकरेखावस्थितचंद्रनक्षत्रस्य वर्ज्य इति खार्जूरिकसमांघ्रिभमित्युक्तत्वात् । वार इति । इष्टो वारस्त्रिघ्नः अष्टभिस्तष्टः शेषितो योंऽकः सैकः सोऽर्धयामो दोषः स्यात् । कश्यपः । शैलाक्षश्रुतयः ७,५,४, सूर्ये चंद्रे षट् वेदपर्वताः ६,४,७ ॥ भौमे बाणाग्निनेत्राणि ५,३,२ सौम्ये वेदाक्षिवायवः ४,२,५ ॥ गुरुवारेऽग्निचंद्रेभाः ३, १, ८ शुक्रे नेत्राद्रिवह्नयः २, ७, ३ ॥ शनौ चंद्रेभतर्काः १, ८, ६ स्युः कुलिको यमघंटकः ॥ अर्धप्रहरसंज्ञांस्तान्मंगलेषु विवर्जयेत् । निधनं प्रहरार्धे तु निःसत्वं यमघंटके । कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदा इति ॥ ६४ ॥

अथ कुलिकमनुष्टुभाह—

शक्रार्कदिग्वसुरसाब्ध्यश्विनः कुलिका रवेः ॥
रात्रौ निरेकास्तिथ्यंशाः शनौ चांऽत्योऽपि निंदिताः ॥ ६५ ॥

शक्रेति ॥ रविमारभ्य सर्ववारेषु क्रमादुक्तसंख्यास्तिथ्यंशा मुहूर्ताः कुलिकाः स्युः । यथा दिने रवौ १४ चंद्रे १२ भौमे १० बुधे ८ गुरौ ६ शुक्रे ४ शनौ २ रात्रावेते निरेकाः कार्याः । यथा रवौ १३ चं. ११ भौ. ९ बु. ७ गु. ५ शु. ३ श. १ शनौ तु अंत्योऽपि रात्रेः पंचदशोऽपि मुहूर्तः कुलिकः । एते निंदिताः । एतेषामर्धयामादिदोषाणां पुनर्निरूपणं विवाहे अवश्यवर्जत्वार्थं शीघ्रोपस्थित्यर्थं चेति । कुलिकापवादे गुरुः । वारेशे सबले वापि बलाढ्ये लग्नगे शुभे । कुलिकोदयदोषस्तु विनश्यति न संशयः ॥ वाराधीशे बलोपेते विधौ वा बलसंयुते । अर्धप्रहरसंभूतो दोषो नैवात्र विद्यते ॥ शुभे केंद्रगते चंद्रे शुभांशे वा शुभेक्षिते । लग्नगे सबले वापि कुलिकस्तु विलीयते ॥ अर्धप्रहरपूर्वार्धं मध्यं त यमघंटजम । वर्जयित्वा च कुलिकस्यांत्यांशं शुभमाचरेदिति ॥ ६५ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ दग्धतिथ्याख्यदोषमिंद्रवज्रयाह–

चापांत्यगे गोघटगे पतंगे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च ॥
सिंहालिगे नक्रधटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीयाप्रमुखाश्च दग्धाः ६६

चापांत्येति ॥ तत्तद्राशिद्वयस्थिते पतंगे सूर्ये द्वितीयाप्रमुखा उभयपक्षसाधारणाः समसंख्याकास्तिथ्यो दग्धाः स्युः । यथा । धनुर्मीनगते सूर्ये द्वितीया दग्धा । वृषकुंभगेऽर्के चतुर्थी । कर्कमेषगे षष्ठी । कन्यामिथुनगेऽष्टमी । सिंहवृश्चिकगे दशमी । तुलामकरगेऽर्के द्वादशी दग्धेत्यर्थः । मासदग्धाश्च तिथयो मध्यदेशे वर्जिता इति परिहारः ॥ ६६ ॥

अथ जामित्रदोषं भ्रमरविलसितेनाह–

लग्नाच्चंद्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम् ॥
किंवा बाणाशुगमितलवगे जामित्रं स्यादशुभकरमिदम् ॥ ६७ ॥

लग्नादिति ॥ विवाहलग्नाच्चंद्राद्वा सप्तमभवनगते ग्रहे परिणयनं स्यात् । अस्यापवादः किंवेति । ग्रहाधिष्ठितनवांशमारभ्य बाणाशुग५५मितलवगे पंचपंचाशन्मितनवांशगे चंद्रे लग्ने वा जामित्रं सूक्ष्मं स्यात् । यथा मेषे पंचमनवांशे भौमोऽस्ति तस्मात्तुलायां पंचमनवांशस्थश्चंद्रो निषिद्धोऽन्येऽष्टौ नवांशाः शुभाः । एवंविधं सूक्ष्मजामित्रमिदमशुभकरं स्यात् । अस्यापवादो व्यवहारोच्चये । स्वोच्चेऽथवा स्वभवने स्फुरदंशुजालः सौम्यालये हितगृहे शुभवर्गगो वा । जामित्रकादिपरिसंचितदोषराशिं हत्वा ददाति बहुशः सुखमेव चंद्र इति ॥ ६७ ॥

अथैकार्गलादिदोषाणामपवादभूतं साक्षाद्वसिष्ठवचनमेवेंद्रवज्रयाह–

एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्युदयास्तदोषाः ॥
नश्यंति चंद्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदये तु दोषा ॥ ६८ ॥

एकार्गलेति ॥ चंद्रार्कबलोपपन्ने चंद्रार्कयोः स्वोच्चमित्रादिराशिस्थितत्वरूपेण बलेन युक्ते लग्ने सति एकार्गलादयो दोषा नश्यंति । यथार्काभ्युदये दोषा रात्रिर्नश्यति ॥ ६८ ॥

अथ केषांचिद्दोषाणां देशविशेषेण परिहारमुपजात्याह–

उपग्रहर्क्षं कुरुबाह्लिकेषु कलिंगवंगेषु च पातितं भम् ॥
सौराष्ट्रशाल्वेषु च लत्तितं भं त्यजेत्तु विद्धं किल सर्वदेशे ॥६९॥

उपग्रहर्क्षमिति ॥ स्पष्टार्थम् । अन्यच्च । लत्ता मालवके देशे पातः कौसलके तथा । एकार्गलं तु काश्मीरे वेधं सर्वत्र वर्जयेत् ॥ युतिदोषो भवेद्गौडे जामित्रस्य च यामुने । वेधदोषस्तु विंध्याख्ये देशे नान्येषु केषु चेति ॥ ६९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ दशयोगदोषमुपजात्याह—

शशांकसूर्यर्क्षयुतेऽभशेषे खं भूयुगांगानि दशेशतिथ्यः ॥
नागेंदवोऽकेंदुमिता नखाश्चेद्भवंति चैते दशयोगसंज्ञाः ॥ ७० ॥

शशांकेति ॥ चेद्यदि चंद्रसूर्यनक्षत्रयोर्युतेर्योगात् भैः सप्तविंशत्या भक्ताद्यः शेषस्तस्मिन् शून्यैकचतुःषट्दशैकादशपंचदशाष्टादशैकोनविंशतिविंशतिसंख्याके सति एतेंऽकाः दशदशयोगसंज्ञा भवंति । शिष्टानां दशानामंकानामभिहितत्वाद्दशयोग इत्यन्वर्था संज्ञा ॥ ७० ॥

अथ दशयोगफलं तदपवादं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वाताभ्राग्निमहीपचोरमरणं रुग्वज्रवादाः क्षति-
र्योगांके दलिते समे मनुयुतेऽथौजे तु सैकेऽर्धिते ॥
भंदास्त्रादथ संमितास्तु मनुभी रेखाः क्रमात्सँलिखे-
द्वेधोऽस्मिन् ग्रहचंद्रयोर्न शुभदः स्यादेकरेखास्थयोः ॥ ७१ ॥

वाताभ्रेति ॥ शून्ये शेषे वातदोषः स्यात् एकशेषेऽभ्राच्चतुःशेषेऽग्नेः षट्शेषे महीपात् दशशेषे चोरात् एकादशसु मरणम् पंचदशसु रुक् अष्टादशसु वज्रम् एकोनविंशेषु वादः कलिः झकटक इत्यर्थः । विंशतिशेषे क्षतिः द्रव्यनाशः । अथापवादः । योगांक इति । खं भूयुगादिरूपे योगांके समे युग्मसंख्याके सति दलिते अर्धीकृते मनुभिश्चतुर्दशभिर्युक्ते योऽकः स्यात् तद्दास्त्रादश्विनीतो भं नक्षत्रं स्यात् । अथौजे तु सैकेऽर्धिते योगांके ओजे विषमे सैके अर्धिते अश्विनीतः भं नक्षत्रं स्यात् । यथा समांकाः दश१० अर्धिताः ५ मनु १४ युताः १९ मूलं नक्षत्रं जातम् । ओजांके यथा विषमांके १५ योगः सैकः १६ अर्धितः ८ पुष्यनक्षत्रं जातम् । अथानंतरं मुनिभिः संमिताश्चतुर्दशरेखास्तिर्यक् क्रमात्संलिखेत्ततः अनेन प्रकारेण यन्नक्षत्रमागतं तत आरभ्य साभिजिन्नक्षत्रवृंदं अस्मिंश्चक्रे लेख्यं तन्नक्षत्रे ग्रहाः स्थाप्याः । दिननक्षत्रे चंद्रः स्थाप्यः तत एकरेखास्थयोः ग्रहचंद्रयोः परस्परावलोकनरूपो वेधो न शुभदः । उक्तं च ज्योतिःसागरे । तिथ्यंगवेदैकदिगूनविंशशून्यं भवाष्टादशविंशसंख्याः । इष्टोडुना सूर्ययुतोडुना च योगाद्दमी चेद्दशयोगदोषाः ॥ मरुन्मेघाग्निभूपालचौरमृत्युरुजोऽशनिः । कलिर्हानिर्दश दोषास्त्याज्याः स्युः सर्वथा बुधैः ॥ योगांके विषमे सैके समे सवसुलोचने । दलीकृतेऽश्विनी पूर्वं दशयोगमुदाहृतम् ॥ दशयोगे महाचक्रे प्रमादाद्यदि विध्यते । क्रूरैः सौम्यग्रहैर्वापि दंपत्योरेकनाशनमिति । दशयोगापवादांतरमाह भरद्वाजः । गुरौ लग्नाधिपे शुक्रे सवीर्ये लग्नकेंद्रगे । दश दोषा विनश्यंति यथाग्नौ तूल-

Aho ! Shrutgyanam

राशयः ॥ व्यासः । गुरुणा भृगुणा वापि संयुतं दृष्टमेव च । दशयोगसमायुक्तमपि लग्नं शुभावहम् ॥ ७१ ॥

अथ पंचकाख्यं बाणदोषं शालिन्याह–

लग्नेनाढ्या याततिथ्योऽङ्कतष्टाः शेषे नागद्व्यब्धितर्केंदुसंख्ये ॥
रोगो वह्नी राजचौरौ च मृत्युर्बाणश्चायं दाक्षिणात्यप्रसिद्धः॥ ७२॥

लग्नेनेति ॥ शुक्लपक्षादिकास्तिथयो वर्तमानलग्नेनाढ्याः युक्ताः अंकैर्नवभिस्तष्टाः शेषे नागसंख्ये अष्टसंख्ये रोगाख्यो बाणः एवं द्विसंख्ये शेषे वह्न्याख्यः चतुःसंख्ये राजाख्यः षट्संख्ये चौराख्यः एकसंख्ये मृत्युसंज्ञो बाणः एते बाणाः दाक्षिणात्येषु महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धाः ॥ ७२ ॥

अथ व्यासमतेन बाणं सापवादं मालिन्याह–

रसगुणशशिनागाब्ध्याढ्यसंक्रांतियातां-
शकमितिरथतष्टांकैर्यदा पंच शेषाः ॥
रुगनलनृपचोरा मृत्युसंज्ञश्च बाणो
नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्यः ॥ ७३ ॥

रसगुणेति ॥ रसगुणशशिनागाब्धिभिराढ्या चासौ संक्रांतियातांशकमितिश्चेति कर्मधारयः । सूर्यभुक्तांशानां मितिः संख्या पंचधा स्थाप्या कलादिकमुपेक्ष्यं सा क्रमेण षट्त्र्येकाष्टचतुर्भिराढ्या संयोज्यांकैर्नवभिस्तष्टा सती यदा पंचशेषा यस्मिन् स्थले पंच शिष्यंते तत्र क्रमेण रुगादिबाणो ज्ञेयः । यथा आदौ पंचशेषे रोगबाणः द्वितीये पंचशेषेऽग्निबाणः तृतीये राजबाणः चतुर्थे चौरबाणः पंचमे मृत्युबाणः तस्माद्भयं भवतीत्यर्थः । अयं बाणः शल्यसहितः तेन स्वल्पदोषः तदपवादभूतः सशल्यो बाण उच्यते । नवेति यानि प्रागागतानि शेषाणि तेषामैक्ये नवहृते पश्चाच्छरशेषे सति सशल्यः शल्यसहितो बाणः स्यात् । पंचव्यतिरिक्तशेषे शल्यरहितो दुष्ट इत्यर्थः । अन्यैस्तु । तिथिवारभलग्नांको रसाग्न्यब्जाष्टवेदयुक् । नंदाप्तपंचशेषे रुग्वह्निराट्चोरमृत्युकृदिति ॥ ७३ ॥

अथ समयभेदेन वारभेदेन कर्मभेदेन च त्रिविधं बाणपरिहारं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

रात्रौ चोररुजौ दिवा नरपतिर्वह्निः सदासंध्ययोर्मृत्यु-
श्चाथ शनौ नृपो विदि मृतिर्भौमेऽग्निचोरौ रवौ ॥
रोगोऽथव्रतगेहगोपनृपसेवायानपाणिग्रहे वर्ज्याश्च
क्रमतो बुधे रुगनलक्ष्मापालचोरा मृतिः ॥ ७४ ॥

Aho ! Shrutgyanam

रात्रौ चोरेति ॥ चोररुजौ बाणौ रात्रौ त्याज्यौ । दिवा नरपतिः राजबाणस्त्याज्यः वह्निबाणः सदा दिवा रात्रौ त्याज्यः संध्ययोः सायंप्रातःसंध्ययोर्मृत्युबाणस्त्याज्यः । ज्योतिःप्रकाशे । रोगं चौरं त्यजेद्रात्रौ दिवा राजन्यपंचकम् । संध्ययोर्मृत्युदं त्याज्यं सर्वदा वह्निपंचकमिति । अथ वारभेदेन परिहारः । अथेति । शनिवारे नृपबाणः विदि बुधवारे मृतिबाणः भौमेऽग्निचौरौ बाणौ रवौ रोगबाणस्त्याज्यः । उक्तं च । रवौ रोगं कुजे वह्निं शनौ च नृपपंचकम् । वर्ज्यं पुनः कुजे चौरं बुधवारे च मृत्युदम् ॥ अथ कार्यभेदेन परिहारः । अथेति । क्रमत एषु शुभकर्मसु एते बाणाः वर्ज्याः । यथा व्रते यज्ञोपवीते रुक् गृहस्याच्छादनेऽग्निः नृपसेवायां राजबाणः याने चौरः पाणिग्रहे मृतिबाणो वर्ज्यः । उक्तं च । नृपाख्यं नृपसेवायां गृहगोपेऽग्निपंचकम् । याने चौरं व्रते रोगं त्यजेन्मृत्युं करग्रह इति ॥ ७४ ॥

अथ ग्रहदृष्टिमुपजातिकयाह—

त्र्याशं त्रिकोणं चतुरस्रमस्तं पश्यंति खेटाश्चरणाभिवृद्ध्या ॥
मंदो गुरुर्भूमिसुतः परे च क्रमेण संपूर्णदृशो भवंति ॥ ७५ ॥

त्र्याशमिति ॥ ये खेटाः यस्मिन् स्थाने स्थिताः तस्मात्कथ्यमानानि स्थानानि चरणाभिवृद्ध्या पश्यंति तद्यथा । त्र्याशं तृतीयं दशमं च एकचरणदृष्ट्या पश्यंति । अनेन तत्तद्ग्रहोद्भवफलं चरणाभिवृद्ध्यैव भवतीति सूचितम् । मंद इति । मंदः शनैश्चरः स्वस्थानात् त्र्याशं संपूर्णदृक् चतुश्चरणदृष्टिः एवं गुरुस्त्रिकोणे पूर्णदृक् भूमिसुतश्चतुरस्रे पूर्णदृक् परेऽर्कचंद्रबुधशुक्राः सप्तमे पूर्णदृशः ॥ ७५ ॥

अथोदयास्तशुद्धिं शिखरिणीभुजंगप्रयाताभ्यामाह—

यदा लग्नांशेशो लवमथ तनुं पश्यति युतो
भवेद्वायं वोढुः शुभफलमनल्पं रचयति ॥
लवद्यूनस्वामी लवमदनभं लग्नमदनं
प्रपश्येद्वा वध्वाः शुभमितरथा ज्ञेयमशुभम् ॥ ७६ ॥

लवेशो लवं लग्नपो लग्नगेहं प्रपश्येन्मिथो वा शुभं स्याद्वरस्य ॥
लवद्यूनपोंऽशद्युनं लग्नपोऽस्तं मिथो वेक्षते स्याच्छुभं कन्यकायाः ७७

यदा लग्नांशेश इति । लवेशो लवमिति ॥ लग्नेशः लग्नस्वामी अंशेशो लग्ननवांशस्वामी लवं नवांशं पश्यति वाऽथवा नवांशेन सह युतो भवेत्तदा वोढुर्वरस्यानल्पं शुभफलं रचयति । यथा । मेषलग्ने मिथुनांशस्तदीशो बुधस्तुलायां मिथुनं पश्यति तत्र तिष्ठति वा अयमुदयशुद्धेः प्रथमप्रकारः तदभावे तु लग्नांशेशस्तनुं लग्नं पश्यति लग्नेन सह युतो भवेत्तदापि वोढुः शुभफलमनल्पं स्यात् । यथा । मेषलग्ने एव मिथुननवांशस्वा-

Aho ! Shrutgyanam

मी बुधो मकरे नवांशं न पश्यति किंतु लग्नं पश्यति अथवा मेष एव तिष्ठति अयमुदयशुद्धे-र्द्वितीयः प्रकारः। लवद्यूनस्वामी लवान्नवांशात् द्यूनं सप्तमनवांशः तत्स्वामी लवमदनभं लवान्मदनभं सप्तमनवांशं पश्यति तेन सह युतो वा भवेत् तदा वध्वाः अनल्पं बहु शुभं रचयति। यथा मिथुननवांशात् सप्तमो धनुरंशः तदीशो गुरुर्मेषे धनुः पश्यति तत्र तिष्ठति वा अयमस्तशुद्धेः प्रथमप्रकारः। तदलाभे तु लवद्यूनस्वामी लग्नान्मदनं सप्तमं भवनं पश्यति युतो वा सप्तमभवनेन तदा वध्वाः शुभम्। यथा गुरुः कर्के स्वनवांशं न पश्यति किंतु सप्तमभवनं तुलां पश्यति अथवा तुलायामेवास्ति तदा वध्वाः शुभम्। अयमस्तशुद्धेर्द्वितीयः प्रकारः। इतरथेति यदा लग्नांशेशो लवं तनुं वा न पश्यति तत्र युतो वा न स्यात्तदा वरस्याशुभम् एवं लवद्यूनस्वामी नवांशं सप्तमं वा न पश्यति तत्र युतो वा न स्यात् तदा कन्याया अशुभम्। काश्यपः। स्वस्वेशेनोदयास्तांशौ वीक्षितौ वाथ संयुतौ। लग्नं वास्तगृहं तत्तदंशेशेनेक्षितं युतमिति ॥७६॥ लवेश इति। नवांशस्वामी नवांशं प्रपश्येत् लग्नस्वामी लग्नं पश्येत्तदा वरस्य शुभम्। एवं लवद्यूनपो नवांशात्सप्तमनवांशस्वामी अंशद्यूनं अंशसप्तमराशिं पश्येत् लग्नपो लग्नस्वामी अस्तं लग्नात्सप्तमभवनं पश्येत् तदा कन्यायाः शुभं स्यात् वा मिथः अंशसप्तमाधीशो लग्नसप्तममीक्षते लग्नात्सप्तमाधीशश्चांशसप्तममीक्षते तदापि कन्यायाः शुभं स्यात्। अत्राप्यन्यथात्वे दंपत्योरशुभमित्यर्थः। नारदः। लग्ननवांशकौ स्वस्वपतिना वीक्षितौ युतौ। न चेद्वान्योन्यपतिना शुभमित्रेण वा तथा ॥ वरस्य मृत्युः स्यात्ताभ्यां सप्तसप्तोदयांशकौ। एवं तौ वीक्षितयुतौ मृत्युर्वध्वाः करग्रह इति ॥ ७७ ॥

अथ पूर्वोक्तप्रकारेणोदयास्तशुद्धेरभावे तृतीयः प्रकार उच्यते मालिनीछंदसा—

लवपतिशुभमित्रं वीक्षतेंऽशं तनुं वा
परिणयनकरस्य स्याच्छुभं शास्त्रदृष्टम् ॥
मदनलवपमित्रं सौम्यमंशद्युनं वा
तनुमदनगृहं चेद्वीक्षते शर्म वध्वाः ॥ ७८ ॥

लवपतीति ॥ शुभं च तन्मित्रं चेति कर्मधारयः लवपतेर्लग्ननवांशेशस्य शुभग्रहः चंद्रबुधगुरुशुक्राणामन्यतमश्चेन्मित्रं स्यात्स चेदंशं नवांशं तनुं वा वीक्षते तदा परिणयनकरस्य वरस्य शास्त्रदृष्टं पुत्रादिप्राप्तिरूपं शुभं फलं स्यात्। एवं मदनलवपस्यास्तांशेशस्य मित्रं सौम्यं तच्चांशद्यूनं अंशाल्लग्ननवांशात् द्यूनं सप्तमनवांशं चेद्वीक्षते अथवा तनुमदनगृहं लग्नात्सप्तमभवनं चेद्वीक्षते तदा वध्वाः शर्म कल्याणं स्यात्। यद्युभयत्रापि नवांशस्वामिनो मित्रं पापग्रहश्चेत्तस्य दृष्टिरशुभैवेति फलितोऽर्थः। वराहः। शुद्धस्त्विह स्यान्न यदोदयांशो लग्नेन वास्तांश उपैति शुद्धिम्। तदा सुहृत्सौम्यनिरीक्षितो यः शुभायसः स्यात्प्रवदंति संत इति। केचिद्विवाहे वज्रयोगं निषिद्धमाहुः। तल्लक्षणम्। तिथिवारं च नक्षत्रं

Aho ! Shrutgyanam

नवभिश्च समन्वितम् । सप्तभिस्तु हरेद्भागं शेषांके फलमादिशेत् ॥ त्रिशेषे तु जलं विद्यात्पंचशेषे प्रभंजनः । सप्तशेषे वज्रपातो ज्ञेयं वज्रस्य लक्षणमिति ॥ ७८ ॥

अथार्कसंक्रमणदोषं मंजुभाषिण्याह—

विषुवायनेषु परपूर्वमध्यमान्दिवसांस्त्यजेदितरसंक्रमेषु हि ॥
घटिकास्तु षोडश शुभक्रियाविधौ परतोऽपि पूर्वमपि संत्यजेद्बुधः ७९

विषुवायनेष्विति ॥ विषुवं तुलामेषसंक्रांती चतसृषु संक्रांतिषु परपूर्वमध्यमान् गतागामिवर्तमानान् दिवसान् बुधः शुभक्रियाविधौ विवाहादौ त्यजेत् । इतरसंक्रांतिषु संक्रमणकालात् परतोऽग्रे पूर्वं प्रागपि षोडश घटिका मिलित्वा द्वात्रिंशद्घटिकास्त्यजेत् । गुरुः । अयने विषुवे पूर्वं परं मध्यं दिनं त्यजेत् । अन्यसंक्रमणे पूर्वाः पराः षोडश नाडिका इति ॥ ७९ ॥

अथ प्रसंगात्सकलग्रहाणां संक्रांतिघटीरनुष्टुभाह—

देवद्व्यंकर्तवोऽष्टाष्टौ नाड्योंऽकाः खनृपाः क्रमात् ॥
वर्ज्याः संक्रमणेऽर्कादेः प्रायोऽर्कस्यातिनिंदिताः ॥ ८० ॥

देवेति ॥ यथाक्रमेण सूर्यादेः संक्रमणे एता घटिका वर्ज्याः । यथा रवेः प्राक्पश्चात्त्रयस्त्रिंशद्घटिकास्त्याज्याः चंद्रस्य द्वे भौमस्य नव बुधस्य षट् गुरोरष्टाष्टौ अष्टाशीतिः शुक्रस्यांका नव शनेः खनृपाः षष्ठ्यधिकं शतमिति ॥ ८० ॥

अथ पंग्वंधबधिराख्यान् लग्नदोषानुपजातिकयाह—

घस्रे तुलाली बधिरौ मृगाश्वौ रात्रौ च सिंहाजवृषा दिवांधाः ॥
कन्यानृयुक्कर्कटका निशांधा दिने घटोंऽत्यो निशि पंगुसंज्ञः ॥ ८१ ॥

घस्र इति ॥ घस्रे दिवसे तुलावृश्चिकौ बधिरसंज्ञकौ रात्रौ मकरधनुषौ बधिरसंज्ञौ शेषं स्पष्टम् । वसिष्ठः । तुला च वृश्चिकश्चैव दिवसे बधिरौ तथा । धनुश्च मकरश्चैव बधिरौ निशि कीर्तितौ ॥ मेषो वृषो मृगेंद्रश्च दिवसांधाः प्रकीर्तिताः । नृयुक्कर्कटकन्याश्च रात्रावंधाः प्रकीर्तिताः ॥ कुंभमीनौ च पंगू द्वौ दिवा रात्रौ यथाक्रममिति । अनेन तस्मिन्कालेंऽधादिलग्नानि वर्ज्यानीत्यर्थः ॥ ८१ ॥

अथ केचिन्मतमाह—

बधिरा धन्वितुलालयोऽपराह्णे मिथुनं कर्कटकोंऽगना निशांधाः ॥
दिवसांधा हरिगोक्रियास्तु कुब्जा मृगकुंभांतिमभानि संध्ययोर्हि ८२

बधिरा धन्वीति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ८२ ॥

अथैषां प्रयोजनं सापवादं प्रहर्षिण्याह—

Aho ! Shrutgyanam

दारिद्र्यं बधिरतनौ दिवांधलग्ने
वैधव्यं शिशुमरणं निशांधलग्ने ॥
पंग्वंगे निखिलधनानि नाशमीयुः
सर्वत्राधिपगुरुदृष्टिभिर्न दोषः ॥ ८३ ॥

दारिद्र्यमिति ॥ पंग्वंगे पंगुलग्ने । अन्यत्स्पष्टम् ॥ ८३ ॥

अथ विहितनवांशांश्चित्रपदाच्छंदसाह—

कार्मुकतौलिककन्यायुग्मलवे झषगे वा ॥
यर्हि भवेदुपयामस्तर्हि सती खलु कन्या ॥ ८४ ॥

कार्मुकेति ॥ युग्मं मिथुनं एषां नवांशाः झषगे वा मीननवांशे विकल्पेन वाशब्द एकीयमतसूचनार्थः । एष्वंशेषु यर्हि उपयामो विवाहो भवेत्तर्हि कन्या सती पतिव्रता भवेत् ॥ ८४ ॥

अथ विहितनवांशे क्वचिन्निषेधं श्रीछंदसाह—

अंत्यनवांशे न च परिणेया काचन वर्गोत्तममिह हित्वा ॥
नो चरलग्ने चरलवयोगं तौलिमृगस्थे शशभृति कुर्यात् ॥ ८५ ॥

अंत्यनवांश इति ॥ विहितनवांशेष्वपि यथा मेषलग्ने धनुर्नवमांशोऽतिम इत्येवं विधे विषये काचन कन्या न परिणेया न विवाह्या परंतु वर्गोत्तममंतिमनवांशं । हित्वा तत्र विवाह उचित एव । यथा मिथुनलग्ने मिथुननवांशे । अंत्यांशका अपि श्रेष्ठा यदि वर्गोत्तमाह्वया इति कश्यपोक्तेः । नो चरलग्न इति । तौलिमृगस्थे तुलामकरस्थे चंद्रे चरलग्ने विहितचरलवयोगं नो कुर्यात् । यथा मेषलग्ने तुलांश इति ॥ ८५ ॥

अथ लग्नभंगमुपजात्याह—

व्यये शनिः खेऽवनिजस्तृतीये भृगुस्तनौ चंद्रखला न शस्ताः ॥
लग्नेट् कविर्ग्लौश्च रिपौ मृतौ ग्लौर्लग्नेट्शुभाराश्च मदे च सर्वे ॥८६॥

व्यये शनिरिति ॥ द्वादशे शनिर्नो शस्तः खे दशमेऽवनिजो भौमो न शस्तः तृतीये शुक्रो न शस्तः लग्ने चंद्रखलाः चंद्रः पापग्रहाश्च न शस्ताः लग्नेट्लग्नस्वामी कविः शुक्रो ग्लौश्चंद्रश्च रिपौ षष्ठे न शस्ताः ग्लौश्चंद्रः लग्नेट् लग्नस्वामी शुभा बुधगुरुशुक्रा आरो भौमश्च एते मृतावष्टमे न शस्ताः मदे सप्तमे सर्वे ग्रहा न शस्ताः ॥ ८६ ॥

अथ रेखाप्रदान्वसंततिलकयाह—

त्र्यायाष्टषट्सु रविकेतुतमोऽर्कपुत्रा-
स्त्र्यायारिगः क्षितिसुतो द्विगुणायगोऽब्जः ॥

Aho ! Shrutgyanam

सप्तव्ययाष्टरहितौ ज्ञगुरू सितोऽष्ट-
त्रिद्यूनषड्व्ययगृहान्परिहृत्य शस्तः ॥ ८७ ॥

स्यायेति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ८७ ॥

कर्तर्यादिमहादोषाणामपवादं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पापौ कर्तरिकारकौ रिपुगृहे नीचास्तगौ कर्तरी
दोषो नैव सितेऽरिनीचगृहगे तत्षष्ठदोषोऽपि न ॥
भौमेऽस्ते रिपुनीचगे नहि भवेद्भौमोऽष्टमो दोषकृ-
न्नीचे नीचनवांशके शशिनि रिःफाष्टारिदोषोऽपि न ॥ ८८ ॥

पापौ कर्तरिकारकाविति ॥ कर्तरिकारकौ क्रूरौ ग्रहौ रिपुगृहे शत्रुगृहे स्थितौ नीचे नीचराशिगौ अस्तगौ अस्तं गतौ वा तदा कर्तरीदोषो नैव स्यात् । कश्यपः । पापयोः कर्तरीकर्त्रोः शत्रुनीचगृहस्थयोः । यदा चास्तगयोर्वापि कर्तरी नैव दोषदेति । अथ सिते शुक्रे अरिनीचगृहगे शत्रुगृहगे स्वनीचगृहगे वा सति तत्षष्ठदोषोऽपि न स्यात् । कश्यपः । नीचराशिगते शुक्रे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा । भृगुषट्कस्थितो दोषो नास्ति तत्र न संशय इति। भौमेऽस्ते अस्तंगते रिपुनीचगे शत्रुगृहे नीचगृहे वाऽष्टमो भौमो दोषकृन्न स्यात् । कश्यपः । अस्तगे नीचगे भौमे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा। कुजाष्टमोद्भवो दोषो न किंचिदपि विद्यते ॥ अथ शशिनि चंद्रे नीचे नीचनवांशके वा सति द्वादशाष्टमषष्ठस्थानस्थितचंद्रदोषोऽपि न स्यात्। नीचराशिगते चंद्रे नीचांशकगतेऽपि वा । चंद्रे षष्ठाष्टरिःफस्थे दोषो नास्ति न संशय इति कश्यपोक्तेः ॥ ८८ ॥

अथाब्ददोषाद्यनेकदोषापवादं वसंततिलकयाह—

अब्दायनर्तुतिथिमासभपक्षदग्ध-
तिथ्यंधकाणबधिरांतमुखाश्च दोषाः ॥
नश्यंति विद्गुरुसितेष्विह केंद्रकोणे
तद्वच्च पापविधुयुक्तनवांशदोषः ॥ ८९ ॥

अब्दायनेति ॥ विद्गुरुसितेषु केंद्रकोणे सप्तमस्थानरहितेषु सत्सु एते दोषाः नश्यंति । कश्यपः । अब्दायनर्तुमासोत्थाः पक्षतिथ्यृक्षसंभवाः । ते सर्वे नाशमायांति केंद्रसंस्थे शुभग्रहे ॥ काणांधबधिरोद्भूता दग्धलग्नतिथिभवाः । ते दोषा नाशमायांति केंद्रसंस्थे शुभग्रहे ॥ अकालजाश्च नीहारविद्युत्पांस्वभ्रसंभवाः । परिवेषप्रतीसूर्यशक्रचापध्वजादयः ॥ दोषप्रदा मंगलेषु कालजाश्चेन्न दोषदाः । गुरुरेकोऽपि केंद्रस्थः शुक्रो वा यदि वा बुधः ॥ हरेः

१ नीचे इत्यपि पाठः ।

Aho ! Shrutgyanam

स्मृतिर्यथा हंति तद्वद्दोषांस्त्रिकोणगः । लत्तोपग्रहचंडीशचंद्रजामित्रसंभवान् ॥ तत्केंद्रगो गुरुर्हंति सुपर्णः पन्नगानिव । तद्वच्चेति । तथा यदि पापाः क्रूराः विधुश्चंद्रस्तैर्युक्तो यो नवांशस्तद्दोषोऽपि नश्यति । उक्तं च । सत्क्रूरराशेरशुभो नवांशः प्रोक्तः सपापोऽपि विलग्नसंस्थः । त्रिकोणकेंद्रेषु गुरुः सितो वा यदा तदाऽसावशुभोऽपि शस्त इति ॥ ८९ ॥

अथान्यान्परिहारान् शालिन्याह—

केंद्रे कोणे जीव आये रवौ वा लग्ने चंद्रे वापि वर्गोत्तमे वा ॥
सर्वे दोषा नाशमायांति चंद्रे लाभे तद्वद्दुर्मुहूर्तांशदोषाः ॥ ९० ॥

केंद्रे कोण इति ॥ केंद्रे सप्तमरहिते १, ४, १० कोणे नवपंचमे वा तत्र गुरौ सति सर्वे दोषा नाशमायांति । कश्यपः । काव्ये गुरौ वा सौम्ये वा यदा केंद्रत्रिकोणगे । नाशं यांत्यखिला दोषा पापानीव हरिस्मृतेः ॥ अथवा । आये एकादशे रवौ सति सर्वे दोषा नाशमायांति । वा लग्ने चंद्रे वा वर्गोत्तमे राशिनवांशयुक्ते सति । यथा मिथुने मिथुनो नवांशस्तदापि दोषनाशः द्वितीयवाशब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् । चंद्रो लग्नादुपचये सर्वदोषविनाशकः । उक्तं च । यत्रैकादशगः सूर्यो दोषा नाशं ययुस्तदा । स्मरणादेव रुद्रस्य पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ वर्गोत्तमगते लग्ने सर्वे दोषा लयं ययुः । चंद्रो वाप्यथवा येऽपि ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ चंद्रेति । एकादशे चंद्रे सति दुर्मुहूर्तांशदोषाः दुर्मुहूर्ता रवावर्यमेत्यादयः अंशदोषाः पापग्रहनवांशाख्यः ते सर्वे तद्वन्नाशमायांति । कश्यपः । मुहूर्तलग्नषड्वर्गकुनवांशग्रहोद्भवाः । ये दोषास्तान्निहंत्येव यत्रैकादशगः शशी ॥ ज्योतिर्निबंधे । नक्षत्रदोषं कुनवांशदोषं गंडांतदोषं च मुहूर्तदोषम् । विरुद्धपंचांगविरुद्धदोषं निशाकरो लाभगतो निहंति ॥ ९० ॥

अथ सामान्यतो दोषसमूहपरिहारं शिखरिण्याह—

त्रिकोणे केंद्रे वा मदनरहिते दोषशतकं
हरेत्सौम्यः शुक्रो द्विगुणमपि लक्षं सुरगुरुः ॥
भवेदाये केंद्रेऽगप उत लवेशो यदि तदा
समूहं दोषाणां दहन इव तूलं शमयति ॥ ९१ ॥

त्रिकोणे इति ॥ त्रिकोणे सप्तमरहिते केंद्रे वा यदि सौम्यो बुधस्तिष्ठेत्तदा दोषशतकं हरेत् । उक्तस्थानस्थितः शुक्रोऽपि द्विगुणं दोषशतकं दोषद्विशतिं हरेत् । तथोक्तस्थानस्थितो गुरुरपि लक्षदोषान्हरेत् । भवेदिति अंगपो लग्नस्वामी उत वार्थे लवेशो लग्नगतनवांशनाथो वा आये केंद्रे यदि भवेत्तदा दोषाणां समूहं नाशयति । यथा दहनोऽग्निस्तूलं का-

१ न कालजानित्यपि पाठः । २ चंद्र इत्यपि पाठः ।

Aho ! Shrutgyanam

र्पासमिव । लग्नेट् लग्नांशनाथो वा आयगः केंद्रगोऽपि वा । राशिं निहंति दोषाणामिंधनानीव पावक इति ॥ ९१ ॥

अथ लग्नविंशोपकाननुष्टुभाह—

द्वौ द्वौ ज्ञभृग्वोः पंचेंदौ रवौ सार्धत्रयो गुरौ ॥
रामा मंदागुकेत्वारे सार्धैकैकं विंशोपकाः ॥ ९२ ॥

द्वाविती ॥ ज्ञभृग्वो रेखाप्रदयोः सतोर्द्वौ द्वौ विंशोपकौ एवंविधे चंद्रे पंच सूर्ये सार्धास्त्रयः ३, ३० गुरौ रामास्त्रयः मंदः शनिः अगू राहुः केतुः आरो भौमः एषु प्रत्येकं सार्धमेकैकम् १, ३० विंशोपकाः ज्ञेयाः ॥ ९२ ॥

ग्रहवशेन श्वशुरादिविभागं सप्रयोजनमुपजात्याह—

श्वश्रूः सितोऽर्कः श्वशुरस्तनुस्तनु-
र्जामित्रपः स्याद्दयितो मनः शशी ॥
एतद्बलं संप्रतिभाव्य तांत्रिक-
स्तेषां सुखं संप्रवदेद्विवाहतः ॥ ९३ ॥

श्वश्रूरिति ॥ सितः कन्यायाः श्वश्रूः सूर्यः श्वशुरः तनुर्लग्नं तनुः शरीरं स्यात् । जामित्रपः सप्तमाधीशो दयितो भर्ता मनः चंद्रः एतेषां शुक्रादीनां बलं विचार्य तांत्रिकः सिद्धांतवेत्ता विवाहतो विवाहानंतरं श्वशुरादीनां सुखं स्यादिति प्रवदेत् । कैश्चिद्विशेषांतरमप्युक्तम् । सूयात्पतिः स्त्री च विधोस्तथाराद्वित्तं सुतो ज्ञाच्च सुखं गुरोश्च । धर्मः सितादर्कसुताच्च वेश्म ब्रूयात्समुद्वाहविधौ स्वयुक्त्येति ॥ ९३ ॥

अथ संकीर्णजातीनां विशेषं मत्तमयूरच्छंदसाह—

कृष्णे पक्षे सौरिकुजार्केऽपि च वारे
वर्ज्ये नक्षत्रे यदि वा स्यात्करपीडा ॥
संकीर्णानां तर्हि सुतायुर्धनलाभ-
प्रीतिप्राप्त्यै सा भवतीह स्थितिरेषा ॥ ९४ ॥

कृष्णे पक्ष इति ॥ कृष्णे पक्षे शनिभौमार्कवारे विवाहोक्तनक्षत्रभिन्ननक्षत्रेषु । चकाराद्दुष्टयोगेष्वपि संकीर्णानामनुलोमप्रतिलोमजानामपि यदि करपीडा विवाहः स्यात् तर्हि सा करपीडा सुतायुर्धनलाभप्रीतिप्राप्त्यै भवति । एषा स्थितिः वा ग्रहणात् तदभावे प्रागुक्तदिनेऽपि विवाहः कार्य इति ॥ ९४ ॥

अथ गांधर्वादिविवाहे विशेषमनुष्टुभाह—

Aho ! Shrutgyanam

गांधर्वादिविवाहेऽर्काद्भेद्४ नेत्र२ गुणे३ द्वः १ ॥
कु१ युगां४ गा६ ग्नि३ भू१ रामा३ स्त्रिपद्यामशुभाः शुभाः ॥ ९५ ॥

गांधर्वादीति ॥ प्राजापत्यब्राह्मदैवार्षसंज्ञा विवाहा उक्तकाले एव कार्याः । गांधर्वासुरराक्षसपैशाचाख्याः सर्वकाले कार्याः । श्रीपतिः । प्राजापत्यब्रह्मदैवार्षसंज्ञाः कालेषूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः । गांधर्वाख्यश्चासुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकालं विधेय इति । तत्र केचिदर्कात्सूर्यनक्षत्रात् वेदनेत्रादिषु क्रमेण सदसत्स्यात् । अयमर्थः । सूर्याक्रांतनक्षत्रमारभ्य चत्वार्यशुभानि ततो द्वे शुभे ततस्त्रीण्यशुभानीति क्रमेण त्रिपद्यां त्रयाणां पदानां समाहारस्त्रिपदी तस्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रपदाभिधचक्रत्रये इत्यर्थः। एकस्मिन्नपि पदे यदशुभं तदशुभमेव पदत्रये यच्छुभं तच्छुभमिति कृत्वा अशुभशुभानि क्रमेण पठितानि । एवं पदत्रयाणां मुख्यार्थकथनात् पृथक्कथनानुपयोगः । तथा च पदत्रयमुक्तं भूपालवल्लभे । एवं पदत्रये शुद्धं नक्षत्रं दापयेत्सुधीः । गांधर्वासुरपैशाचराक्षसेषु विचिंतयेदिति ॥ ९५ ॥

अथ विवाहात्प्राक्कर्तव्यानामावश्यककृत्यानां दिनशुद्धिं पृथ्वीछंदसाह—

विधोर्बलमवेक्ष्य वा दलनकंडनं वारकं
गृहांगणविभूषणान्यथ च वेदिकामंडपान् ॥
विवाहविहितोडुभिर्विरचयेत्तथोद्वाहतो
न पूर्वमिदमाचरेत्त्रिनवषण्मिते वासरे ॥ ९६ ॥

विधोर्बलमिति ॥ अत्र चंद्रबलमावश्यकत्वेन विचार्यम् । वारको मंगलकलशः गृहभूषणं चित्रलेखनादि अंगणविभूषणं संमार्जनगोमयाद्यालेपः अथ च वेदिका चत्वरं वधूवरोपवेशनार्थं स्थलविशेषः । मंडपो गृहाच्छादनं कटादिना वितानादिना वा । बहुवचनात्कटाहाद्यारोपणहरिद्राचंदनकांजिकाधारणादिसकलशुभारंभान् उद्वाहतः पूर्वं विवाहोक्तैरुडुभिर्नक्षत्रैः पंचांगशुद्धिसहिते दिने रचयेत् । उपलक्षणत्वात्तत्तन्नक्षत्रैरुपनयनादावपि पूर्वशुभकर्मप्रारंभान्विरचयेत् । तथा इदं कार्यजातं त्रिनवषण्मिते दिने पूर्वं न आचरेत् । चित्रा विशाखा शततारकाश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् । हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कंडनमुंडनादिकमिति दैवज्ञमनोहरोक्तेः । तत्रैव । मूलेंदुरुद्रश्रवणार्कपौष्णविश्वेशचित्रानलरेवतीषु । संस्थापनं कांजिककुंडिकाया वारे रवेर्भूमिसुतस्य शस्तामिति ॥ ९६ ॥

अथ वेदीलक्षणं मंडपोद्वासने दिननियमं च शालिन्याह—

हस्तोच्छ्राया वेदहस्तैः समंतात्तुल्या वेदी सद्मतो वामभागे ॥
युग्मे घस्रे षष्ठहीने च पंचसप्ताहे स्यान्मंडपोद्वासनं सत् ॥ ९७ ॥

हस्तोच्छ्रायेति ॥ स्पष्टार्थः । नारदः । हस्तोच्छ्रिता चतुर्हस्तैश्चतुरस्रा समंततः । स्तं-

Aho ! Shrutgyanam

भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे स्वसद्मनः ॥ मंडपोद्वासनं कार्यं समे तु दिवसे बुधैः । षष्ठं तु विषमं नेष्टं मुक्त्वा पंचमसप्तमाविति ॥ ९७ ॥

कैश्चित्तैलादिलापने संख्यानियम उक्तस्तमाह—

मेषादिराशिजवधूवरयोर्घटोश्च तैलादिलापनविधौ कथितात्र संख्या ॥ शैला दिशः शरदिगक्षनगाद्रिबाणा बाणाक्षबाणगिरयो ७,१०,५,१०,५,७,७,५,५,५,५,७ विबुधैस्तु कैश्चित् ॥ ९८ ॥

मेषादिराशिजेति ॥ स्पष्टम् देशविशेषे औडीछादौ प्रसिद्धम् ॥ ९८ ॥

अथ प्राप्तशिष्टसंमतं मंडपादौ स्तंभवेशनमिंद्रवज्रयाह—

सूर्येऽगनासिंहघटेषु शैवे स्तंभोऽलिकोदंडमृगेषु वायौ ॥
मीनाजकुंभे निर्ऋतौ विवाहे स्थाप्योऽग्निकोणे वृषयुग्मकर्के ॥ ९९ ॥

सूर्येति ॥ कन्यातुलासिंहगतेऽर्के शैवे ईशानकोणे विवाहादौ स्तंभः स्थाप्यः वृश्चिकधनुर्मकरस्थिते वायुकोणे मीनमेषकुंभस्थिते निर्ऋतिकोणे वृषमिथुनकर्कस्थिते अग्निकोणे स्तंभः स्थाप्य इत्यर्थः ॥ ९९ ॥

अथ गोधूलीप्रशंसां मंदाक्रांतयाह—

नास्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिंता
नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा ॥
नो वा योगो न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषो
गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता ॥ १०० ॥

नास्यामिति ॥ स्पष्टार्थम् । गोधूल्याधिकारिण आह नारदः । प्राच्यानां च कलिंगानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम् । गांधर्वादिविवाहेषु वैश्योद्वाहे च योजयेत् ॥ भूपालवल्लभे । विप्रेषु घटिकालाभे दातव्यं गोरजं बुधैः । संकीर्णे गोरजः शस्तं परेषु द्वितयं शुभम् । घटिकालग्नाभावे कार्यं विप्रैस्तु गोरजो लग्नमिति । महादोषान् परित्यज्य प्रोक्तान् धिष्ण्यादिकेषु च । कारयेद्गोरजो यावत्तावल्लग्नं शुभावहमिति । दैवज्ञमनोहरे । कुलिकं क्रांतिसाम्यं च मूर्तौ षष्ठाष्टगः शशी । पंच गोधूलिके त्याज्या अन्ये दोषाः शुभावहा इति । तत्र गोधूलिकाकालः केशवार्केणोक्तः । अत्रोभयत्र घटिकादलमिष्टमाहुर्ग्राह्यं तदंबरमणेरपि वार्धबिंबादिति । केचित्तु । यावद्दिनांते दिशि पश्चिमायां पश्येत्तृतीयं रविबिंबभागम् । तस्मात्परं नाडिकयुग्ममेके गोधूलिकालं मुनयो वदंति ॥ १०० ॥

---

१ समे च दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुध इत्यपि पाठः ।

Aho ! Shrutgyanam

अथ गोधूलिभेदं जलधरमालाछंदसाह—

पिंडीभूते दिनकृति हेमंततौ स्यादर्धास्ते तपसमये गोधूलिः ॥
संपूर्णास्ते जलधरमालाकाले त्रेधा योज्या सकलशुभे कार्यादौ १०१

पिंडीभूत इति ॥ हेमंततौ शीतकाले मार्गादिमासचतुष्टये दिनकृति सूर्ये पिंडीभूते गोलकसदृशे संध्यायां नीहारावृतत्वेन निष्प्रभे इत्यर्थः । तस्मिन् समये गोधूलिर्ज्ञेया । तथा तपसमये उष्णकाले चैत्रादिमासचतुष्टये अर्धास्ते अर्धबिंबस्य दृश्यत्वे गोधूलिः । जलधरा मेघास्तेषां माला समूहस्तस्योत्पादककाले वर्षाकाले श्रावणादिमासचतुष्टये सूर्ये संपूर्णास्ते दर्शनं यस्य तादृशे सति गोधूलिःजलधरमालाशब्देन छंदोनामापि सूचितम् । न केवलमियं विवाहे किंतु सकलशुभे कार्यादौ ज्ञेया ॥ १०१ ॥

अथ गोधूलिसमये अवश्यवर्ज्यानि वैश्वदेवीछंदसाह—

अस्तं याते गुरुदिवसे सौरे सार्के
लग्नान्मृत्यौ रिपुभवने लग्ने चंद्रौ ॥
कन्यानाशस्तनुमदमृत्युस्थे भौमे
वोढुर्लाभे धनसहजे चंद्रे सौख्यम् ॥ १०२ ॥

अस्तं याते इति ॥ गोधूलिरित्यनुवर्तते । बृहस्पतिवारे सूर्ये अस्तं याते गोधूलिः शुभा स्यात् न तु पूर्वम् । अर्धयामसद्भावात् । तथा सौरे शनौ सार्के सत्येव गोधूलिः शुभा नत्वस्तानंतरं कुलिकसद्भावात् । क्रांतिसाम्यमपि त्याज्यम् । तथा लग्नात् सायंकालीनलग्नात् मृत्यावष्टमे रिपुभवने षष्ठे वा लग्ने एव वा चंद्रे सति कन्यानाशः स्यात् । लग्ने इति लग्नस्थे मदनस्थे मृत्युस्थे वा भौमे सति वोढुर्वरस्य नाशः स्यात् शेषं स्पष्टम् ॥ १०२ ॥

अथ सूर्यस्पष्टगतिमिंद्रवज्रयाह—

मेषादिगेऽर्केऽष्टशरा ५८ नगाक्षाः ५७
सप्तेषवः ५७ सप्तशरा ५७ गजाक्षाः ५८ ॥
गोक्षाः ५९ खतर्काः ६० कुरसाः ६१ कुतर्काः
६१ कंगानि ६१ षष्टि ६० र्नवपंच ५९ भुक्तिः ॥ १०३ ॥

मेषादिगे इति ॥ मेषादिद्वादशराशिषु स्थूला कलात्मिका स्पष्टा गतिरित्यर्थः१०३

सूर्यस्य तात्कालिकीकरणमनुष्टुभाह—

संक्रांतियातघस्राद्यैर्गतिर्निघ्नी खषट् ६० हृता ॥
लब्धेनांशादिना योज्यं यातर्क्षे स्पष्टभास्करः ॥ १०४ ॥

संक्रांतियातेति ॥ पंचांगे यद्दिने यावतीषु घटीषु पलेषु च संक्रांतिस्ततआरभ्य स्वाभीष्टदिनपर्यंतं यावंति दिनानि घटी पलानि भवंति तैर्मेषादीष्टराशिस्थेऽर्केसति तत्सूर्यस्थू-

Aho ! Shrutgyanam

लस्पष्टगतिर्गुणनीया षष्ट्या भाज्या यल्लब्धं तेंऽशाः अवशिष्टं कलादि येंऽशावयवास्ते आदि-शब्दवाच्याः तैर्यातर्क्षे यातराशिः सूर्यभुक्तमेषादिराशिर्युक्तः सन् तात्कालिकः स्पष्टभास्करः स्यात् ॥ १०४ ॥

अथ लग्नानयनमनुष्टुभाह—

तनोरिष्टांशकात्पूर्वं नवांशा दशसंगुणाः ॥
रामाप्ता लब्धमंशाद्यं तनोर्वर्गादिसाधने ॥ १०५ ॥

तनोरिति ॥ लग्नस्य क्रियमृगास्येत्यादिना यो नवांशो विचारितः स यावत्संख्याक आगच्छेत्तत्पूर्वनवांशा यावंतः स्युस्ते दशगुणाः रामैस्त्रिभिराप्ता यल्लब्धं अंशाद्यं अंश-कलाविकलात्मकं तत्तनोरिष्टकालिकंभुक्तं स्यात्तेन कृत्वा प्रागुक्तकुजशुक्रसौम्येत्यादिप्रकारेण षड्वर्गसाधनं स्यात् ॥ १०५ ॥

अथैवं साधिताभ्यां रविलग्नाभ्यां घटिकानयनं शालिन्याह—

अर्काल्लग्नात्सायनाद्भोग्यभुक्तैर्भागैर्निघ्नात्स्वोदयात्खाग्निभक्तात् ॥
भोग्यं भुक्तं चांतरालोदयाढ्यं षष्ट्या भक्तं स्वेष्टनाड्यो भवेयुः १०६

अर्कादिति ॥ अयनांशसहितसूर्यात् राशिभोग्यांशैः सायनसूर्याक्रांतराशेः स्वदेशीय उदयः मेषादिराशीनां पलात्मकं प्रमाणं गुण्यं खाग्निभिस्त्रिंशता भक्तं लब्धानि भोग्यानि पलानि स्युः । एवं लग्नात्सायनांशात् । भुक्तांशैः स्वोदयो गुण्यः । खाग्निभक्तो लब्धानि भुक्तानि पलानि एवं जातानां भोग्यभुक्तपलानामैक्यं कार्यं तत्सायनांशलग्नार्कयोरंतरालोद-यपलैर्युक्तं कार्यं षष्ट्या भक्तं सूर्योदयादिष्टघटिका भवेयुः ॥ १०६ ॥

विशेषं शालिन्याह—

चेल्लग्नार्कौ सायनावेकराशौ तद्विश्लेषघ्नोदयः खाग्निभक्तः ॥
स्वेष्टः कालो लग्नमूनं यदार्काद्रात्रेः शेषोऽर्कात्सषड्भान्निशायाम् ॥

चेल्लग्नार्काविति ॥ सायनांशौ लग्नार्कौ एकराशौ भवतस्तयोर्विश्लेषोंऽतरांशास्तैर्गु-णितः स्वदेशीय उदयः ततः खाग्निभक्तो लब्धमिष्टकालः सूर्योदयात्स्यात् । तत्र यदाऽर्कात् सायनादेकराशिस्थितं लग्नमूनं स्यात् तदा य इष्टकाल आगतः स सूर्योदयात्प्राग्रात्रिशेषो भवेत् । अयमर्थः । आगत इष्टकालः षष्ट्यां प्रपात्य प्राग्दिनीयसूर्योदयानंतरमेतावानिष्टकालः अथवा रात्रिमानात् प्रपात्य प्राग्दिनीयसूर्यास्तानंतरमेतावानिष्टकालः । अथ रात्रौ विशेष उ-च्यते । निशायां रात्रौ सूर्यात् सषड्भात् राशिषट्कयुक्तात्प्रागुक्तप्रकारेणार्काल्लग्नादित्या-दिनेष्टकालः साध्यः स सूर्यास्तानंतरं भवेत् । एवमानीते इष्टकाले अंशप्रवृत्तेः पंच पलानि योज्यानि॰इति संप्रदायः । तत्समये परस्परदर्शनं कार्यमित्याह । कश्यपः । अन्योऽन्यवी-क्षणं सम्यक् सुलग्ने कारयेत्सदेति । सुलग्नसाधनं घटिकायंत्रेण । तत्र घटीस्थापने नारदः ।

Aho ! Shrutgyanam

ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे गंधपुष्पैरलंकृते । तंडुलस्थे रत्नयुते शुचिभूमावहर्पतेः ॥ मंडलार्धोदयं वीक्ष्य जलपात्रे विनिक्षिपेत् । तत्र मंत्रः । यंत्राणां मुख्ययंत्रं त्वमिति धात्रा पुरा कृतम् । दंपत्योरायुरारोग्यसुपुत्रधनहेतवे ॥ जलयंत्रकमेतस्मादिष्टसिद्धिप्रदं भवेत् । अथवा साधयेत्कालं द्वादशांगुलशंकुनेति । शंकुघटीज्ञानं रामविनोदे मयोक्तं तत एव ज्ञेयम् ॥ १०७ ॥

अथ विवाहादौ शुभकार्येऽवश्यवर्ज्यानविस्मरणार्थं शार्दूलविक्रीडितत्रयेणाह—

उत्पातान्सहपातदग्धतिथिभिर्दुष्टांश्च योगांस्तथा
चंद्रेज्योशनसामथास्तमयनं तिथ्याः क्षयर्द्धी तथा ॥
गंडांतं च सविष्टिसंक्रमदिनं तन्वंशपास्तं तथा
तन्वंशेशविधूनथाष्टरिपुगान् पापस्य वर्गांस्तथा ॥ १०८ ॥
सेंदुक्रूरखगोदयांशमुदयास्ताशुद्धिचंडायुधान्
खार्जूरं दशयोगयोगसहितं जामित्रलत्ताव्यधम् ॥
बाणोपग्रहपापकर्तरि तथा तिथ्यृक्षवारोत्थितं
दुष्टं योगमथार्धयामकुलिकाद्यान्वारदोषानपि ॥ १०९ ॥
क्रूराक्रांतविमुक्तभं ग्रहणभं यत्क्रूरगंतव्यभं
त्रेधोत्पातहतं च केतुहतभं संध्योदितं भं तथा ॥
तद्वच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं सर्वानिमान्संत्यजे-
दुद्वाहे शुभकर्मसु ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषानपि ॥ ११० ॥

॥ इति मु० चिंता० षष्ठं विवाहप्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

उत्पातानिति । सेंदुक्रूरेति । क्रूराक्रांतेति च ॥ उत्पातादीन् उद्वाहे विवाहे यज्ञोपवीतादौ शुभकर्मसु च त्यजेदिति तृतीयश्लोकेनान्वयः । उत्पातान् दिव्यभौमांतरिक्षान् लक्षणया तत्संबंधि सप्त वर्ज्यान् दिवसान् पातो महापातः क्रांतिसाम्यमिति यावत् दग्धतिथयश्चापांत्यगे गोघटगे इत्यादिनोक्ताः । एतैः सह उत्पातं त्यजेदित्यर्थः । तथा दुष्टान् व्यतीपातादियोगान् चंद्रगुरुशुक्राणामस्तमयनमस्तम् तिथ्याः क्षयर्द्धी तिथिक्षयं तिथिवृद्धिं च गंडांतं तिथिनक्षत्रलग्नानां त्रिविधम् विष्टिर्भद्रा संक्रमदिनं संक्रमकालादुभयतो वर्ज्या घटिका अयने विषुवे च पूर्वापरदिनसहितसंक्रांतिदिनं ज्ञेयम् ताभ्यां सहितमिति पूर्वेण संबंधः । तन्वंशपास्तं तनुर्लग्नं अंशो लग्नगतो विहितनवांशः तौ पातः तौ तन्वंशपौ तयोरस्तम् । लग्नेशास्तं लग्ननवांशस्वाम्यस्तं च तथा तन्वंशेशविधून् लग्नेशनवांशेशचंद्रान् अष्टमषष्ठस्थानगान् तथा पापग्रहवर्गान् ॥ १०८ ॥ सेंदुक्रूरखगोदयांशम् इंदुसहितं लग्नं लग्नांशं च क्रूरग्रहसहितं लग्नं लग्नांशं चेत्यर्थः । उदयास्तशुद्धिं उदयशुद्धिमस्तशुद्धिं च इतरथा ज्ञेयमशुभामित्याद्युक्ताम् चंडायुधं हर्षणवैधृतिसाध्येत्यादिनोक्तम् । खार्जूरं व्याघातगंड इत्यादिनोक्तम् । दशयोगः सूर्यर्क्षचं-

Aho ! Shrutgyanam

द्वर्क्षयुतेऽभेशेष इत्यादिनोक्तः योगो ग्रहयुतिः तत्सहितं जामित्रलत्ताव्यधं जामित्रं लग्नजामित्रं चंद्रजामित्रं च लग्नाच्चंद्रान्मदनभवनगे इत्यादिनोक्तम् । लत्ता ज्ञराहुपूर्णेंदुसिता इत्यादिनोक्ता व्यधं पंचशलाकासप्तशलाकोक्तं च बाणाः पंचकं उपग्रहः प्रसिद्धः शराष्टदिक्-शक्रनगेत्यादिः पापकर्तरि । समाहारद्वंद्वैकवचनम् । तिथ्यृक्षवारोत्थितं दुष्टयोगं तिथिनक्षत्रवारैः कृत्वोत्थितमुत्पन्नं दुष्टयोगं यथा तिथिनक्षत्रोत्थं सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिम इत्यादि तिथिवारोद्भवं सूर्येशपंचेत्यादि नक्षत्रवारोद्भवं याम्यं त्वाष्ट्रमित्यादि तिथिनक्षत्रवारोद्भवं हस्तार्के पंचमीतिथावित्यादि दुष्टयोगम् अर्धयामकुलिकाद्यान्वारदोषानपि आदिशब्देन दुर्मुहूर्तादिकं च ॥ १०९ ॥ क्रूराक्रांतविमुक्तभं क्रूरग्रहेण युक्तभं क्रूरविमुक्तभं च ग्रहणभं यस्मिन्नक्षत्रे चंद्रसूर्योपरागो जातस्तद्भं क्रूरस्य गंतव्यभं त्रेधोत्पाताः त्रिविधोत्पाताः दिव्यभौमांतरिक्षाः तैर्हतं भम् तन्मासषट्कं त्याज्यम् एवं ग्रहणनक्षत्रमपि केतुहतभम् केतुना धूननैः स्पर्शनैश्च यन्नक्षत्रं हतं अनेन नक्षत्रांतरेऽपि दोषः संध्योदितं भं सूर्यास्तकाले यन्नक्षत्रस्य क्षितिजे उदयः तत्सूर्यनक्षत्राच्चतुर्दशं नक्षत्रमित्यर्थः । तद्भच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं ग्रहेण भेदितं ग्रहयुद्धगतं च षण्मासं निषिद्धम् । तथा ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषान् व्यये शनिः खेऽवनिज इत्यादिकान् लग्नसंबंधिदोषान् संत्यजेत् । मूलवाक्यानि पूर्वमेव लिखितानि ॥ ११० ॥

इति मुहूर्तचिंतामणौ प्रमिताक्षरायां षष्ठं विवाहप्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

अथ वधूप्रवेशप्रकरणप्रारंभः ॥

अथ वधूप्रवेशप्रकरणं व्याख्यायते । अथ वधूप्रवेशो नाम नूतनपरिणीताया वध्वाः प्रथमतः क्रियमाणो भर्तृगृहे प्रवेशो वधूप्रवेशस्तन्मुहूर्तमुपेंद्रवज्रयाह—

समाद्रिपंचांकदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनांतराले ॥
शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ॥ १ ॥

समाद्रीति ॥ विवाहाद्विवाहदिवसादारभ्याष्टिदिनांतराले षोडशदिनमध्ये समाद्रिपंचांकदिने समदिनानि द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशचतुर्दशषोडशानि विषमदिनमध्ये सप्तमपंचमनवमदिनानि तेषु वधूप्रवेशः शुभः । नारदः । आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाप्यष्टमे दिने । वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेऽथ समे दिने । षष्ठादीनां समत्वादेव ग्रहणे सिद्धे पुनस्तदुक्तिरतिप्राशस्त्यार्था । वधूप्रवेशनं कार्यं पंचमे सप्तमे दिने । नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले । इति ज्योतिर्निबंधे । षोडशदिवसानंतरं वधूप्रवेशस्तदा विषमाब्दमासदिने विषमवर्षे विषममासे विषमदिने च कार्यः । अक्षवर्षादिति पंचवर्षादनंतरं विषमवर्षादिनियमो नास्ति । किंतु दोषरहितकाले वधूप्रवेशो विधेयः । उक्तं च । विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे दिने षोडशवासरांतः । ऊर्ध्वं ततोऽब्देऽयुजि पंचमांतं पुनः पुरस्तान्नियमो न चास्तीति ॥ १ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ नक्षत्रशुद्धिमनुष्टुभाह–

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ॥
वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ २ ॥

ध्रुवेति ॥ ध्रुवादिनक्षत्रेषु वधूप्रवेशः सन् शुभफलः रिक्तारार्के रिक्तासु ४, ९, १४ आरे भौमे अर्के रवौ न इष्टः अर्थादन्यतिथिषु रविभौमव्यतिरिक्तवारेषु शस्त इत्यर्थः । अपरैर्बुधवारेऽपि नेष्टः ॥ २ ॥

अथ विशेषं महेंद्रवज्रयाह–

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हंत्यादिमे भर्तृगृहे वधूः शुचौ ॥
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधौ तातगृहे विवाहतः ॥ ३ ॥

इति मु० सप्तमं वधूप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमिति ॥ विवाहतो विवाहानंतरं आदिमे ज्येष्ठे भर्तृगृहे स्थिता वधूः पतिज्येष्ठं हंति आदिमे अधिके पतिं भर्तारं हंति आदिमे शुचावाषाढे श्वश्रूं भर्तृजननीं हंति आदिमे सहस्ये पौषे श्वशुरं भर्तुः पितरं हंति । आदिमे क्षये क्षयमासे भर्तृगृहे तिष्ठंती तनुं निजं शरीरं हंति म्रियत इत्यर्थः । तथा आदिमे मधौ चैत्रे तातगृहे पितृगृहे तिष्ठंती तातं पितरं हंतीत्यर्थः । यदि पित्राद्यभावस्तर्हि तन्मासि तद्गृहावस्थितौ सत्यामपि न कोऽपि दोष इत्यर्थः । न भयं तेषामभावे इत्युक्तेः । ज्योतिर्निबंधे । विवाहात्प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके न सा भर्तृगृहे तिष्ठेच्चैत्रे तातगृहेऽपि च ॥ आषाढो ज्येष्ठोपलक्षकः ॥३॥

इति मुहूर्तचिंतामणौ प्रमिताक्षरायां सप्तमं वधूप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अथ द्विरागमनप्रकरणप्रारंभः ॥

अथ द्विरागमनप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र वधूप्रवेशानंतरं परावृत्य पितृगृहं प्राप्ताया वध्वाः पुनर्भर्तृगृहे प्रवेशो द्विरागमनशब्दवाच्यः तन्मुहूर्तं पंचचामरच्छंदसाह–

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ
रवीज्यशुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वासरे ॥
नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके
द्विरागमं लघुध्रुवे चरेऽस्रपे मृदूडुनि ॥ १ ॥

चरेदिति ॥ अथानंतरं वक्ष्यमाणेषु लघुध्रुवादिनक्षत्रेषु ओजहायने विषमवर्षे प्रथम तृतीयादिवर्षे तथा घटालिमेषगे रवौ कुंभे वृश्चिके मेषे रवौ सति तथा वरस्य रवीज्यशुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वारे मिथुनमीनकन्यातुलावृषाणामन्यतमे लग्ने शुभयुतदृष्टे सति ल-

Aho ! Shrutgyanam

ध्रुवचराणि प्रसिद्धानि अस्वपो मूलम् मृदूनि प्रसिद्धानि एतेषु द्विरागमं चरेत्कुर्यात् । अत्र सामान्यतः गुरुशुक्रास्तादिविचारः पूर्वोक्त एव ज्ञेयः ॥ १ ॥

अथ संमुखशुक्रदोषं प्रहर्षिण्याह—

दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद्ग-
च्छेयुर्न हि शिशुगर्भिणीनवोढाः ॥
बालश्चेद्व्रजति विपद्यते नवोढा
चेद्वन्ध्या भवति च गर्भिणी त्वगर्भा ॥ २ ॥

दैत्येज्य इति ॥ दैत्येज्यः शुक्रः गंतव्यदिगभिमुखे गंतुर्दक्षिणभागे वा स्थितः स्यात्तदा शिशुर्बालकः गर्भिणी गर्भवती नवोढा नूतनपरिणीता एता न गच्छेयुः । यदि प्रतिशुक्रे गच्छेयुस्तदेत्याह बाल इति चेद्बालो गच्छति तदा विपद्यते म्रियते नवोढा चेद्व्रजति तदा वंध्या अपत्यसंभावनारहिता स्यात् । गर्भिणी चेद्व्रजति तदा अगर्भा गर्भस्राववती स्यात् । यदि शुक्रः पूर्वस्यामुदितः पूर्वा गंतुः संमुखः उत्तरां गंतुर्दक्षिणः पश्चिमां गंतुः पृष्ठे दक्षिणां गंतुर्वामे स्यात् तदा पूर्वोत्तरे दिशौ न गच्छेत् । यदि पश्चिमायामुदितः शुक्रः तदा पश्चिमां गंतुः संमुखः दक्षिणां गंतुर्दक्षिणः पूर्वां गंतुः पृष्ठे उत्तरां गंतुर्वामे तदा पश्चिमदक्षिणदिशौ न गच्छेत् केचिद्दीपोत्सवप्रतिपादि नक्षत्रादिनियमं विनैव वधूप्रवेशं वांछंति । उक्तं च । अस्तंगते गुरौ शुक्रे सिंहस्थे वा बृहस्पतौ । दीपोत्सवदिने चैव कन्या भर्तृगृहं विशेदिति ॥ २ ॥

अथ प्रतिशुक्रापवादं मंजुभाषिण्याह—

नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे करपीडने विबुधतीर्थयात्रयोः ॥
नृपपीडने नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्न हि ॥ ३ ॥

नगरप्रवेशेति ॥ विषयो देशः आदिशब्देन ग्रामः तस्योपद्रवे अन्यराजकृतोपद्रवे दुर्भिक्षाद्युपद्रवे वा सति गंतव्यदिशि प्रतिशुक्रदोषो नास्ति । करपीडने विवाहोद्देशेन यात्रायां सत्यां विबुधा देवास्तेषां यात्रा यथा नगरकोटयात्रा तीर्थयात्रा प्रयागादिका तयोः नृपपीडने राज्ञः सकाशात् पीडायां दंडादिकृतायां सत्याम् नववधूर्नूतनपरिणीता वधूः तस्याः प्रवेशे प्रतिभार्गवः संमुखशुक्रः दोषकृन्नहि भवति । भार्गवः । स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विभ्रमे तथोद्वाहे । नूतनवध्वा गमने प्रतिशुक्रविचारणं नास्ति । एकग्रामे पुरे वापि दुर्भिक्षे राजविप्लवे । विवाहे तीर्थयात्रायां प्रतिशुक्रो न दुष्यतीति बादरायणोक्तेः ॥ ३ ॥

अथ प्रौढस्त्रीणां द्विरागमने तथा गोत्रपरत्वेन च प्रतिशुक्रापवादांतरमिंद्रवंशयाह—

पित्र्ये गृहे चेत्कुचपुष्पसंभवः स्त्रीणां न दोषः प्रतिशुक्रसंभवः ॥

Aho ! Shrutgyanam

भृग्वंगिरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रीणां भरद्वाजमुनेः कुले तथा ॥ ४ ॥

इति मु० अष्टमं द्विरागमनप्रकरणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

पित्र्ये गृह इति ॥ पितुरिदं पित्र्यं तस्मिन्पित्र्ये गृहे कुचौ स्तनौ पुष्पमृतुस्तत्संभवः स्यात्तदा स्त्रीणां प्रतिशुक्रसंभवो दोषो नास्ति । उपलक्षणत्वाद्गर्तुः सूर्यगुरुशुद्धिराहित्यसंभवोऽपि दोषो नास्तीत्यपि ज्ञेयम् । चंडेश्वरः । पित्र्यागारे कुचकुसुमयोः संभवो वा यदि स्यात्पत्युः शुद्धिर्न भवति रवेः संमुखो वाथ शुक्रः । शुक्रे लग्ने गुणवति तिथौ चंद्रताराविशुद्धौ स्त्रीणां यात्रा भवति सफला सेवितुं स्वामिसद्म ॥ अथ भृग्वंगिरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रीणां भरद्वाजमुनेः कुले कोऽर्थः । एतद्वंशोत्पन्नानां प्रतिशुक्रसंभवो दोषो नास्ति । बादरायणः । कश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वत्र्यंगिरसेषु च । भारद्वाजेषु वत्सेषु प्रतिशुक्रो न दुष्यतीति । अयं चापवादो यात्रामात्रसाधारणः । केचिदमुमपवादं बुधसंमुखेऽप्यूचुः । महेश्वरः । तीर्थानां गमने तथैकनगरे ग्रामे च सौम्यं तथेति ॥ ४ ॥

इति दै० प्रमिताक्षरायां द्विरागमनप्रकरणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

अथाग्न्याधानप्रकरणप्रारंभः ॥

अथाग्न्याधानप्रकरणं व्याख्यायते । यत्र तु कालनियमेनाधानादिविहितं तत्र न मुहूर्तविचारः । यदा तु कालनियमाभावस्तदा मुहूर्तो विचार्य एवेत्यभिसंधायाग्न्याधानादिमुहूर्तं वसंततिलकयाह—

स्यादग्निहोत्रविधिरुत्तरगे दिनेशे
मिश्रध्रुवांत्यशशिशाक्रसुरेज्यधिष्ण्ये ॥
रिक्तासु नो शशिकुजेज्यभृगौ न नीचे
नास्तं गते न विजिते न च शत्रुगेहे ॥ १ ॥

स्यादग्निहोत्रविधिरिति ॥ उत्तरगे दिनेशे उत्तरायणगते सूर्ये सति मिश्रे कृत्तिकाविशाखे ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं अंत्यं रेवती शशी मृगः शाक्रो ज्येष्ठा सुरेज्यधिष्ण्यं पुष्यः एषु नक्षत्रेषु अग्निहोत्रविधिः स्यात् रिक्तासु नो कार्यम् चंद्रमंगलगुरुशुक्रेषु नीचगतेषु अस्तंगतेषु ग्रहांतरैर्विजितेषु तथा शत्रुगृहस्थितेषु अग्न्याधानं नो कार्यम् ॥ १ ॥

अथ लग्नशुद्धिं वसंततिलकयाह—

नो कर्कनक्रझषकुंभनवांशलग्ने नोऽब्जे
तनौ रविशशीज्यकुजे त्रिकोणे ॥
केंद्रर्क्षषट्त्रिभवगे च परैस्त्रिलाभ-
षट्खस्थितैर्निधनशुद्धियुते विलग्ने ॥ २ ॥

Aho ! Shrutgyanam

नो कर्केति ॥ कर्कमकरमीनकुंभानां नवांशे लग्ने चाग्न्याधानं नो कार्यम् । लग्ने चंद्रे सति नो कार्यम् । चंद्रस्योपलक्षणत्वाच्छुक्रेऽपि लग्ने सति नो कार्यम् । यस्य चाधानलग्नस्थे चंद्रे च भृगुनंदने । उपैति तस्य जातोऽग्निर्निर्वाणं सततं कुले इति कश्यपोक्तेः । रविशशी-ज्येति । सूर्यचंद्रगुरुभौमेषु त्रिकोणकेंद्रर्क्षषट्त्रिभवगेषु नवमपंचमलग्नचतुर्थसप्तमदशमषष्ठतृ-तीयस्थानस्थितेषु सत्सु परैर्बुधशुक्रशनिराहुकेतुभिः त्रिलाभषट्खस्थितैः तृतीयैकादशषष्ठद-शमस्थानस्थितैः सद्भिः आधानं हितं स्यात् । निधनेति अष्टमस्थानशुद्धियुते लग्ने अष्टम-स्थाने शुभग्रहोऽपि न शुभः । अथवा निधनशुद्धियुते इति निधनमष्टमं लग्नं कस्मादित्याकां-क्षायामाधानकर्तुर्जन्मराशिलग्नाभ्यामष्टमं लग्नमित्यर्थः । तस्य शुद्धत्वं तदभाव इति यावत् तेन युक्ते लग्ने इत्यर्थः । अत्र व्याख्यानद्वयेऽपि प्रमाणसद्भावात् द्वयमपि युक्तम् । अत्र निधनशुद्धिश्च निधनशुद्धिश्च ताभ्यां युते लग्न इत्यर्थः ॥ २ ॥

अथाग्न्याधानकर्तुराधानलग्नवशाद्यागकर्तृत्वयोगाननुष्टुभाह—

चापे जीवे तनुस्थे वा मेषे भौमेंऽबरे द्युने ॥
षट्त्र्यायेऽब्जे रवौ वा स्याज्जाताग्निर्यजति ध्रुवम् ॥ ३ ॥

इति श्रीमुहूर्तचिंतामणौ नवममग्न्याधानप्रकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

चाप इति ॥ जीवे गुरौ चापे धनुःस्थे लग्नगे सति आधानलग्ने धनुराख्ये गुर्वधिष्ठि-ते सतीत्यर्थः । अयमेको योगः । अथवा । भौमे मेषलग्नस्थिते सति अयं द्वितीयो योगः । अथवा । आधानलग्नाद्दशमे सप्तमे वा भौमे सति योगद्वयमेतत् । अथवा अब्जे चंद्रे षष्ठतृतीयैकादशस्थानस्थे सति योगत्रयमेतत् । अथवा षट्त्र्याये रवौ सूर्ये सति योगत्रय-मेतत् । एवंविधे लग्ने यो जाताग्निरग्निहोत्रकर्ता ध्रुवं निश्चयेन जयति ज्योतिष्टोमादियागं करोतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितप्रमिताक्षरायां नवममग्न्याधानप्रकरणं समाप्तम् ॥९॥

अथ राजाभिषेकप्रकरणमारंभः ॥

अथ राजाभिषेकप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र कालशुद्धिमिंद्रवंशयाह—

राजाभिषेकः शुभ उत्तरायणे गुर्विंदुशुक्रैरुदितैर्बलान्वितैः ॥
भौमार्कलग्नेशदशेशजन्मपैर्नो चैत्ररिक्तारनिशामलिम्लुचे ॥ १ ॥

राजाभिषेक इति ॥ उतरायणगते सूर्ये सति तथा गुर्विंदुशुक्रैः बृहस्पतिचंद्रशुक्रै-रुदितैः सद्भिः तथा भौमार्कौ प्रसिद्धौ लग्नेशो जन्मलग्नेशः दशेशौ वर्तमानजातकीयमहाद-शांतर्दशयोः स्वामिनौ । जन्मपो जन्मराशिस्वामी एतैर्बलान्वितैः उच्चस्वगृहादिगृहस्थैः सद्भिः राजाभिषेकः शुभ उक्तः । नो चैत्रेति । चैत्रमासः रिक्ताः ४, ९, १४ आरो भौमः

Aho ! Shrutgyanam

निशा रात्रिः मलिम्लुचोऽधिमासः एषु राजाभिषेको नो कार्यः । कुत्रचित् भौमवार उक्तः स सेनापत्यभिषेकपरो ज्ञेयः भौमस्य सेनापतित्वात् । गोविप्रराज्यपितृकर्मचतुष्पदेऽपीति चतुष्पदे राज्याभिषेक उक्तः सोऽमावास्यायां भवत्येवेति ॥ १ ॥

अथाभिषेके नक्षत्राणि लग्नशुद्धिं चेंद्रवंशयाह—

शाक्रश्रवःक्षिप्रमृदुध्रुवोडुभिः शीर्षोदये वोपचये शुभे तनौ ॥
पापैस्त्रिषष्ठायगतैः शुभग्रहैः केंद्रत्रिकोणायधनत्रिसंस्थितैः ॥ २ ॥

शाक्रश्रव इति ॥ शाक्रो ज्येष्ठा श्रवः श्रवणः क्षिप्राण्यश्विनीपुष्यहस्ताः मृदूनि चित्रामृगरेवत्यनूराधाः ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयम् । एतैर्नक्षत्रैः राजाभिषेकः शुभः। अत्र चित्राग्रहणम् । ज्येष्ठाश्रवःक्षिप्रमृदुध्रुवेषु सौम्यग्रहस्याह्नि तिथौ च रिक्ता इति महेश्वरवचनात् । अन्यग्रंथे तदभावात् । शीर्षोदय इति । शीर्षोदया मिथुनसिंहकन्यातुलावृश्चिककुंभाख्याः एषु अथवा उपचये स्वजन्मलग्नात्स्वजन्मराशेर्वा उपचये त्रिषडेकादशदशमानामन्यतमे लग्ने सति शुभे शुभग्रहे तनौ लग्नगते सति शुभग्रहदृष्टे वा सति अभिषेकः शुभः। कश्यपः। जन्मराशेरुपचये लग्ने शीर्षोदये स्थिरे। शुभग्रहेक्षितयुते न युते वीक्षिते परैरिति। पापैरिति पापग्रहैः तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थितैः शुभग्रहैः प्रथमचतुर्थसप्तमदशमनवमपंचमैकादशद्वितीयतृतीयस्थानस्थितै राजाभिषेकः शुभः ॥ २ ॥

अथ स्थानविशेषे पापग्रहैरशुभं फलं सापवादमिंद्रवंशयाह—

पापैस्तनौ रुङ्निधने मृतिः सुते पुत्रार्तिरर्थव्ययगैर्दरिद्रता ॥
स्यात्खेऽलसो भ्रष्टपदो द्युनांबुगैः सर्वं शुभं केंद्रगतैः शुभग्रहैः ॥ ३ ॥

पापैरिति ॥ तनौ लग्नस्थितैः पापैर्ग्रहैः रुक् रोगः स्यात् राज्ञ इति शेषः । निधनेऽष्टमे पापग्रहैः मृतिः स्यात्। सुते पंचमैः पापग्रहैः पुत्रार्तिः पुत्रपीडा स्यात्। अर्थव्ययगैः द्वितीयद्वादशगैः पापैर्दरिद्रता स्यात् । खे दशमे पापैरलसो निरुद्योगः स्यात् । द्युनांबुगैः सप्तमचतुर्थस्थानस्थैः पापग्रहैः भ्रष्टपदो भ्रष्टैश्वर्यः स्यात् । अथापवादमाह । सर्वं शुभमिति केंद्रगतैः शुभग्रहैः सर्वं प्रागुक्तं दुष्टफलं शुभं शुभोदर्कं स्यात् ॥ ३ ॥

अथ विशेषं भुजंगप्रयातेनाह—

गुरुर्लग्नकोणे कुजोऽरौ सितः खे स राजा सदा मोदते राजलक्ष्म्या॥
तृतीयायगौ सौरिसूर्यौ खबंध्वोर्गुरुश्चेद्धरित्री स्थिरा स्यान्नृपस्य ४

इति मुहूर्तचिंतामणौ दशमं राजाभिषेकप्रकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

गुरुर्लग्नकोण इति ॥ लग्ने गुरुश्चेत्स्यादथवा कोणे नवपंचमे गुरुः स्यात् कुजो भौमोऽरौ शत्रुगृहे षष्ठे स्यात् खे दशमे सितः शुक्रः स्यात् एतादृशेऽभिषेकयोगे यो रा-

Aho ! Shrutgyanam

जामिषिच्यते स सदा सर्वकालं राजलक्ष्म्या मोदते अयमेको योगः । सौरिसूर्यौ तृतीयायगौ स्याताम् यथासंख्यं शनिस्तृतीये रविरेकादशे गुरुः खबंध्वोः खे दशमे बंधौ चतुर्थे वा चेद्गुरुः स्यादेवंविधयोगेऽभिषिक्तस्य नृपस्य धरित्री पृथ्वी स्थिरा सदा हस्तगता स्यात् ॥ ४ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुत० प्रमिताक्षरायां दशमं राजाभिषेकप्रकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

अथ यात्राप्रकरणप्रारंभः ॥

अथ यात्राप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र किंचित्कार्यमुद्दिश्य देशांतरगमनं यात्रेति । सा द्विधा परविषये विजयार्थं गंतुर्यात्रा तु समरविजयाख्या । निखिला परयात्रा या सा मान्या सा भवेद्द्विविधा । कथिततिथिवासरर्क्षेष्वभिमतफलदा भवेच्च सामान्या ॥ समराह्वया च यात्रा योगविलग्नक्षितीशयोगेष्विति । तत्र यात्राधिकारिणः प्रहर्षिण्याह—

यात्रायां प्रविदितजन्मनां नृपाणां दातव्यं दिवसमबुद्धजन्मनां च ॥
प्रश्नाद्यैरुदयनिमित्तमूलभूतैर्विज्ञाते ह्यशुभशुभे बुधः प्रदद्यात् ॥१॥

यात्रायामिति ॥ प्रविदितं छायाघटिकादिना ज्ञातं जन्मलक्षणया तत्कालीनलग्नकुंडलिकास्थशुभाशुभग्रहसूचितशुभाशुभफलोदर्कज्ञानं येषां तेषां नृपाणां यात्रायां दिवसं दातव्यं यात्रादिनं देयमित्यर्थः । यदाह वराहः । विदिते होराराशौ स्थानादिबलं ग्रहाणां च । आयुषि च परिज्ञाते शुभमशुभं यातुरिह वाच्यमिति । ननु यस्य जन्मकालो न ज्ञातस्तस्य कथं यात्रा स्यादित्यत आह । अबुद्धमज्ञातं जन्मकालो येषां तेषामपि प्रश्नाद्यैः पृच्छोपश्रुत्यादिभिरशुभशुभे विज्ञाते सति बुधो यात्रादिवसं प्रदद्यात् । कीदृशैः प्रश्नाद्यैः उदयो लग्नं निमित्तं शकुनादि एतदादीनि मूलभूतानि निदानकारणानि येषां तैः प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामपि फलोदय इति नारदोक्तेः ॥ १ ॥

अथ प्रश्नादेव फलं द्रुतविलंबितेनाह—

जननराशितनू यदि लग्नगे तदधिपौ यदि वा तत एव वा ॥
त्रिरिपुखायगृहं यदिवोदयो विजय एव भवेद्वसुधापतेः ॥ २ ॥

जननेति ॥ अथ यद्यपि जन्मलग्नजन्मराशिज्ञानं वर्तते तथापि जातकोक्तशुभफलदग्रहदशानवगमादज्ञातजन्मत्वं ज्ञेयम् । अतएव राशिलग्नज्ञानाभावे यदि पृच्छति प्रश्नं वक्ष्यति जननं जन्म तत्संबंधिनी राशिलग्ने ते यदि प्रश्नलग्नगते स्याताम् । जन्मराशिर्जन्मलग्नं वा यदि प्रश्नलग्ने स्यात्तदा वसुधापते राज्ञो विजय एव वा अथवा तदधिपौ लग्नगौ स्याताम् जन्मराशिपतिर्जन्मलग्नपतिर्वा यदि प्रश्नलग्ने स्यात्तदापि राज्ञो विजय एव । अथवा तत एव ताभ्यामेव जन्मलग्नजन्मराशिभ्यामेव त्रिरिपुखायगृहं तृतीयषष्ठदशमैका-

Aho ! Shrutgyanam

दशानामन्यतमं गृहं यद्युदयो लग्नं स्यात्तदापि विजय एव शत्रुक्षयः स्यादित्यर्थः ॥ २ ॥

अथान्यं प्रश्नं मंजुभाषिण्याह—

रिपुजन्मलग्नभमथाधिपौ तयोस्तत एव वोपचयसद्म चेद्भवेत् ॥
हिबुके द्युनेऽथ शुभवर्गकस्तनौ यदि मस्तकोदयगृहं तदा जयः ॥ ३ ॥

रिपुजन्मलग्नभमिति ॥ रिपोः शत्रोः जन्मलग्नभं जन्मलग्नं जन्मराशिश्च तच्चेत्प्रश्नलग्नाद्धिबुके चतुर्थे द्युने सप्तमे वा स्यात्तदा राज्ञो जयो भवेत् । अथवा तयोः शत्रुजन्मलग्नराश्योरधिपौ स्वामिनौ प्रश्नलग्नाद्धिबुके द्युने वा स्यातां तदापि विजय एव अथवा तत एव ताभ्यां शत्रोर्जन्मलग्नजन्मराशिभ्यामेवोपचयगृहं ३,६,१०,११ प्रश्नलग्नाद्धिबुके द्युने वा स्यात्तदापि जय एव । अथवा तनौ प्रश्नलग्ने शुभवर्गकः शुभग्रहाणां षड्वर्गकश्चेत्स्यात्तदापि जय एव । अथवा यदि मस्तकोदयाः शीर्षोदयराशयः प्रश्नलग्नगताश्चेत्स्युस्तदापि जय एव । वराहः । उदयमुदयपं वा जन्मभं जन्मपं वा तदुपचयगृहं वा वीक्ष्य लग्ने यियासोः । विनिहतमरिपक्षं विद्धि शत्रोरिदं वा हिबुकगृहसमेतं पृच्छतोऽस्तस्थितं वेति ॥ ३ ॥

अथान्यं प्रश्नं त्रोटकेनाह—

यदि पृच्छितनौ वसुधारुचिरा शुभवस्तु यदि श्रुतिदर्शनगम् ॥
यदि पृच्छति चादरतश्च शुभग्रहदृष्टयुतं चरलग्नमपि ॥ ४ ॥

यदीति ॥ अत्र वसुधापतेर्जय इत्यनुवर्तते । यदि पृच्छितनौ प्रश्नलग्ने वसुधा भूमी रुचिरा स्यात् अथवा यादि शुभवस्तु मंगलवस्तु मंगलवस्त्राभरणादि श्रुतिदर्शनगं श्रवणगोचरम् दर्शनमत्रचाक्षुषम् । अथवा प्रष्टा आदरतो दैवज्ञं पृच्छति तदापि वसुधापतेर्जयः स्यादिति सर्वत्र व्याख्येयम् । अथवा चरलग्नं मेषकर्कतुलामकराख्यं यदि प्रश्नलग्नं शुभग्रहैर्दृष्टं युतं वा तदापि जय एव ॥ ४ ॥

अथाशुभफलदं प्रश्नं मालिन्याह—

विधुकुजयुतलग्ने सौरिदृष्टेऽथ चंद्रे
मृतिभमदनसंस्थे लग्नगे भास्करेऽपि ॥
हिबुकनिधनहोराद्यूनगे वापि पापे
सपदि भवति भंगः प्रश्नकर्तुस्तदानीम् ॥ ५ ॥

विधुकुजेति ॥ चंद्रमंगलयुक्ते लग्ने सौरिणा शनिना दृष्टे तदा प्रश्नकर्तुर्भंगः पराजयो नाशो वा स्यात् । अथ चंद्रे मृतिभमदनसंस्थे चंद्रे अष्टमे सप्तमे वा लग्ने सूर्ये च सति एवंविधे योगे प्रष्टुः सपदि भंगः स्यात् अव्ययानामनेकार्थत्वात् । अपिशब्दो विपर्ययार्थः ।

Aho ! Shrutgyanam

तथाहि भास्करे मृतिभमदनसंस्थे चंद्रे लग्नगे च सति एवं विधयोगेऽपि प्रष्टुर्भंगः स्यात् । उक्तं च वराहेण । चंद्रे सरुधिरे लग्ने भंगः सूर्यात्मजेक्षिते । द्यूने नैधनगे चंद्रे लग्ने याते दिवाकरे ॥ विपर्यये वा यातस्य यात्राभंगवधागमा इति । वाऽथवा पापग्रहे चतुर्थाष्टमलग्नसप्तमानामन्यतमस्थे सति प्रष्टुर्भंगः स्यात् ॥ ५ ॥

अथ प्रश्नलग्ने विशेषं भुजंगप्रयातेनाह—

त्रिकोणे कुजात्सौरिशुक्रज्ञजीवा
यदैकोऽपि वा नो गमोऽर्काच्छशी वा ॥
बलीयांस्तु मध्ये तयोर्यो ग्रहः स्या-
त्स्वकीयां दिशं प्रत्युतासौ नयेच्च ॥ ६ ॥

त्रिकोणे कुजादिति ॥ कुजान्मंगलात्त्रिकोणे नवपंचमे सौरिशुक्रज्ञजीवाश्चेत्स्युः अथवा एकोऽपि वा सौरिशुक्रज्ञजीवानामन्यतमश्चेत्त्रिकोणे स्यात्तदाप्युद्दिष्टगमनं न स्यादेव । वाऽथवाऽर्काच्छशी त्रिकोणे चेत्स्यात्तदाप्युद्दिष्टदिग्गमनं न स्यादेव । तर्हि कस्यां दिशि गमनं स्यादित्यत आह बलीयानिति । तयोरधुनोक्तोद्दिष्टदिक्प्रतिबंधकारकयोर्ग्रहयोर्मध्ये यो ग्रहो बलवान् स्यात्सः स्वकीयां दिशं प्रत्युत सांप्रतं नयेत् ॥ ६ ॥

अथ योगांतरं मदलेखयाह—

प्रश्ने गम्यदिगीशात्खेटः पंचमगो यः ॥
बोभूयाद्बलयुक्तः स्वामाशां नयतेऽसौ ॥ ७ ॥

प्रश्नेति ॥ गम्यदिगीशात् गंतुं इष्टा या दिक् तस्या ईशः स्वामी प्रश्नलग्ने यत्र स्थाने स्यात्ततः पंचमे स्थाने यो ग्रहो बलयुक्तो बोभूयात् भवेत् तदाऽसौ ग्रहः स्वामाशां दिशं नयते प्रापयति ॥ ७ ॥

अथ यात्राकालं भुजंगप्रयातेनाह—

धनुर्मेषसिंहेषु यात्रा प्रशस्ता शनिज्ञोशनोराशिगे चैवमध्या ॥
रवौ कर्कमीनालिसंस्थेऽतिदीर्घा जनुः पंचसप्तत्रितारास्च नेष्टाः ॥८॥

धनुर्मेषेति ॥ धनुर्मेषसिंहस्थे रवौ यात्रा प्रशस्ता शुभफलदा । शनिज्ञोशनोराशिगे मध्या मकरकुंभमिथुनकन्यावृषतुलागते रवौ यात्रा मध्या स्यात् । कर्कमीनालिसंस्थे रवौ दीर्घा बहुकालसाध्या यात्रा न सफलेत्यर्थः । वराहः । यात्राजसिंहतुरगोपगते वरिष्ठा मध्या शनैश्चरबुधोशनसां गृहेषु । भानौ कुलीरवृषवृश्चिकगेऽतिदीर्घा शस्तश्च देवलमतेऽध्वनि पृष्ठगोऽर्क[1] इति । देवलमतेऽध्वनि मार्गे सूर्यः पृष्ठगतः शस्तः । पृष्ठगतत्वं तु वसंतराजोक्तभ्रम-

---

1 लग्नः ।

Aho ! Shrutgyanam

णवशेनेति केचित् । यथा । दग्धा दिगैशी ज्वलिता दिगैंद्री धूमान्विता चानलदिक् प्रभाते। इत्येवमेव प्रहराष्टकेन भुंक्ते दिशोऽष्टौ सविता क्रमेणेति । अनेन भ्रमणप्रकारेण यस्यां दिशि यस्मिन् प्रहरे भ्रमणसंभवः सा दिक् सूर्यसंमुखोच्यते । तत्पंचमी दिक् सूर्यपृष्ठगतेत्यु-च्यते इत्याहुः । वस्तुतस्तु । द्वादशराशिभ्रमवशेन यस्यां दिश्यर्कः स्थितः तां पृष्ठतः कृत्वा यायादित्यर्थः । यथा । लग्नस्थेऽर्के पश्चिमां दिशं गच्छेत् चतुर्थे दक्षिणां सप्तमे पूर्वाम् दशम उत्तरामित्यर्थः । यदाह देवलः । लग्नस्थे वरुणाशां हिबुकस्थे दक्षिणां रवौ यायात् । सप्तमगे पूर्वाशां मेषूरणसंस्थिते सौम्यामिति । एवं विदिक्ष्वपि ज्ञेयम् । यथाद्वितीयतृतीयस्थितेऽर्के-नैर्ऋतीम् पंचमे षष्ठे आग्नेयीम् अष्टमे नवमे ऐशानीयम् एकादशे द्वादशके वायव्यां गच्छे-दिति । अथ तारानिषेधमाह । जनुरिति । स्वजन्मनक्षत्राद्दिननक्षत्रं यत्संख्यं स्यात् तस्मिन्नव-भक्ते अवशिष्टाः प्रथमसप्तमपंचमतृतीयाख्यास्ताराश्चेत्स्युस्तदा नेष्टा निषिद्धाः ॥ ८ ॥

अथ तिथ्यादिशुद्धिं भुजंगप्रायतेनाह—

न षष्ठी न च द्वादशी नाष्टमी नो
सिताद्या तिथिः पूर्णिमाऽमा न रिक्ता ॥
हयादित्यमित्रेंदुजीवांत्यहस्त-
श्रवोवासवैरेव यात्रा प्रशस्ता ॥ ९ ॥

न षष्ठीति ॥ सिताद्या तिथिः शुक्लपक्षप्रतिपत् आसु तिथिषु यात्रा न प्रशस्तेत्यर्थः। नारदः । षष्ठ्यष्टमीद्वादशिकारिक्तामावर्जितासु च । यात्रा शुक्लप्रतिपदि निधनाय भवे-दिति । हयोऽश्विनी आदित्यं पुनर्वसुः मित्रोऽनुराधा इंदुर्मृगः जीवः पुष्यः अंत्यं रेवती हस्तश्रवणधनिष्ठाः एतैर्नवभिर्नक्षत्रैः यात्रा प्रशस्तोत्तमा मध्यानि निषिद्धानि च भानि। वसिष्ठ आह । तिस्रोत्तरावारुणनैर्ऋतेंद्रपूर्वात्रयं ब्राह्मभयुग्दशैवम् । मध्यान्यनिष्टान्यनलानि-लेशाद्विदैवचित्राहिमघांतकानीति । तिस्रोत्तरा इत्यार्षः संधिः । ननु वसिष्ठेन वारा उक्ताः। सुरेज्यदैत्येज्यशशींदुजानां वाराश्च वर्गाः शुभदाः प्रयाणे । आदित्यभूसूनुशनैश्चराणां वा-राश्च वर्गा न शुभप्रदाः स्युरिति । अत्र कुतो नोक्ता इति चेत् नारदादिभिरनुक्तत्वात् । वसिष्ठादिभिरुक्तपापग्रहवारशूलनिषेधवैयर्थ्याच्च दोषाधिक्यसूचनार्थं तदिति चेन्न । भिन्नकर्तृ-केषु मुनिग्रंथेषु मुनिवचनानां वैयर्थ्यानर्हत्वादेवंविधा गतिरुचिता न त्वेककर्तृके ग्रंथे । तत्र हि पूर्वापरविरोधे अर्थांतरं वा कार्यम् । ग्रंथांतरेण सहैकवाक्यता वा कार्या । तत्रायं वसिष्ठ-वाक्यस्वरसः । तुहिनकरमंदवारे इति वाक्यात् पापग्रहवारनिषेधो गौण इत्यनुमीयते तत्र तस्य गतिस्त्वेवं यदा स्वजन्मराशेरुपचये यो ग्रहः शुभो वाऽशुभो वा भवतु स सर्वदिक्षु हितः परं तु शूलदिशो विहाय यदात्वनुपचयस्थः स तु कुत्रापि न हितः । यदाहराजमा-

Aho ! Shrutgyanam

तैंडः । उपचयकरग्रहदिने शुद्धिः क्रूरेऽपि पापिनां भवति । सौम्येऽप्यनुपचयस्थे न भवति यात्रा शुभा यातुरिति । तस्मान्नार्थो वारोक्त्येति तेऽत्र नोक्ताः ॥ ९ ॥

अथ वारशूलं नक्षत्रशूलं च पृथ्वीच्छंदसाह—

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा
न चाजपद्भे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययोः ॥
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधैर्यमर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीवितार्थी बुधः ॥ १० ॥

न पूर्वदिशीति ॥ शक्रभे ज्येष्ठायां पूर्वदिशि न व्रजेत् । तथा विधुसौरिवारे सोमशनिवारेऽपि पूर्वदिशि न व्रजेत् । अजपद्भे पूर्वाभाद्रपदायां तथा गुरुवारेऽपि यमदिशि न व्रजेत् । रविशुक्रयोर्वारे तथा धातृभे रोहिण्यां पाशिदिशि पाशी वरुणस्तद्दिशि पश्चिमदिशि न व्रजेत् । कुजबुधवारे तथार्यमर्क्षे उत्तराफाल्गुन्यां सौम्यककुभि उत्तरदिशि न व्रजेत् । कः स्वजयजीवितार्थी बुधः । स्वं धनं जयः क्षत्रुपराजयपूर्वकः स्वोत्कर्षः जीवितमायुष्यं एतानि अर्थयतेऽसौ न व्रजेत् । वारशूलपरिहारमाह गुरुः। सूर्यवारे घृतं प्राश्य सोमवारे पयस्तथा । गुडमंगारके वारे बुधवारे तिलानपि ॥ गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि । माषान् भुक्त्वा शनेर्वारे गच्छन् शूले न दोषभाक् ॥ तांबूलं चंदनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तिलाः । वारशूलहराण्यर्काद्दानाद्धारणतोऽदनादिति ॥ १० ॥

अथ कालशूलं शार्दूलविक्रीतेनाह—

पूर्वाह्णे ध्रुवमिश्रभैर्न नृपतेर्यात्रा न मध्याह्नके
तीक्ष्णाख्यैरपराह्णके न लघुभैर्नो पूर्वरात्रे तथा ॥
मित्राख्यैर्न च मध्यरात्रिसमये चोग्रैस्तथा नो चरै-
रात्र्यंते हरिहस्तपुष्यशशिभिः स्यात्सर्वकाले शुभा ॥११॥

पूर्वाह्णे इति ॥ ध्रुवाख्यैर्मिश्राख्यैश्च भैः पूर्वाह्णे यात्रा न शुभा स्यात् । तीक्ष्णाख्यैर्भैर्मध्याह्ने न स्यात् । अपराह्णे लघुनक्षत्रैः पूर्वरात्रे मैत्राख्यैः मध्यरात्रिसमये उग्रनक्षत्रैः तथा रात्र्यंते रात्रितृतीयभागे चरनक्षत्रैर्यात्रा न स्यात् । तत्र विशेषः । हरिहस्तपुष्यशशिभिः श्रवणहस्तपुष्यमृगैः सर्वस्मिन्नपि काले यात्रा शुभा स्यात् ॥ ११ ॥

अथ तत्रापि कालविशेषे मध्यमानां निषिद्धानां च कियतां भानां वर्ज्यघटिका इंद्रवज्रयाह—

पूर्वाग्निपित्र्यांतकतारकाणां भूपप्रकृत्युग्रतुरंगमाः स्युः ॥
स्वातीविशाखेंद्रभुजंगमानां नाड्यो निषिद्धा मनुसंमिताश्च ॥ १२ ॥

Aho ! Shrutgyanam

पूर्वेति ॥ पूर्वात्रये प्रथमाः षोडश नाड्यो निषिद्धाः कृत्तिकायामेकविंशतिः मघाया-मेकादश भरण्यां सप्त घटिकाः त्याज्या इत्यर्थः । स्वातीविशाखाज्येष्ठाश्लेषानामाद्याश्चतुर्दश घटिकास्त्याज्याः । भरद्वाजः । भरण्यां सप्त घटिका वह्निभे चैकविंशतिः । एकादश घटीः पित्र्ये त्रिपूर्वासु च षोडश ॥ स्वातीसार्पविशाखार्द्राज्येष्ठासु च चतुर्दश । वर्जयेच्छेषघटिका यात्रायां शुभदा मता इति ॥ १२ ॥

अथ मतांतरेण वर्ज्यत्वमिंद्रवज्रयाह—

पूर्वार्धमाग्नेयमघानिलानां त्यजेद्धि चित्राहियमोत्तरार्धम् ॥
नृपः समस्तां गमने जयार्थी स्वातीं मघां चोशनसो मतेन ॥१३॥

पूर्वार्धमिति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ १३ ॥

अथ भानां जीवपक्षादिकाः संज्ञा भुजंगप्रयातेनाह—

तमोभुक्ततारा: स्मृता विश्वसंख्याः
शुभो जीवपक्षो मृतश्चापि भोग्याः ॥
तदाक्रांतभं कर्तरीसंज्ञमुक्तं
ततोऽक्षेंदुसंख्यं भवेद्ग्रस्तनाम ॥ १४ ॥

तमोभुक्तेति ॥ तमो राहुर्वक्री ग्रहस्तेन भुक्त्वा मुक्ता एवंविधा विश्वसंख्यास्त्रयोदशसंख्यास्तारा नक्षत्राणि जीवपक्षः जीवपक्षसंज्ञानि शुभकराणि । भोग्याः राहुणाक्रांतनक्षत्रात् भोग्यानि गम्यानि त्रयोदश भानि मृतो मृतपक्षसंज्ञानि । तदाक्रांतभं तेन राहुणाक्रांतभं कर्तरीत्येवनामकं स्यात् । यथा । राहुर्हस्तनक्षत्रे तेन भुक्तानि चित्रास्वातीप्रमुखानि पूर्वाभाद्रपदांतानि त्रयोदश जीवपक्षः तदाक्रांतभाद्धस्तात्पंचदशमुत्तराभाद्रपदाख्यं ग्रस्तसंज्ञम् । तेन राहुणा भोग्यानि उत्तराफाल्गुनीपूर्वाफाल्गुनीमघाश्लेषापुष्यपुनर्वस्वार्द्रामृगरोहिणीकृत्तिकाभरण्यश्विनीरेवत्याख्यानि मृतपक्षः । हस्तस्तु कर्तरीसंज्ञमिति ॥ १४ ॥

अथ जीवपक्षादीनां फलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मार्तंडे मृतपक्षगे हिमकरश्चेज्जीवपक्षे शुभा
यात्रा स्याद्विपरीतगे क्षयकरी द्वौ जीवपक्षे शुभा ॥
ग्रस्तर्क्षं मृतपक्षतः शुभकरं ग्रस्तात्तथा कर्तरी
यार्यांदुःस्थितिमान् रविर्जयकरौ तौ द्वौ तयोर्जीवगौ ॥ १५ ॥

मार्तंड इति ॥ मृतपक्षगे मार्तंडे सूर्ये सति चंद्रश्चेज्जीवपक्षे स्यात्तदा यात्रा शुभा स्यात् । विपरीतगे मार्तंडे जीवपक्षगे सति चंद्रश्चेन्मृतपक्षगः तदा यात्रा क्रियमाणा यातुः क्षयकरी स्यात् । द्वौ सूर्याचंद्रमसौ चेज्जीवपक्षे स्यातां तदा शुभा शुभतरेत्यर्थः। अर्थाद्रुभौ

Aho ! Shrutgyanam

मृतपक्षे स्यातां तदा यात्राऽतिक्षयकरी स्यात्। अथास्यापवादमाह। ग्रस्तर्क्षमिति। मृतपक्षतः मृतपक्षनक्षत्रात् ग्रस्तर्क्षं राहुणाक्रांतभात् पंचदशसंख्यं शुभं शुभकरं स्यात्। यथा शवान्मरिष्यमाणो देही प्रबलः तथा ग्रस्ताद्राहुभतः पंचदशसंख्याकात् कर्तरी राह्वाक्रांतं भं शुभकरं स्यात्। यायीति। यो राजा वैरिणमुद्दिश्य जिगमिषुः स यायी तत्स्वामी चंद्रः। यश्च स्वदेशे दुर्गं कृत्वा तिष्ठति स स्थायी रविः स्थितिमान् स्थायिनो राज्ञः स्वामी तौ द्वौ सूर्याचंद्रमसौ जीवगौ जीवपक्षगतौ तयोः स्थायियायिराज्ञोर्जयकरौ रविश्चेज्जीवपक्षगस्तदा स्थायिनो जयश्चंद्रश्चेज्जीवगस्तदा यायिजयः। उभौ चेत् जीवगौ तदा संधिकरौ अर्थाद्द्वावपि चेन्मृतपक्षगौ उभयोः पराजयकरौ। अत्र बहुविचारः स्वरोदयादवगंतव्यः ॥ १५ ॥

अथाकुलकुलाकुलकुलगणं वसंततिलकाशार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—

स्वात्यंतकाहिवसुपौष्णकरानुराधा-
दित्यध्रुवाणि विषमास्तिथयोऽकुलाः स्युः ॥
सूर्येंदुमंदगुरवश्च कुलाकुला ज्ञो
मूलांबुपेशविधिभं दशषड्द्वितिथ्यः ॥ १६ ॥
पूर्वाश्वीज्यमघेंदुकर्णदहनद्वीशेंद्रचित्रास्तथा
शुक्रारौ कुलसंज्ञकाश्च तिथयोऽर्काष्टेंद्रवेदैर्मिताः ॥
यायी स्यादकुले जयी च समरे स्थायी च तद्वत्कुले
संधिः स्यादुभयोः कुलाकुलगणे भूमीशयोर्युध्यतोः ॥ १७ ॥

स्वात्यंतकाहीति । पूर्वाश्वीति च ॥ स्वाती अंतकं भरणी आश्लेषाधनिष्ठारेवतीहस्तानुराधापुनर्वसूत्तरात्रयरोहिण्यः एतानि द्वादश भानि । विषमास्तिथयः प्रतिपत्तृतीयापंचमीसप्तमीनवम्येकादशीत्रयोदशीपंचदश्य इत्यष्टौ तिथयः रविचंद्रशनिबृहस्पतिवाराश्चत्वारः एते प्रत्येकमकुलसंज्ञाः। अथ ज्ञो बुधवारः मूलं अंबुपं शततारकाः ईश आर्द्रा विधिभमभिजित् चत्वारि भानि दशषड्द्वितिथ्यः दशमीषष्ठीद्वितियास्तिस्रस्तिथयः एते प्रत्येकं कुलाकुलसंज्ञाः स्युः । अथ पूर्वास्तिस्रः अश्विनीपुष्यमघाः इंदुर्मृगः कर्णः श्रवणः दहनः कृत्तिकाः द्वीशं विशाखा इंद्रो ज्येष्ठा चित्रा एतानि द्वादश भानि शुक्रभौमवारौ अर्काष्टेंद्रवेदैर्मिता द्वादश्यष्टमीचतुर्दशीचतुर्थीसंज्ञाश्चतस्रस्तिथयः प्रत्येकं कुलसंज्ञकाः स्युः। फलमाह यायीति ।अकुलसंज्ञके तिथिवारनक्षत्रगणे समरे युद्धप्रारंभे सति यायी राजा जयी स्यात्। यदि कुलसंज्ञके तिथिनक्षत्रवारगणे सति स्थायी राजा तद्वज्जयी स्यात् । कुलाकुलसंज्ञके तिथिवारनक्षत्रगणे युध्यतोर्युद्धं कुर्वतोः भूमीशयो राज्ञोः परस्परं सन्धिः स्यात् ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ पथि राहुचक्रं स्रग्धरयाह—

Aho ! Shrutgyanam

स्युर्धर्मे दस्रपुष्योरगवसुजलपद्वीशमैत्राण्यथार्थे
याम्याजांघ्रींद्रकर्णादितिपितृपवनोडून्यथो भानि कामे ॥
वन्ह्यार्द्राबुध्न्यचित्रानिर्ऋतिविधिभगाख्यानि मोक्षेऽथरोहि-
ण्याप्येंद्वंत्यर्क्षविश्वार्यमभदिनकरक्षाणि पथ्यादिराहौ ॥ १८ ॥

स्युर्धर्मे इति ॥ अश्विनीपुष्याश्लेषाधनिष्ठाशततारकाविशाखानुराधाख्यानि भानि धर्मे धर्मस्थाने लेख्यानि अथ भरणीपूर्वाभाद्रपदाज्येष्ठाश्रवणपुनर्वसुमघास्वात्याख्यानि भानि अर्थे स्युः । अथ कृत्तिकार्द्रोत्तराभाद्रपदाचित्रामूलाभिजित्पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्राणि कामे स्युः । अथ रोहिणी आप्यं पूर्वाषाढा मृगः अंत्यं रेवती विश्वमुत्तराषाढा अर्यमभमुत्तराफाल्गुनी हस्तः एतानि भानि मोक्षे स्युः । पथिशब्द आदिर्यस्य तादृशे राहौ पथिराहावित्यर्थः । चक्रे इति विशेष्यमध्याहार्यम् ॥ १८ ॥

अथ स्रग्विण्या तत्फलमाह–

धर्मगे भास्करे वित्तमोक्षे शशी
वित्तगे धर्ममोक्षस्थितः शस्यते ॥
कामगे धर्ममोक्षार्थगः शोभनो
मोक्षगे केवलं धर्मगः प्रोच्यते ॥ १९ ॥

धर्मगे भास्कर इति ॥ धर्ममार्गस्थिते भास्करे सति चेद्वित्तमोक्षे शशी अर्थमार्गे मोक्षमार्गे वा शशी स्यात्तदा शोभनः । अथ वित्तगे अर्थगे भास्करे सति धर्ममार्गगः मोक्षमार्गगो वा शशी शोभनः । अथ कामगे भास्करे सति धर्माथमोक्षमार्गगः शशी शोभनः । अथ मोक्षमार्गे भास्करे सति केवलं धर्मगः शशी शोभनः । अर्थाद्विपरीतावस्थितयोर्द्वयोः सूर्याचंद्रमसोरशुभत्वं स्यात् ॥ १९ ॥

अथ तिथिचक्रं शालिन्याह–

पौषे पक्षत्यादिका द्वादशैवं
तिथ्यो माघादौ द्वितीयादिकास्ताः ॥
कामात्तिस्रः स्युस्तृतीयादिवच्च
याने प्राच्यादौ फलं तत्र वक्ष्ये ॥ २० ॥

पौषे इति ॥ अत्र पौषादितः प्रतिमासे द्वादशकोष्ठका लेख्याः । एवं कृते चतुश्चत्वारिंशदधिकशतं कोष्ठका जायंते । तत्र चक्राकृतिर्यथा न्यासः प्राग्लिखितः । तत्र पक्षस्य शुक्लपक्षस्य कृष्णपक्षस्य वा मूलं पक्षतिः प्रतिपत्तदादिकालः प्रथमं पौषे मासे प्रतिपदादिकाः द्वादश तिथयोऽधोऽधो लेख्याः । माघादौ माघादिमासेषु द्वितीयादिकास्तिथयो लेख्याः । यथा । माघे द्वितीयादिकाः फाल्गुने तृतीयादिकाः चैत्रे चतुर्थ्यादिकाः वैशाखे

Aho ! Shrutgyanam

पंचम्यादिकाः ज्येष्ठे षष्ठ्यादिकाः आषाढे सप्तम्यादिकाः श्रावणेऽष्टम्यादिकाः भाद्रपदे नवम्यादिकाः आश्विने दशम्यादिकाः कार्तिके एकादश्यादिकाः मार्गशीर्षे द्वादश्यादिकाः सर्वास्तिथयो द्वादश्यंता लेख्याः । अवशिष्टस्थानानि प्रतिपदादिभिः पूरणीयानि । कामात्तिस्र इति कामात्रयोदशीचतुर्दशीपंचदश्यस्तृतीयादिवत्स्युः त्रयोदशी तृतीयावत् चतुर्दशी चतुर्थीवत् पंचदशी पंचमीवत्स्युरित्यर्थः । फलार्थमतिदेशोऽयम् । तत्र प्रतिपदादौ पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरासु दिक्षु याने चिकीर्षिते सति फलं शुभाशुभं सौख्यं क्लेश इत्यादिना वृत्तत्रयेण वक्ष्ये कथयिष्यामि ॥ २० ॥

फलानि शालिनीत्रयेणाह–

सौख्यं क्लेशो भीतिरर्थागमश्च
शून्यं नैःस्व्यं निःस्वता मिश्रता च ॥
द्रव्यक्लेशो दुःखमिष्टाप्तिरर्थो
लाभः सौख्यं मंगलं वित्तलाभः ॥ २१ ॥
लाभो द्रव्याप्तिर्धनं सौख्यमुक्तं
भीतिर्लाभो मृत्युरर्थागमश्च ॥
लाभः कष्टद्रव्यलाभौ सुखं च
कष्टं सौख्यं क्लेशलाभौ सुखं च ॥ २२ ॥
सौख्यं लाभः कार्यसिद्धिश्च कष्टं
क्लेशः कष्टात्सिद्धिरर्थो धनं च ॥
मृत्युर्लाभो द्रव्यलाभश्च शून्यं
शून्यं सौख्यं मृत्युरत्यंतकष्टम् ॥ २३ ॥

सौख्यमिति । लाभ इति । सौख्यमिति च ॥ श्लोकत्रयं स्पष्टार्थमेव । तत्र पौषप्रतिपदि दिक्चतुष्टये सौख्यं क्लेशो भीतिरर्थागमश्चेति फलचतुष्टयं क्रमेण ज्ञेयम् । एवं द्वितियादिष्वपि श्लोकचतुर्थांशोक्तं फलं स्यात् ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

Aho ! Shrutgyanam

कोष्टकन्यासः ।

पौ.	मा.	फा.	चै.	वै.	ज्ये.	आ.	श्रा.	भा.	आ.	का.	मा.	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	सौख्यम्	क्लेशः	भीतिः	अर्थागमः
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	शून्यम्	नैःस्व्यम्	निःस्वत्वम्	मिश्रता
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	द्रव्यक्लेशः	दुःखम्	इष्टाप्तिः	अर्थः
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	लाभः	सौख्यम्	मंगलम्	वित्तलाभः
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	लाभः	द्रव्याप्तिः	धनम्	सौख्यम्
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	भीतिः	लाभः	मृत्युः	अर्थागमः
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	लाभः	कष्टम्	द्रव्यलाभः	सुखम्
८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कष्टम्	सौख्यम्	क्लेशलाभः	सुखम्
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	सौख्यम्	लाभः	कार्यसिद्धिः	कष्टम्
१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	क्लेशः	कष्टात्सिद्धिः	अर्थः	धनम्
११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	मृत्युः	लाभः	द्रव्यलाभः	शून्यम्
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	शून्यम्	सौख्यम्	मृत्युः	असंतकष्टम्
पौ.	मा.	फा.	चै.	वै.	ज्ये.	आ.	श्रा.	भा.	आ.	का.	मा.	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर

Aho ! Shrutgyanam

अथ सर्वांकज्ञानं वसंततिलकयाह–

तिथ्यृक्षवारयुतिरद्रिगजाग्नितष्टा
स्थानत्रयेऽत्र वियति प्रथमेऽतिदुःखी ॥
मध्ये धनक्षतिरथो चरमे मृतिः स्यात्स्था-
नत्रयेंऽकयुजि सौख्यजयौ निरुक्तौ ॥ २४ ॥

तिथ्यृक्षेति ॥ तिथयोऽत्र शुक्लप्रतिपदादितो ग्राह्याः । तत्र तिथिनक्षत्रवाराणां युतिः स्थानत्रये स्थाप्या क्रमेण सप्तभिरष्टभिस्त्रिभिश्च तष्टा भक्तावशिष्टा सती प्रथमस्थाने वियति शून्ये सति अतिदुःखी यात्रा कर्ता स्यात् । मध्ये द्वितीयस्थाने धननाशः । चरमे तृतीयस्थाने शून्यं मृत्युः स्यात् स्थानत्रयेंऽकयुजि अंकयुतौ सौख्यजयौ भवेताम् ॥ २४ ॥

अथाडलभ्रमणे प्रमाणिकयाह–

रवेर्भतोऽब्जभोन्मितिर्नगावशेषिता द्व्यगा ॥
महाडलो न शस्यते त्रिषण्मिताभ्रमो भवेत् ॥ २५ ॥

रवेर्भत इति ॥ सूर्यनक्षत्रात् अब्जभस्य चंद्रभस्योन्मितिर्गणना कार्या सा नगैः सप्तभिरवशेषिता सती द्व्यगा द्विशेषमिता सप्तशेषमिता वा भवेत्तदा महाडलो दोषः स्यात् स न शस्यते । प्रागुक्तप्रकारेण यदि त्रिषण्मिता त्रिशेषमिता षट्शेषमिता वा स्यात्तदा भ्रमो भ्रमणाख्यो दोषः स्यात् । सोऽपि न शस्यते एतन्निर्मूलम् । तत्र भ्रमणे यात्रामेव त्यजंति आडले बहूनि कार्याणि त्यजंति । उक्तं च । यात्रायंत्रहलप्रवाहसमरे चौर्ये च संधौ तथा कूपारामतडागबंधनविधौ पार्थिदुर्गग्रहे । अश्वेभोष्ट्ररथाधिरोहणविधौ त्याज्यं सदैवाडलं यत्नान्नात्र शुभेषु मंगलविधौ दोषो न तस्य क्वचिदिति ॥ २५ ॥

अथ हैवराख्यं योगमुपजातिकयाह–

शशांकभं सूर्यभतोऽत्र गण्यं पक्षादितिथ्या दिनवासरेण ॥
युतं नवाप्तं नगशेषकं चेत्स्याद्धैवरं तद्गमनेऽतिशस्तम् ॥ २६ ॥

शशांकभमिति ॥ स्पष्टार्थम् । प्रसंगात् घबाडमपि सूर्यभाद्गणयेच्चांद्रं त्रिगुणं तिथिसंयुतम् । सप्तभिस्तु हरेद्भागं त्रिशेषं स्याद्घबाडकम् । एतच्च हैवराच्छुभं ज्ञेयम् । एतत्सर्वं दाक्षिणात्या विचारयन्तीति । अत्र प्रसंगाद्ग्रंथांतरस्थसंग्रहः । सूर्यभाद्गणयेच्चांद्रं तिथिवारं च मिश्रितम् । सप्तभिस्तु हरेद्भागं पंचशेषं तु टेलकम् ॥ सूर्यभाद्गणयेच्चाद्रं तिथिवारं च मिश्रितम् । अर्कसंख्यैर्हरेद्भागं नवशेषं तु गौरवम् ॥ प्रवेशे गौरवं दद्यान्निर्गमे हैवरं तथा । तस्करे टेलकं दद्याद्घबाडं सर्वकर्मसु । इति ज्योतिर्निबंधे ॥ २६ ॥

अथ घातचंद्रं शालिन्या तत्परिहारं चानुष्टुब्द्वयेनाह–

Aho ! Shrutgyanam

भूपंचांकद्व्यंगदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशार्काश्च घाताख्यचंद्रः ॥
मेषादीनां राजसेवाविवादे वर्ज्यो युद्धाद्ये च नान्यत्र वर्ज्यः॥ २७ ॥
आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्र्यवासवरौद्रभे ॥
मूलब्राह्माजपादर्क्षे पित्र्यमूलाजभे क्रमात् ॥ २८ ॥
रूपद्व्यग्न्यग्निभूरामद्व्यब्ध्यग्न्यब्धियुगाग्नयः ॥
घातचंद्रे धिष्ण्यपादा मेषाद्वर्ज्या मनीषिभिः ॥ २९ ॥

भूपंचेति । आग्नेयेति । रूपद्व्यग्नीति च ॥ मेषादिराशीनां भूपंचांकेत्यादिको घातचंद्रो ज्ञेयः । यथा मेषस्य प्रथमो मेष एव वृषस्य पंचमः कन्यास्थः मिथुनस्य नवमः कर्कस्य द्वितीयः सिंहस्य षष्ठः कन्याया दशमः तुलायास्तृतीयः वृश्चिकस्य सप्तमः धनुषश्चतुर्थः मकरस्याष्टमः कुंभस्यैकादशः मीनस्य द्वादशः स घातचंद्रो राजसेवायां विवादे प्रतिवादिना सह कलहे युद्धाद्ये आदिशब्दान्मृगयादिषु वर्ज्यः । अन्यत्र विवाहान्नप्राशनादिमंगलकृत्ये न वर्ज्यः । उक्तं च । युद्धे चैव विवादे च कुमारीपूजने तथा । राजसेवावाहनादौ घातचंद्रं विवर्जयेत् ॥ तीर्थयात्राविवाहान्नप्राशनोपनयादिषु । मांगल्यसर्वकार्येषु घातचंद्रं न चिंतयेत् ॥ अत्र लाघवार्थं भ्रातृपुत्रगोविंदपद्यम् । मेषकन्याघटहरिनक्रयुग्मधनुर्वृषाः । मीनसिंहधनुःकुंभा घातचंद्रा अजादित इति । घातचंद्रे मेषादिराशिषु कृत्तिकादिभानां चरणा एते वर्ज्या इति केचिद्वदंति ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

घाततिथीरुपजातिकयाह—

गोस्त्रीझषे घाततिथिस्तु पूर्णा भद्रा नृयुक्कर्कटकेऽथ नंदा ॥
कौर्प्याजयोर्नक्रघटे च रिक्ता जया धनुः कुंभहरौ न शस्ताः ॥ ३० ॥

गोस्त्रीति ॥ गौः वृषः स्त्री कन्या झषो मीनः एतद्राशिमति नरे पूर्णा पंचमी दशमी पंचदशी च घाततिथिः नृयुग्मिथुनं कर्कटकः कर्कस्तयोः भद्रा द्वितीया सप्तमी द्वादशी च तिथिः कौर्प्यो वृश्चिकः अजो मेषः एतयोर्नंदा प्रतिपत्षष्ठ्येकादशी च तिथिः नक्रघटे मकरतुलयोः रिक्ता चतुर्थी नवमी चतुर्दशी घाततिथिः । धनु.कुंभसिंहानां जया तृतीयाष्टमी त्रयोदशी च घाततिथिः । एते घाततिथयो यात्रादौ न शस्ताः ॥ ३० ॥

घातवारान् शालिन्याह—

नक्रे भौमो गो हरिस्त्रीषु मंदश्चंद्रो द्वंद्वेऽर्कोऽजभे ज्ञश्च कर्के ॥
शुक्रः कोदंडालिमीनेषु कुंभे जूके जीवो घातवारा न शस्ताः ॥ ३१ ॥

नक्रे भौम इति ॥ मकरराशिमति पुरुषे भौमो घातवारः वृषसिंहकन्यासु मंदः शनिर्घातवारः द्वंद्वे मिथुने चंद्रः अजे मेषेऽर्कः कर्के बुधः धनुर्मीनवृश्चिकेषु शुक्रवारः जूकस्तुला कुंभतुलयोर्जीवो गुरुर्घातवार इत्यर्थः । घातवारा अपि यात्रादौ न शस्ताः ॥ ३१ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ घातनक्षत्राण्यनुष्टुभाह—

मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यंबुपांत्यभम् ॥
याम्यब्राह्मेशसार्पं च मेषादेर्घातभं न सत् ॥ ३२ ॥

मघेति ॥ स्पष्टार्थम् एतदपि यात्रादौ न शस्तम् ॥ ३२ ॥

अथ घातलग्नान्याह—

भूमि१व्य२व्य४द्रि७दिक्१०सूर्या१२-
गा६ष्टां८के९शा११ग्नि३सायकाः ५ ॥
मेषादिघातलग्नानि यात्रायां वर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥

भूव्यव्धीति ॥ स्पष्टार्थम् । तदपि यात्रायां वर्ज्यम् ॥ ३३ ॥

नव९भूम्यः १शिव११वह्नयो३ऽक्ष५विश्वे१३ऽर्क-
१२कृताः४शक्र१४रसा६स्तुरंग७तिथ्यः १५ ॥
द्वि२दिशो१०मा३०वसव८श्च पूर्वतःस्यु-
स्तिथयः संमुखवामगा न शस्ताः ॥ ३४ ॥

नवभूम्य इति ॥ एतास्तिथयः पूर्वतः पूर्वदिशामारभ्य अष्टदिक्षु ज्ञेयाः । यथा । पूर्वस्यां नवभूम्यः नवमी प्रतिपच्च आग्नेय्यां शिववह्नयः एकादशी तृतीया च । एवमग्रेऽपि । एतास्तिथयो योगिन्य इति जीर्णास्तास्तिथयः संमुखा वामगा न शस्ताः । यथा । प्राच्यां गंतुः प्रतिपत्संमुखी दक्षिणां गंतुर्वामगा प्रतीच्यां गंतुः पृष्ठगा उदीच्यां गंतुर्दक्षिणा एवं सर्वासु दिक्षु सर्वास्तिथयो विचार्यास्तत्र संमुख्यो वामगाश्च तिथयो न शुभाः । अर्थाद्दक्षिणाः पृष्ठगाश्च शुभाः । उक्तं च । पृष्ठतो दक्षिणे वापि योगिनी गमने हिता । वामसंमुखयोर्नेष्टा वायुमेवं विचिंतयेदिति ॥ ३४ ॥

अथ कालपाशयोगौ शालिन्याह—

कौबेरीतो वैपरीत्येन कालो वारेऽर्काद्ये समुखे तस्य पाशः ॥
रात्रावेतौ वैपरीत्येन गण्यौ यात्रायुद्धे संमुखे वर्जनीयौ ॥ ३५ ॥

कौबेरीत इति ॥ कौबेरी उत्तरा दिक् तस्याः विपरीतदिक्षु अर्काद्ये वारे कालः स्यात् । तद्यथा । रवावुत्तरदिशि कालः दक्षिणे पाश इत्यर्थः । चंद्रे वायव्यां कालः आग्नेय्यां पाशः एवं भौमादिष्वपि रात्रौ कालदिशि पाश इति वैपरीत्यं ज्ञेयम् । एतौ यात्रायुद्धादिषु संमुखे वर्ज्यौ । उक्तं च स्वरोदये । वारोत्थः पूर्वदिग्भागे ततः सव्येन मंदगः । यत्रस्थस्तत्र कालः स्यात्पाशस्तस्य तु संमुखः ॥ दक्षिणस्थः शुभः कालः पाशो वामदिगाश्रयः । यात्रायां समरे श्रेष्ठस्ततोऽन्यत्र न शोभन इति । प्रसंगादर्धयामराहुरपि स्वरोद-

Aho ! Shrutgyanam

दयस्थो लिख्यते । इंद्रवायुयमरुद्रतोयाग्निशशिनैर्ऋते । यामार्धमुदितो राहुर्भ्रमत्येवं दिगष्टके दति ॥ ३९ ॥

अथ परिघदंडाख्यं दोषमनुष्टुभाह—

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु सप्तसप्तानलर्क्षतः ॥
वायव्याग्नेयदिक्संस्थं परिघं नैव लंघयेत् ॥ ३६ ।

पूर्वादिष्विति ॥ अनलर्क्षतः कृत्तिकातः सप्त भानि पूर्वस्याम् । मघातः सप्त याम्यायाम् । अनुराधातः सप्त पश्चिमायाम् । धनिष्ठातः सप्त भान्युत्तरस्यां रेखास्विति सर्वत्र वाक्यशेषः । तत्र वायव्याग्नेयदिगुपनिबद्धरेखापरिघो दंडः स्यात्तं सर्वथा नोल्लंघयेत् । तत्र यवनेश्वरः । प्राचीमुदग्द्वारिभिरत्र यायात्प्राग्द्वारिभिश्चोडुभिरप्युदीचीम् । तथैव याम्यामपराश्रितैर्भैर्याम्याश्रयैश्चाप्यपरां प्रयायादिति ॥ ३६ ॥

अथ विदिक्षु गमे नक्षत्रातिदेशमावश्यककृत्ये निंद्यदंडापवादं च वसंततिलकयाह—

अग्नेर्दिशं नृप इयात्पुरुहूतदिग्भैरेवं
प्रदक्षिणगता विदिशोऽथ कृत्ये ॥
आवश्यकेऽपि परिघं प्रविलंघ्य गच्छे-
च्छूलं विहाय यदि दिक्तनुशुद्धिरस्ति ॥ ३७ ॥

अग्नेर्दिशमिति ॥ नृपः पुरुहूतदिक् प्राची तत्स्थैः कृत्तिकादिसप्त नक्षत्रैः अग्नेर्दिशमाग्नेयीमियाद्गच्छेत् । एवमनेन प्रकारेण प्रदक्षिणगताः सृष्टिमार्गेण स्थिता विदिशो नैर्ऋत्यादीर्गच्छेत् । यथा । मघादिसप्तभिर्नैर्ऋत्याम् अनुराधादिसप्तभिर्वायव्यां धनिष्ठादिसप्तभिरैशानीं गच्छेदित्यर्थः । अथेति आवश्यके कृत्ये कर्तव्ये परिघदंडमपि लंघयित्वा नृपो गच्छेत् । परंतु शूलं वारशूलं नक्षत्रशूलं विहाय त्यक्त्वा यदि दिक्तनुशुद्धिरस्ति पूर्वादिदिक्षु मेषादयस्त्रिरावृत्त्या दिग्राशयः स्युः । क्रमशो मेषाद्या एव तस्यां तस्यां दिशि दिग्लग्नशब्देन व्यवह्रियंते । तेषां शुद्धिः शुभफलदातृग्रहानुकूल्यसाहित्यं स्यात् । दिग्राशीनाह नारदः । दिग्राशयः स्युः क्रमशो मेषाद्याश्च पुनः पुनरिति ॥ ३७ ॥

अन्यदपींद्रवज्रयाह—

मैत्रार्कपुष्याश्विनभैर्निरुक्ता यात्रा शुभा सर्वदिशासु तज्ज्ञैः ॥
वक्री ग्रहः केंद्रगतोऽस्य वर्गो लग्ने दिनं चास्य गमे निषिद्धम् ॥३८॥

मैत्रार्केति ॥ अनुराधाहस्तपुष्याश्विनीनक्षत्रैः सर्वासु दिशासु चतुर्दिक्षु तज्ज्ञैर्ज्यौतिषिकैर्यात्रा शुभा निगदिता । यस्तु बालिकाविवेकादौ प्रागादिषु श्रवणाश्विपुष्यहस्तानां त्याग उक्तः स निर्मूलत्वादुपेक्ष्यः । क्वचिदष्टौ सर्वदिग्द्वारकाण्युक्तानि । गुरुः । पुष्याश्विह-

Aho ! Shrutgyanam

स्तमैत्राणि पौष्णवैष्णवसौम्यभम् । वासवं सर्वदिक्ष्वाशु यात्रायां शोभनानि हीति । वराहः। सर्वद्वारिकसंज्ञितानि गुरुभं हस्ताश्विमैत्राणि च श्रेष्ठान्यैंदवपौष्णविष्णुवसुभान्याद्यैः सहाष्टौ सदेति । वक्री ग्रह इति । वक्री ग्रहो यदि केंद्रगः स्यात्स गमे यात्रायां निषिद्धः । अथवाऽस्य वक्रीग्रहस्य लग्ने वर्गः षड्वर्गश्चेत्सोऽपि गमने निषिद्धः । वास्य वक्रीग्रहस्य दिनं वारोऽपि गमने निषिद्धम् ॥ ३८ ॥

अथायनशूलमिंद्रवज्रयाह—

सौम्यायने सूर्यविधू तदोत्तरां प्राचीं व्रजेत्तौ यदि दक्षिणायने ॥
प्रत्यग्यमाशां च तयोर्दिवानिशं भिन्नायनत्वेऽथ वधोऽन्यथाभवेत् ॥

सौम्यायन इति ॥ यदि सूर्यचंद्रौ सौम्यायने उत्तरायणगतौ स्यातां तदा उत्तरां प्राचीं वा व्रजेत् । तद्दिङ्मुखा यात्रा शुभेत्यर्थः । यदि तु रविचंद्रौ दक्षिणायनगतौ स्यातां तदा प्रतीचीं दक्षिणां वा व्रजेत् । अथ तयोर्भिन्नायनत्वे अयनभेदे सति दिवानिशं व्रजेत् । यथा । सूर्यो यस्मिन्नयने तां दिशं दिवा व्रजेत् । चंद्रो यस्मिन्नयने तां दिशं रात्रौ यायात् । अत्रोत्तरस्यां पूर्वस्या अंतर्भावः दक्षिणस्यां पश्चिमाया इति । रत्नकोशे । दिनकरकरप्रतप्तां मकरादावुत्तरां च पूर्वां च । यायाच्च कर्कटादौ याम्यामाशां प्रतीचीं चेति । अथान्यथा चेत्कुर्यात्तदा वधो मरणं भवेत् । भिन्नायनत्वे सति सूर्यो यस्मिन्नयने तां दिशं यदि रात्रौ गच्छेत् चंद्रो यस्मिन्नयने तां दिवा गच्छेत्तदा यातुर्वधो भवेदित्यर्थः ॥ ३९ ॥

अथ संमुखशुक्रदोषमुपजात्याह—

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाथ ककुब्भसंघे ॥
त्रिधोच्यते संमुख एव शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात् ॥४०॥

उदेतीति ॥ शुक्रो यस्यां दिशि प्राच्यां प्रतीच्यां वा कालवशेनोदयं करोति तत्र गंतुः पुंसः शुक्रः संमुखः । अयमेकः प्रकारः । अथवा गोलभ्रमवशेन यत्र यस्यां दिशि उत्तरस्यां दक्षिणस्यां वा यदि याति गच्छति तत्र गंतुः पुंसः शुक्रः संमुखः । अयमेकः प्रकारः । अथवा गोलभ्रमवशेन यत्र यस्यां दिशि उत्तरस्यां दक्षिणस्यां वा यदि याति गच्छति तत्र गंतुः पुंसः संमुखः शुक्रः स्यात् । अयं द्वितीयः प्रकारः । अथ यत्र ककुब्भसंघे प्राच्यादिदिशि कृत्तिकादिन्यासवशेन यद्दिङ्नक्षत्रे चरति तत्र दिशि गंतुः संमुखः शुक्रः स्यादित्ययं तृतीयः प्रकारः । अत्रिः । यद्दिग्गतः समुदयेद्विचरेद्यत्र गोलके । यद्द्वारभेषु विचरेत्त्रिविधं प्रतिभार्गवमिति । यत्रोदित इति । यस्यां दिश्युदितः शुक्रो दृश्यते तां दिशमेव न गच्छेत् । अन्यदिश्यपि यथासंभवं न यायात् । मूढे शुक्रे कार्यहानिः प्रतिशुक्रे पराजय इति नारदोक्तेः । अवश्यकर्तव्ये गमने शांतिमाह वसिष्ठः । भृगुलग्ने भृगोर्वारे भृगुवर्गे भृगूदये । उपोष्य भृगुवारेऽपि यावच्छुक्रोदयं प्रति । रजतेनैव शुद्धेन

Aho ! Shrutgyanam

कारयेत्प्रतिमां भृगोः । लिखेदष्टदलं पद्मं कांस्यपात्रे च तंडुलैः ॥ शुक्लसूक्ष्मांबरैर्वेष्ट्य प्रतिमां तत्र पूजयेत् । शुक्लपुष्पाक्षतैर्गंधैर्मुक्ताहारैर्विचित्रितैः ॥ उपचाराणि कार्याणि शुक्रं ते अन्यदित्यृचा । तन्मंत्रेण जपं कुर्यात्सम्यगष्टोत्तरं शतम् ॥ कर्मांते तेन मंत्रेण भक्त्या चार्घ्यं प्रदापयेत् । श्वेतगंधाक्षतैः पुष्पैः क्षीरमिश्रेण वारिणा ॥ दैत्यमंत्री दिवादर्शी चोशना भार्गवः कविः । श्वेतोऽथ मंडली काव्यो विधिस्थो भृगवे नमः ॥ दत्वेत्यर्घ्यं प्रयत्नेन प्रार्थयेदेव भक्तितः । अनेनैव तु मंत्रेण प्रांजलिः प्रणतः स्थितः ॥ त्वत्पूजयानया शुक्र संमुखत्वसमुद्भवम् । दोषं विनाशय क्षिप्रं रक्ष मां तेजसां निधे ॥ इति प्रार्थ्य प्रयत्नेन प्रतिमा भूषणान्विता । दैवज्ञायैव दातव्या श्वेताश्वसहितैव सा ॥ शिष्टेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बंधुभिः ॥ इतरेषां ग्रहाणां च पूजां कुर्यात्प्रयत्नतः । तत्तत्संमुखजो दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥ दीपिकायां तु दानमेवोक्तम् । सितमश्वं सितच्छत्रं हेममौक्तिकसंयुतम् । ततो द्विजातये दद्यात्प्रतिशुक्रप्रशांतय इति ॥ ४० ॥

अथ वक्रास्तादिदोषं सापवादमुपजात्याह—

वक्रास्तनीचोपगते भृगोः सुते राजा व्रजन्याति वशं हि विद्विषाम् ।
बुधोऽनुकूलो यदि तत्र संचलन् रिपूञ्जयेन्नैव जयः प्रतींदुजे ॥ ४१ ॥

वक्रास्तेति ॥ भृगोः सुते शुक्रे वक्रोपगते अस्तोपगते नीचोपगते च उपलक्षणत्वाद्ग्रहयुद्धपराजिते वर्णरहिते वा सति राजा परराष्ट्रं व्रजन् सन् हि निश्चयेन विद्विषां शत्रूणां वशं याति बद्धो भवतीत्यर्थः । भरद्वाजः । विवर्णे विजिते नीचे वक्रिते वा सितेऽस्तगे । शत्रुक्षेत्रगते वापि तदंशे तन्निरीक्षिते ॥ भौमांशे भौमसंयुक्ते मंदांशे मंदसंयुते । यात्रां नैव प्रकुर्वीत लक्ष्म्यायुर्बलहानिदेति । बुध इति । तत्र शुक्रास्ते यदि बुधोऽनुकूलः पृष्ठदिक्संस्थो भवेत्तदा संचलन् सन् राजा रिपून् शत्रून् जयेत् । नैवेति प्रतींदुजे बुधे संमुखे सति गंतू राज्ञो नैव जयः किंतु पराजयः । अयं तु प्रतिशुक्रविचारो नृणां प्रथमगमने राज्ञां तु समरयात्रायामाहुः । रैभ्यः । प्रतिशुक्रादिदोषोऽयं नूतने गमने नृणाम् । राज्ञां विजययात्रायां नान्यथा दोषमावहेदिति ॥ ४१ ॥

अथ विशेषं शालिन्याह—

यावच्चंद्रः पूषभात्कृत्तिकाद्ये पादे शुक्रोऽधो न दुष्टोऽग्रदक्षे ।
मध्ये मार्गं भार्गवास्तेऽपि राजा तावत्तिष्ठेत्संमुखत्वेऽपि तस्य ॥४२॥

यावच्चंद्र इति ॥ चंद्रो यदा पूषभाद्रेवतीनक्षत्रादारभ्य कृत्तिकाद्ये पादे रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकाप्रथमचरणे यावत्तिष्ठति तावच्छुक्रोऽधो ज्ञेयः दृष्टोऽपि शुक्रो दर्शनकार्यं न करोतीत्यर्थः । तदेवाह । न दुष्ट इति । अंधो यदा तदा अग्रे संमुखे दक्षे द-

Aho ! Shrutgyanam

क्षिणभागे च दुष्टो न स्यात् । मध्येमार्गमिति । सुमुहूर्तप्रस्थितोऽपि राजा मध्येमार्गं मार्गमध्ये यदि शुक्रास्तो भवेत्तावत्कालं तस्मिन्नेव प्रयाणे तिष्ठेत् यावच्छुक्रोदयो भवेत् यदि गच्छतो राज्ञो दैवात्संमुखः शुक्रश्चेत्तावदस्य शुक्रस्य संमुखत्वेऽपि तस्मिन्नेव प्रयाणे तिष्ठेत् उपलक्षणत्वाद्गुरावप्येवंविधे द्रष्टव्यम् । पराशरः । जीवः शशांकः शुक्रो वा मार्गमध्येऽस्तगो यदि । तत्रैव निवसेद्राजा यावदभ्युदितो भवेदिति ॥ मार्गमध्ये बुधास्ते न दोषः । यदा तु मार्गमध्ये बुधोदयो भवेत्स च पुनः संमुखो भवेत्तदा तु पुनर्दोष एव । वसिष्ठः । संमुखश्चंद्रजो यत्र मार्गमध्योदितो यदि । यावदस्तं गते तस्मिंस्तावत्तत्रैव संवसेदिति ॥ ४२ ॥

अथ निषिद्धलग्नमनुष्टुभाह—

कुंभकुंभांशकौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधैः ।
तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाशः पदेपदे ॥ ४३ ॥

कुंभकुंभांशकाविति ॥ स्पष्टोऽर्थः ॥ ४३ ॥

अथान्यन्मंजुभाषिण्याह—

अथ मीनलग्न उतवा तदंशके चलितस्य वक्रमिह वर्त्म जायते ॥
जनिलग्नजन्मभपती शुभग्रहौ भवतस्तदा तदुदये शुभो गमः॥४४॥

अथ मीनलग्न इति ॥ मीनलग्ने लग्नांतरे वा मीनांशके चलितस्य राज्ञो वर्त्म वक्रं स्यात् । जनीति जनिर्जन्मकालीनं लग्नं जन्मभं जन्मराशिः तयोर्जन्मलग्नराश्योः पती स्वामिनौ शुभग्रहौ सौम्यग्रहौ चेदुदये लग्ने भवतस्तदा गमो गमनं शुभः स्यात् । जन्मलग्नं जन्मराशिश्च यात्रालग्नगं शुभमिति प्रागेवाभिहितम् । जननराशितनू यदि लग्नग इति । अर्थाज्जन्मलग्नजन्मराशिस्वामिनौ पापग्रहौ यात्रालग्ने स्यातां तदा तादृशे लग्ने गमनमशुभफलमित्यर्थः । वसिष्ठः । जन्मराशौ लग्नगते तदीशे वा विलग्नगे । अभीष्टफलदा यात्रा राशीशश्चेच्छुभग्रहः ॥ वृद्धनारदेन । जन्मराश्युद्गमो नैव जन्मलग्नोदयः शुभः । तयोरुपचयस्थानं यदि लग्नगतं शुभमिति जन्मराशिर्यात्रालग्ने निषिद्ध उक्तः स जन्मराशेः पापग्रहस्वामित्वे ज्ञेयः । शुभस्वामित्वे तु प्रागुक्तवसिष्ठवाक्यं स्वरसं स्यात् । एवं जन्मलग्नोदयः शुभ इत्यत्रापि जन्मलग्नस्य शुभस्वामित्वे शुभफलता न पापस्वामित्वे इति व्याख्येयम् ॥४४॥

अथान्यद्रथोद्धतयाह—

जन्मराशितनुतोऽष्टमेऽथवा स्वारिभाच्च रिपुभे तनुस्थिते ॥
लग्नगास्तदधिपा यदाथवा स्युर्गतं हि नृपतेर्मृतिप्रदम् ॥ ४५ ॥

जन्मराशितनुत इति ॥ स्वजन्मराशेर्जन्मलग्नाच्च वाष्टमे राशौ लग्नस्थिते सति तथारिभात् जिगमिषतः शत्रोर्भात् राशेर्लग्नाच्च रिपुभे षष्ठराशौ लग्नस्थिते सति अथवा

Aho ! Shrutgyanam

स्वराशिलग्नाभ्यां अष्टमभवने स्वशत्रुराशेर्जन्मराशिलग्नाभ्यां षष्ठभवने तेषां स्वामिनो यात्रालग्नगताः स्युर्यदा तदा राज्ञो मृतिप्रदाः ॥ ४५ ॥

अथान्यच्छुभलग्नं शालिन्याह–

लग्ने चंद्रे वापि वर्गोत्तमस्थे यात्रा प्रोक्ता वांछितार्थैकदात्री ॥
अंभोराशौ वा तदंशे प्रशस्तं नौकायानं सर्वसिद्धिप्रदायि ॥ ४६ ॥

लग्ने चंद्र इति ॥ मीनकुंभविवर्जिते कस्मिंश्चिल्लग्ने वर्गोत्तमनवांशस्थे अथवा चंद्रे वर्गोत्तमस्थे सति यात्रा वांछितार्थस्य मनोभीष्टार्थस्यैका अद्वितीया दात्री । अंभोराशाविति जलराशौ लग्नगते सति अथवा लग्नांतरे तदंशे जलराश्यंशे सति नौकायानं सर्वसिद्धिप्रदायि स्यात् ॥ ४६ ॥

अथान्यदिंद्रवज्रयाह–

दिग्द्वारभे लग्नगते प्रशस्ता यात्रार्थदात्री जयकारिणी च ॥
हानिं विनाशं रिपुतो भयं च कुर्यात्तथा दिक्प्रतिलोमलग्ने ॥४७॥

दिग्द्वारभे इति ॥ पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः क्रमाद्दिग्द्वारराशयस्तेषु गंतव्यदिगवस्थितेषु समुत्था यात्रा प्रशस्ता । प्रशस्तत्वमाह । अर्थदात्री जयकारिणी चेति । यथा मेषः पूर्वस्याम् वृषो दक्षिणस्याम् मिथुनः पश्चिमायाम् कर्क उत्तरस्याम् एवं सिंहादयो धनुरादयश्च पूर्वादिषु ज्ञेयाः । हानिमिति दिक्प्रतिलोमलग्ने विपरीतदिगवस्थिते लग्ने । यथा पश्चिमायां मेषः उत्तरस्यां वृषः पूर्वस्यां मिथुनः दक्षिणस्यां कर्कः एवं पुनः पश्चिमादिषु सिंहादयो धनुरादयश्च ज्ञेयाः । तादृशे लग्ने गंतुः यात्रा हानिं द्रव्यनाशं शत्रुतो भयं च कुर्यात् । दिग्द्वारभे लग्नगते यात्रार्थविजयप्रदा । लग्ने दिक्प्रतिलोमे सा हानिदा शत्रुभीतिदेति वराहोक्तेः ॥ ४७ ॥

अथ शुभलग्नानि वसंततिलकयाह–

राशिः स्वजन्मसमये शुभसंयुतो यो
यः स्वारिभान्निधनगोऽपि च वेशिसंज्ञः ।
लग्नोपगः स गमने जयदोऽथ भूप-
योगैर्गमो विजयदो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ४८ ॥

राशिरिति ॥ गंतुः पुंसः स्वजन्मसमये यो राशिः शुभग्रहैश्चंद्रबुधगुरुशुक्रैः संयुतोऽस्ति स राशिर्यात्रालग्नोपगः स्यात् । अथवा स्वारिभात् स्वशत्रुजन्मराशिजन्मलग्नादष्टमो यो राशिः स चेद्यात्रालग्नोपगतः स्यात् । अथवा यो राशिर्वेशिसंज्ञः „जन्मसमये सूर्याक्रांतराशेर्द्वितीयो राशिर्वेशिसंज्ञः । स चेद्यात्रालग्नोपगः स्यात्तदा गमने जयदः

Aho ! Shrutgyanam

स्यात् । अथवा भूपयोगैर्जातकोक्तैराजयोगैर्यात्रालग्नस्थितैर्गमो मुनिभिर्विजयदः प्रोक्तः । जातके राजयोगा द्रष्टव्याः ॥ ४८ ॥

अथ दिक्स्वामिन उपजातिकयाह–

सूर्यः सितो भूमिसुतोऽथराहुः शनिः शशी ज्ञश्च बृहस्पतिश्च ॥
प्राच्यादितो दिक्षु विदिक्षु चापि दिशामधीशाः क्रमतः प्रदिष्टाः ॥

सूर्यः सित इति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ४९ ॥

अथ दिगीशप्रयोजनं तनुमध्याछंदसाह–

केंद्रे दिऽगधीशे गच्छेदवनीशः ॥
लालाटिनि तस्मिन्नेयादरिसेनाम् ॥ ५० ॥

केंद्रे इति ॥ तस्मिन् दिगीशे लालाटिनि सति अरिसेनां नेयात् न गच्छेत् ॥ ५० ॥

अथ लालाटियोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह–

प्राच्यादौ तरणिस्तनौ भृगुसुतो लाभव्यये भूसुतः
कर्मस्थोऽथ तमो नवाष्टमगृहे सौरिस्तथा सप्तमे ॥
चंद्रः शत्रुगृहात्मजेऽपि च बुधः पातालगो गीष्पति-
र्वित्तभ्रातृगृहे विलग्नसदनाल्लालाटिकाः कीर्तिताः ॥ ५१ ॥

प्राच्यादाविति ॥ प्राच्याद्यष्टदिक्षु क्रमेण विलग्नसदनात् एतेषु भावेषु सूर्यादिग्रहाः स्थिताश्चेत् । लालाटिकाः स्युरिति वाक्यार्थः । यथा तनौ लग्नस्थः तरणिः सूर्यः प्राच्यां गंतुर्लालाटिकः एवं भृगुसुतो लाभव्यये आग्नेय्यां कर्मस्थो भूसुतो दक्षिणस्याम् तमो नवाष्टमगृहे नैर्ऋत्याम् सौरिः सप्तमे पश्चिमायाम् चंद्रः शत्रुगृहात्मजे वायव्याम् बुधः पातालग उत्तरस्याम् गीष्पतिर्वित्तभ्रातृगृहे ईशान्यां गंतुर्लालाटिक इत्यर्थः कश्यपेन तु सूर्यराशिवशेन लालाटिका उक्तास्ते यथा । दिनेशाधिष्ठितो राशिर्यदा लग्नगतस्तदा । यातुर्मृत्युप्रदः प्राच्यां दिशि सूर्यो ललाटगः ॥ सूर्यस्य राशितस्तस्माद्वादशे लग्नगे गृहे । एकादशे वा आग्नेय्यां दिशि शुक्रो ललाटगः ॥ ललाटगः कुजो याम्ये दशमे लग्नगे गृहे । लग्नगे नवमे राशावष्टमे वापि नैर्ऋते ॥ ललाटगः सैंहिकेयो यातुर्द्राङ्घ्रिधनप्रदः । लग्नगे सप्तमे राशौ शनिः प्रत्यग्ललाटगः ॥ षष्ठराशौ लग्नगते पंचमे वापि चंद्रमाः । ललाटगो वायुदिशि यातुर्मृत्युप्रदस्तदा ॥ चतुर्थराशौ लग्नस्थे बुधः सौम्ये ललाटगः । राशौ तृतीये लग्नस्थे द्वितीये चंद्रपूजितः ॥ ललाटगश्चंद्रमौलेर्दिशि यातुर्विनाशद इति । अत्र ललाटव्यतिरिक्ते कंटकस्थाने यदि दिगधीशस्तिष्ठति तदा यात्रा शुभा अन्यथा ह्यशोभनेति तत्त्वम् ॥ ५१ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ पर्युषितयात्रायोगचतुष्टयमनुष्टुभेंद्रवज्रया चाह—

मृगे गत्वा शिवे स्थित्वादितौ गच्छञ्जयेद्रिपून् ॥
मैत्रे प्रस्थाय शाक्रेऽह्नि स्थित्वा मूले व्रजंस्तथा ॥ ९२ ॥
प्रस्थाय हस्तेऽनिलतक्षधिष्ण्ये स्थित्वा जयार्थी प्रवसेद्विदैवे ॥
वस्वंत्यपुष्ये निजसीम्नि चैकरात्रोषितः क्ष्मां लभतेऽवनीशः ९३

मृगेति । प्रस्थायेति च ॥ मृगे स्वगृहाद्यातव्यदिगभिमुखं कस्यचिदिष्टस्य गृहे गत्वा प्रस्थाय आर्द्रायां तस्मिन्नेव गृहे स्थित्वोषित्वादितौ पुनर्वसौ गच्छन् तद्गृहं त्यक्त्वा ग्रामाद्बहिरेव गच्छन् रिपून् शत्रून् जयेत् अयमेको योगः । एवमेव मैत्रेऽनुराधायां प्रस्थाय शाक्रे ज्येष्ठायां स्थित्वा मूले व्रजन् तथा जयेदित्यर्थः अयं द्वितीयो योगः । तथा हस्ते प्रस्थायानिलतक्षधिष्ण्ये स्वातीचित्रानक्षत्रद्वये स्थित्वा द्विदैवे विशाखायां जयार्थी भूपादिः प्रवसेद्देशांतरं गच्छेत् अयं तृतीयः । वस्वंत्यपुष्येषु निजसीम्नि स्वनगरप्रांते प्रस्थितः सन् यद्येकरात्रोषितः स्यात्तदाऽवनीशो राजा क्ष्मां भूमिं शत्रोरिति शेषः । लभते जयेन प्राप्नोतीत्यर्थः । अयं चतुर्थो योगः ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अथ समयबलमनुष्टुभाह—

उषःकालो विना पूर्वां गोधूलिः पश्चिमां विना ॥
विनोत्तरां निशीथः सन् याने याम्यां विनाऽभिजित् ॥ ९४ ॥

उषःकाल इति ॥ सन्शब्दश्चरणचतुष्टयेऽपि संबध्यते । उषःकालः पूर्वां विना याने यात्रायां सन् । एवं सर्वत्र । वराहेण तु दिग्विशेषे समयविशेषे प्रशस्तोऽभिहितः । यथा पूर्वाह्णे तूत्तरां गच्छेन्मध्याह्ने पूर्वतो व्रजेत् । अपराह्णे व्रजेद्याम्यामर्धरात्रे तु पश्चिमामिति ॥ ९४ ॥

अथ लग्नादिभावानां संज्ञा अनुष्टुभाह—

लग्नाद्भावाः क्रमादेह१कोश२धानुष्क३वाहनम्४ ॥
मंत्रो५रि६मार्ग७आयुश्च८हृ९द्व्यापारा१०गम११व्ययाः १२ ॥ ९५ ॥

लग्नाद्भावा इति ॥ हृन्मनः । स्वांतं हृन्मानसं मन इत्यभिधानात् । आगमः प्राप्तिः अन्यत्स्पष्टम् । एवंविधसंज्ञाकथनप्रयोजनं तु क्रूरग्रहसाहित्ये तत्तद्भावानां पीडा । शुभग्रहसाहित्ये तत्तद्भावानां शुभमित्यर्थः ॥ ९५ ॥

अथ शालिन्या विशेषफलमाह—

केंद्रे कोणे सौम्यखेटाः शुभाः स्युर्याने पापास्त्र्यायषट्खेषु चंद्रः ॥
नेष्टो लग्नांत्यारिरंध्रे शनिः खेऽस्ते शुक्रो लग्नट् नगांत्यारिरंध्रे॥९६॥

केंद्रे कोण इति ॥ शुभग्रहाः यदि केंद्रे कोणे १, ४, ७, १०, ९, ५, स्युस्तदा

Aho ! Shrutgyanam

याने शुभफलदाः स्युः पापाख्याषट्खेषु ३, ११, ६, १०, शुभफलदाः स्युः चंद्रो लग्नांत्यारिरंध्रे १, १२, ६, ८, नेष्टः अशुभफलदः शनिः खे दशमे नेष्टः शुक्रोऽस्ते सप्तमे नेष्टः। लग्नेडिति । लग्नेट् यात्रालग्नस्वामी नगांत्यारिरंध्रे सप्तमद्वादशषष्ठाष्टमेषु चेत्तदा नेष्टः अशुभफलद इत्यर्थः । गुरुः । लग्नपो मृत्युदो याने रंध्रास्तारिव्ययोपगः केऽप्याहुर्भयदो धर्मे शेषस्थाने शुभावह इति ॥ ९६ ॥

अथ योगयात्रा व्याख्यायते । तदारंभप्रयोजनं पादाकुलकेनाह—

योगात्सिद्धिर्धरणिपतीनामृक्षगुणैरपि भूदेवानाम् ॥
चौराणामपि शुभशकुनैरुक्ता भवति मुहूर्तादपि मनुजानाम् ॥९७॥

योगादिति ॥ धरणिपतीनां राज्ञां योगाद्वक्ष्यमाणयोगयात्रालग्नवशाद्दुष्टे तिथ्यादौ सिद्धिर्वांछितकार्यनिष्पत्तिः स्यात् । भूदेवानां ब्राह्मणानां ऋक्षगुणैर्नक्षत्रगुणैश्चंद्रबलताराबलविहितनक्षत्रत्वादिभिः सिद्धिर्भवति । अपिशब्दात्पंचांगशुद्ध्यादिषु नावश्यकता । चौराणां वक्ष्यमाणैः शुभसूचकशकुनैः सिद्धिर्भवति । एतद्भिन्नानां मनुजानां मुहूर्तात् गिरिशभुजगमित्रा । इति विहितनक्षत्रस्वामिकमुहूर्तात्सिद्धिर्भवति ॥ ९७ ॥

अथ योगयात्रालग्नं मंजुभाषिण्याह—

सहजे रविर्दशमभे शशी तथा शनिमंगलौ रिपुगृहे सितः सुते ॥
हिबुके बुधो गुरुरपीह लग्नगः स जयत्यरीन्प्रचलितोऽचिरान्नृपः॥९८॥

सहजेरविरिति ॥ रविः सहजे तृतीये स्यात् शशी चंद्रो दशमभे दशमस्थाने शनिमंगलौ रिपुगृहे षष्ठस्थाने स्यातां सितः सुते पंचमे बुधो हिबुके चतुर्थे गुरुरपि लग्नगश्चेत्स्यात् एवंविधे योगे राजा प्रचलितः अचिरात्स्वल्पकालेनैवारीन् जयति वशीकरोतीत्यर्थः ॥ ९८ ॥

अथ योगांतरं गाथयाह—

भ्रातरि सौरिर्भूमिसुतो वैरिणि लग्ने देवगुरुः ॥
आयगतेऽर्केशत्रुजयश्चेदनुकूलो दैत्यगुरुः ॥ ९९ ॥

भ्रातरि सौरिरिति ॥ भ्रातरि तृतीये शनिः वैरिणि षष्ठे भूमिसुतो मंगलः अर्के आयगते एकादशे एवंविधे योगे राज्ञां शत्रुजयो भवेत् चेद्दैत्यगुरुः शुक्रोऽनुकूलः यातव्यदिक्पृष्ठवर्ती भवति ॥ ९९ ॥

अन्यद्योगांतरं भुजंगप्रयातार्धेनाह—

तनौ जीव इंदुर्मृतौ वैरिगोऽर्कः प्रयातो महींद्रो जयत्येव शत्रून्॥१००॥

तनौ जीव इति ॥ स्पष्टार्थः । तथाच नारदः । जीवार्कचंद्रा लग्नारिरंध्रगा यदि गच्छतः । तस्याग्रे खलमैत्रीव न स्थिरा रिपुवाहिनीति ॥ १०० ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथान्यं योगं पंक्त्याह–

लग्नगतः स्याद्देवपुरोधाः ॥ लाभधनस्थैः शेषनभोगैः ॥ ६१ ॥

लग्नगतः स्यादिति ॥ लग्ने गुरुः स्यात् अन्ये ग्रहा लाभधनस्थाः एकादशद्वितीयस्थाश्चेदेवंविधे योगे राज्ञो विजयः ॥ ६१ ॥

अन्यं योगंमत्तयाह–

द्यूने चंद्रे समुदयगेऽर्के जीवे शुक्रे विदि धनसंस्थे ॥
ईदृग्योगे चलति नरेशो जेता शत्रून् गरुड इवाहीन् ॥ ६२ ॥

द्यून इति ॥ चंद्रे सप्तमस्थे सति अर्के समुदयगे लग्नगे सति जीवे शुक्रे विदि बुधे एतेऽषु त्रिषु धनसंस्थेषु द्वितीयस्थानस्थितेषु सत्सु एवंविधे योगे नरेशश्चेत् चलति तदा शत्रून् जेता जेष्यति । कः कानिव गरुडोऽहीन् सर्पान् यथा ॥ ६२ ॥

अथान्यं योगं चित्रपदयाह–

वित्तगतः शशिपुत्रो भ्रातरि वासरनाथः ॥
लग्नगते भृगुपुत्रे स्युः शलभा इव सर्वे ॥ ६३ ॥

वित्तगत इति ॥ बुधो द्वितीये वासरनाथः सूर्यस्तृतीये शुक्रे लग्नगे एवंविधे योगे चेद्राजा चलति तदा शत्रवो राजानः शलभा इव स्युः । यथा शलभा अग्नौ स्वयमेव गत्वा पतंति तथा शत्रवोऽपि गंतृराजप्रतापानले पतिष्यंतीत्यर्थः ॥ ६३ ॥

अथान्यं योगं गाथयाह–

उदये रविर्यदि सौरिररिगः शशी दशमेऽपि ॥
वसुधापतिर्यदि याति रिपुवाहिनी वशमेति ॥ ६४ ॥

उदयेरविरिति ॥ उदये रविः शनिः षष्ठः चंद्रो दशमः स्यात् एवंविधे योगे वसुधापती राजा यदि याति तदा रिपुवाहिनी शत्रुसेना वशमेति ॥ ६४ ॥

अथान्ययोगद्वयं जलोद्धतगत्याह–

तनौ शनिकुजौ रविर्दशमभे बुधो भृगुसुतोऽपि लाभदशमे ॥
त्रिलाभरिपुभेषु भूसुतशनी गुरुज्ञभृगुजास्तथा बलयुताः ॥ ६५ ॥

तनौ शनिकुजाविति ॥ इत आरभ्य वसुधापतिर्यदि याति रिपुवाहिनी वशमेतीत्युत्तरार्धे सहजे कुज इत्येतत्पर्यंतमनुवर्तते । तेन यत्र फलनिर्देशो नास्ति तत्र जिगमिषो राज्ञो विजयः स्यादिति वाक्यार्थोज्ञेयः । तनौ लग्नस्थौ शनिमंगलौ स्याताम् । रविर्दशमे बुधो लाभे दशमे वा स्यात् भृगुसुतो वा लाभे दशमे वा स्यात् एवंविधे योगे प्रचलितस्य राज्ञो विजयः स्यात् । अयमेको योगः । अथ द्वितीयः । त्रिलाभरिपुभेषु ३, ११, ६, एष्वन्यतमस्थानस्थितौ भूसुतशनी स्याताम् यस्मिन् कस्मिंश्चित्स्थाने गुरुज्ञभृगुजा बलयुताः स्युस्तदा राज्ञो विजय इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथान्यं योगं त्वरितगतिश्च नजनगैरित्यनेन छंदसाह—

समुदयगे विबुधगुरौ मदनगते हिमकिरणे ॥
हिबुकगतौ बुधभृगुजौ सहजगताः खलखचराः ॥ ६६ ॥

समुदयेति ॥ समुदयगे लग्नस्थे बृहस्पतौ सति हिमकिरणे चंद्रे मदनगते सप्तमस्थे सति चतुर्थस्थौ बुधशुक्रौ स्याताम् खलखचराः पापग्रहाः सहजगताः तृतीयगाः स्युः एवंविधे योगे वसुधापतिर्यदि याति तदा रिपुवाहिनी वशमेति ॥ ६६ ॥

अथान्यं योगं सुमुख्या जजलजगैर्गदिता सुमुखीति लक्षणलक्षितयाह—

त्रिदशगुरुस्तनुगो मदने हिमकिरणो रविरायगतः ॥
सितशशिजावपि कर्मगतौ रविसुतभूमिसुतौ सहजे ॥ ६७ ॥

त्रिदशगुरुरिति ॥ बृहस्पतिर्लग्ने चंद्रः सप्तमे सूर्य एकादशे शुक्रबुधौ दशमे शनिमंगलौ सहजगतौ तृतीये एवंविधे योगे गंतू राज्ञो विजय एव ॥ ६७ ॥

अथान्यं योगं स्यादनुकूला भतनगगश्चेति लक्षणलक्षितयानुकूलयाह—

देवगुरौ वा शशिनि तनुस्थे वासरनाथे रिपुभवनस्थे ॥
पंचमगेहे हिमकरपुत्रः कर्मणि सौरिः सुहृदि सितश्च ॥ ६८ ॥

देवगुराविति ॥ गुरौ चंद्रे वा लग्ने सति सूर्ये षष्ठे बुधः पंचमस्थाने शनिर्दशमे शुक्रश्चतुर्थे स्यात् एवंविधे योगे जिगमिषो राज्ञो विजय एव ॥ ६८ ॥

अथान्यं योगं ननररघटिता तु मंदाकिनीति लक्षणलक्षितया मंदाकिन्याह—

हिमकिरणसुतो बली चेत्तनौ त्रिदशपतिगुरुर्हि केंद्रस्थितः ॥
व्ययगृहसहजारिधर्मस्थितो यदि च भवति निर्बलश्चंद्रमाः ॥ ६९ ॥

हिमकिरण इति ॥ बुधो बली चेत्तनौ लग्ने स्यात् हीति निश्चयेन बृहस्पतिश्चेत्केंद्रगतः यदि निर्बलो नीचाद्यशुभाधिकारप्राप्तो बलरहितः सन् द्वादशतृतीयषष्ठनवमानामन्यतमस्थानस्थश्चंद्रस्तदेवंविधे योगे गंतू राज्ञो विजय एव ॥ ६९ ॥

अथान्यं योगं अभिनवतामरसं तजजाय इति लक्षणलक्षितेनाभिनवतामरसच्छंदसाह—

अशुभखगैरनवाष्टमदनस्थैर्हिबुकसहोदरलाभगृहस्थः ॥
कविरिह केंद्रगगीष्पतिदृष्टो वसुचयलाभकरः खलुयोगः ॥ ७० ॥

अशुभखगैरिति ॥ अशुभग्रहैः अनवाष्टमदनस्थैः नवमाष्टमसप्तमस्थानव्यतिरिक्तस्थानस्थैः कविः शुक्रः चतुर्थतृतीयैकादशस्थानस्थः केंद्रगतो गीष्पतिर्गुरुस्तेन दृष्टः एवंविधो योगो वसुचयो द्रव्यसमूहस्तस्य लाभकरः स्यात् ॥ ७० ॥

२४

Aho ! Shrutgyanam

अथान्यं योगं प्रमिताक्षरा सजससैरुदितेति लक्षणलक्षितप्रमिताक्षराच्छंदसाह—

रिपुलग्नकर्महिबुके शशिजे परिवीक्षिते शुभनभोगमनैः ॥
व्ययलग्नमन्मथगृहेषु जयः परिवर्जितेष्वशुभनामधरैः ॥ ७१ ॥

रिपुलग्नेति ॥ षष्ठलग्नदशमचतुर्थानामन्यतमस्थानस्थे बुधे शुभनभोगमनैः शुभग्रहैः परिवीक्षिते दृष्टे सति द्वादशलग्नसप्तमस्थानव्यतिरिक्तस्थानस्थितैरशुभनामधरैः पापग्रहैरुपलक्षिते सति एवंविधे योगे जिगमिषो राज्ञो विजय एव ॥ ७१ ॥

अथान्यं योगद्वयं त्यौ त्यौ मणिमाला छिन्ना गुहवक्त्रैरिति लक्षणलक्षितयाह—

लग्ने यदि जीवः पापा यदि लाभे
कर्मण्यपि वा चेद्राज्याधिगमः स्यात् ॥
द्यूने बुधशुक्रौ चंद्रो हिबुके वा
तद्वत्फलमुक्तं सर्वैर्मुनिवर्यैः ॥ ७२ ॥

लग्न इति ॥ लग्ने गुरुः पापग्रहा यदि लाभे एकादशे कर्मण्यपि दशमेऽपि चेत्स्युः एवंविधयोगे प्रचलितस्य राज्ञो राज्याधिगमो राज्यप्राप्तिः स्यात् । अथवा द्यूने सप्तमे बुधशुक्रौ स्यातां चंद्रो हिबुके चतुर्थे स्यादेवंविधयोगे सर्वैर्मुनिवर्यैस्तद्वत्फलमुक्तं राज्याधिगमः स्यात् ॥ ७२ ॥

अथान्यद्योगत्रयं ननततगुरुभिश्चंद्रिकाश्वर्तुभिरिति लक्षणलक्षितेन चंद्रिकाच्छंदसाह—

रिपुतनुनिधने शुक्रजीवेंदवो ह्यथ बुधभृगुजौ तुर्यगेहस्थितौ ॥
मदनभवनगश्चंद्रमा वांबुगः शशिसुतभृगुजांतर्गतश्चंद्रमाः ॥ ७३ ॥

रिपुतन्विति ॥ अत्र स्थानानां ग्रहाणां च साम्याद्यथासंख्यमन्वयः । यथा रिपौ षष्ठे शुक्रः लग्ने जीवः अष्टमे चंद्रः एवंविधे योगे गंतू राज्ञो विजय एव । अयमेको योगः । अथ द्वितीयः बुधभृगुजौ तुर्यगेहस्थितौ चतुर्थस्थानस्थौ स्याताम् चंद्रमा मदनभवनगः सप्तमस्थानस्थश्चेदेवंविधे योगे गंतू राज्ञो विजय एव । अथ तृतीयो योगः वा चंद्रमा अंबुगः चतुर्थगः बुधशुक्रयोरंतर्गतो मध्यवर्ती चेत्तदापि राज्ञो विजय एव शशिसुतभृगुजयोरंतर्गतत्वं एकराशावेव ज्ञेयम् अन्यथा चतुर्थस्थानस्थचंद्रस्य बुधशुक्रकृतदुरुधरायोगमेवावक्ष्यत् ॥ ७३ ॥

अथान्यद्योगद्वयं सजसासगौ च कथितः कलहंस इति लक्षणलक्षितेन कलहंसच्छंदसाह—

सितजीवभौमबुधभानुतनूजास्तनुमन्मथारिहिबुकत्रिगृहे चेत् ॥
क्रमतोऽरिसोदरखशात्रवहोरा हिबुकायगैर्गुरुदिनेऽखिलखेटैः ७४

Aho ! Shrutgyanam

सितेति ॥ लग्ने शुक्रः सप्तमे जीवः षष्ठे भौमः चतुर्थे बुधः तृतीये शनिः एवंविधे योगे गंतू राज्ञो विजय एव एको योगः अथान्यः । गुरुदिने बृहस्पतिवारे अखिलखेटैः समस्तग्रहैः सूर्यादिभिः क्रमतोऽरिसोदरेत्यादिस्थानस्थितैः यथा षष्ठेऽर्कः तृतीये चंद्रः दशमे भौमः षष्ठे बुधः लग्ने गुरुः चतुर्थे शुक्रः एकादशे शनिः एवंविधे योगेऽपि गंतू राज्ञो विजय एव ॥ ७४ ॥

अथान्यद्योगद्वयं सजसा जगौ च कथिता प्रबोधिकेति लक्षणलक्षितप्रबोधिकाच्छंदसाह—

सहजे कुजो निधनगश्च भार्गवो
मदने बुधो रविररौ तनौ गुरुः ॥
अथ चेत्स्युरीज्यसितभानवो जल-
त्रिगता हि सौरिरुधिरौ रिपुस्थितौ ॥ ७५ ॥

सहज इति ॥ तृतीये भौमः अष्टमे शुक्रः सप्तमे बुधः षष्ठे सूर्यः लग्ने गुरुः एवंविधे योगे गंतू राज्ञो विजय एव अयमेको योगः । अथान्यः । अथेति । ईज्यसितभानवो गुरुशुक्रसूर्याः जलत्रिगताः चतुर्थतृतीयस्थानस्थाः सौरिरुधिरौ शनिमंगलौ षष्ठस्थितौ एवंविधे योगे हि निश्चितं राज्ञो जयः स्यात् ॥ ७९ ॥

अथ नामविशेषपुरस्कारेण योगत्रयं सफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

एको ज्ञेज्यसितेषु पंचमतपःकेंद्रेषु योगस्तथा
द्वौ चेत्तेष्वधियोग एषु सकला योगाधियोगः स्मृतः ॥
योगे क्षेममथाधियोगगमने क्षेमं रिपूणां वधं चाथो
क्षेमयशोवनीश्च लभते योगाधियोगे व्रजन् ॥ ७६ ॥

एक इति ॥ ज्ञेज्यसितेषु बुधगुरुशुक्रेषु एकोऽपि बुधो वा गुरुर्वा शुक्रो वा चेत्पंचमतपःकेंद्रेषु तदा योगाख्यो योगः । तथा तेषु ज्ञेज्यसितेषु द्वौ चेत् बुधगुरू बुधशुक्रौ गुरुशुक्रौ वा चेत्पंचमतपःकेंद्राणामन्यतमस्थाने स्थानभेदेन स्थानैक्येन वा स्थितौ स्यातां तदाधियोगाख्यो योगः । सकलाः ज्ञेज्यसिताः एषु पंचमतपःकेंद्राणामन्यतमस्थानेषु स्थानभेदेन स्थानैक्येन वा स्थितास्तदा योगाधियोगाख्यो योगः । फलमाह योग इति । योगे व्रजन् राजा क्षेमं कुशलं लभते कुशलेन गतागतं करोतीत्यर्थः । अथाधियोगे व्रजन् राजा क्षेमं तथा रिपूणां वधं च लभते । अथ योगाधियोगे व्रजन् राजा क्षेमयशोवनीश्चकारात् शत्रुवधं च लभते । अत्र वसिष्ठादिभिर्बहूनि यात्रालग्नान्यभिहितानि तानि तद्ग्रंथेभ्य एवावधार्याणि ॥ ७६ ॥

अथान्येऽपि यात्रायोगा लिख्यंते । कश्यपः । पंचमे ज्ञो रविः षष्ठे वर्तते नवमे गुरुः । भाग्ययोगाभिधे योगे निहंता वैरिणां सदा ॥ १ ॥ गुरुः केंद्रे त्रिकोणे वा रविर्लाभे च

Aho ! Shrutgyanam

कर्मणि । कल्याणयोगो भूपस्य यातुः कल्याणकृद्भवेत् ॥ २ ॥ दिगीशो दिग्बली चेत्स्याल्लग्नेशस्य सुहृद्यदि । विजयो नाम योगोऽयं याता राजा जयी भवेत् ॥ ३ ॥ अत्रिः । सहजस्थानगो भौमो भाग्यस्थश्च बृहस्पतिः । चिंतामणिसमाख्योऽयं यातुः संकल्पपूरकः ॥ ४ ॥ लग्ने शुक्रः शशी बंधौ कर्मस्थाने गुरुर्यदा । मृगेंद्रयोगो विख्यातो यातुः सर्वार्थसाधकः ॥ ५ ॥ लग्ने भौमो गुरुश्छिद्रे षष्ठस्थाने च भास्करः । मृत्युंजयसमाख्योऽयं सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ ६ ॥ आपोक्लिमगते चंद्रे केंद्रस्थे सुरपूजिते । योगः केंद्र इति ख्यातो यातुरिष्टार्थसिद्धिदः ॥ ७ ॥ चंद्रोदये गुरुश्चास्ते लग्ने वा सुरपूजिते । योगः पारावतो यातुः शुक्रे वा लग्नकेंद्रगे ॥ ८ ॥ प्रबले यदि योगोऽसौ गमने सर्वसिद्धिदः ॥ ९ ॥ रविः षष्ठे सितश्छिद्रे तृतीये भूमिनंदनः । पिनाकियोगो विख्यातो यातुर्विजयकारकः ॥ १० ॥ अन्योन्यक्षेत्रगावेकक्षेत्रे वा कविभास्करौ ॥ मृत्युयोगोऽयमाख्यातो यातुर्मृत्युप्रदायकः ११ उच्चक्षेत्रगतश्चंद्रो ह्यक्षीणश्च रविर्गुरुः । संजीवनसमाख्योऽयं मृत्युयोगापहारकः ॥ १२ ॥ एकर्क्षगौ जीवशुक्रौ स्यातामन्योन्यसप्तगौ । भयंकराख्ययोगोऽयं यातुर्भीतिप्रदः स्मृतः १३ उच्चमूलत्रिकोणेषु वर्तेते गुरुभार्गवौ । अभयाभिधयोगोऽयं भयंकरविनाशनः ॥ १४ ॥ भार्येशो व्ययगो नीचः पुत्रस्थाने शनैश्चरः । विदारिकसमाख्योऽयं यातुः पत्नीं निहंत्यसौ ॥ १५ ॥ मार्गेशः शनिसंयुक्तः सप्तमेऽस्तंगतो ग्रहः । विदारिकमिमं मन्ये यातुः पत्नीविनाशकम् ॥ १६ ॥ सप्तमे चंद्रमास्तस्मात्सप्तमे नीचखेचरः । कुटुंबहारको योगो यातुः प्रियतमां हरेत् ॥ १७ ॥ दुर्बलो यदि मार्गेशो निवसेत्पापमध्यगः ॥ पापकुंजरयोगोऽयं यातुः पत्नीं निहंत्यसौ ॥ १८ ॥ मार्गेशात्सप्तमे भानुः पंचमे क्रूरखेचरः । विदारिकाख्य एवासौ भार्यामरिवशं नयेत् ॥ १९ ॥ स्वोच्चमूलत्रिकोणस्थः सौम्यः पापविवर्जितः । आनंदार्णवयोगोऽयं धर्मेणैव जयावहः ॥ २० ॥ रत्नावल्याम् । उदयारिनभस्तलगैर्दिनकृद्यमशीतकरैः । न भवंत्यरयोऽभिमुखा हरिणा इव केसरिणः ॥ २१ ॥ दैवज्ञवल्लभे । ज्ञे सितेन सहितेऽस्तगे विधौ बंधुगे प्रवसता महीभुजा । संगरे रिपुगणो विकीर्यते तूलराशिरिव मातरिश्वना ॥ २२ ॥ मूर्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचंद्रसुततिग्मरश्मयः । यस्य यानसमये रणांगणे तस्य यांति शलभा इवारयः ॥ २३ ॥ यात्राशिरोमणौ । यो याति जीवे तनुगे महीशः क्रूरैः स्थितैर्व्योम्न्यथवायसंस्थैः । तस्याग्रतः संयति वैरिसेना प्रीतिर्नृपाणामिव नो स्थिरा स्यात् ॥ २४ ॥ राजमार्तंडः । लाभारिदुश्चिक्यगतौ यमारौ बलान्विता भार्गवजीवसौम्याः । यस्य प्रयाणे विलयं प्रयांति तस्य द्विषः सर्वरसं यथाप्सु ॥ २५ ॥ फलप्रदीपे । लाभविक्रमसुखस्थिते कवौ कंटकस्थगुरुणा निरीक्षिते । द्यूनरंध्रभववर्जितैः खलैः स्याद्गतोऽभिमतसिद्धिभाङ्नृपः ॥ २६ ॥ सौम्यग्रहैः केंद्रतपःसुतस्थैः क्रूरैस्त्रिलाभारिगतैर्गता ये । कोपानलः शांतिमुपैति तेषां विरोधिनारीनयनांबुपातैः ॥ २७ ॥ वराहः । एकोऽपि जीवा-

Aho ! Shrutgyanam

केकुजार्कजानां स्वोच्चे विलग्ने स्वगृहे यदींदुः । यातस्य यांत्यत्र पराः प्रणाशं महाकुलानीव कुटुंबभेदे ॥ २८ ॥ चंद्रेऽस्तगे देवगुरौ विलग्ने ज्ञशुक्रयोः कर्मणि लाभगेऽर्के । सौरारयो-र्भ्रातृगयोश्च यातो नृपः स्वभृत्यानिव शास्ति शत्रून् ॥ २९ ॥ नारदः । स्वोच्चस्थे लग्नगे जीवे चंद्रे चायगते यदि । गतो राजा रिपून् हंति पिनाकी त्रिपुरं यथा ॥ ३० ॥ शुक्रे त्रिकोणे केंद्रस्थे लग्ने चंद्रेथ वा रवौ । शत्रून् हंति गतौ राजा ब्रह्मद्वेषः कुलं यथा॥३१॥ पापास्तृतीये हिबुके सितज्ञौ जीवो विलग्ने मृतलांछनोऽस्ते । यस्योद्गतस्यापि बलं रिपूणां कृतं कृतघ्नेष्विव याति नाशम् ॥ ३२ ॥ यस्योदयास्तारिचतुस्त्रिसंस्थाः शुक्रांऽगिरोंऽगारक-सौम्यसौराः । द्विषद्बलं स्त्रीवदनानि तस्य क्रांतानि कांता न विलोकयंति ॥ ३३ ॥ पूर्वो-क्तयोगे धनगो बुधश्चेच्छशांकसूर्यौ च दशायसंस्थौ । अस्मिन् गतस्यालिकुलोपनीता नानाव-नस्था द्विरदा भवंति ॥ ३४ ॥ वराहः । त्रिषण्णवांत्येष्वबलः शशांको बुधो बलीयांश्च गुरुश्च केंद्रे । तस्यारियोषाभरणैः प्रियाणि प्रियाप्रियाणां जनयंति सैन्ये ॥ ३५ ॥ चंद्रो-ऽबलः बुधो बली उभौ च त्रिषण्णवांत्येष्वेव भवतस्तदा योगः । केंद्रोपगतेन वीक्षिते गु-रुणा स्वायतुरीयगे सिते । पापैरनवाष्टसप्तगैर्वसुकिं तन्न यदाप्नुयान्नृपः ॥ ३६ ॥ षष्ठाष्टगौ शुक्रबुधौ प्रयाणे सुरेशपूज्यो गगने यदि स्यात् । रिपुप्रणाशं विषयेषु सौख्यं प्राप्नोति । कीर्तिं विपुलां च भोगम् ॥ ३७ ॥ दुश्चिक्यलाभारिगतेऽर्कपुत्रे चतुर्थगे दैत्यगुरौ प्रयाति यदा पुमान् सद्भिरदेंद्रयानं कीर्तिं यशः सिद्धिसहस्त्रमेति ॥ ३८ ॥ केंद्रस्थाने सुरपतिगुरौ कंटकस्थे सुरेज्ये छिद्रे सौम्ये प्रवसाति यदा त्वष्टमे ग्लौर्यदि स्यात् । येषां क्रूरा रिपुसहजगा राहुकेतू च मूर्तावायुः कीर्तिं द्रविणमतुलं ते लभंते यशश्च ॥ ३९ ॥ मूर्तौ शुक्रौ सुरपति-गुरौ छिद्रगे वा त्रिकोणे केंद्रस्थाने शनिरविकुजा लाभगा वा यदि स्युः । ये भूपा यांति शत्रुं विपुलधनमथो सैन्यनाशं रिपूणां कीर्तिं शुद्धं यशश्च प्रमथितरिपवस्ते सुखादाव्रजंति ॥ ४० ॥ होरासंस्थे सुरपतिगुरौ भार्गवे कंटकस्थे षष्ठे चंद्रे व्रजति यदि वा कार्ययोगा-त्क्षितीशः । प्राप्नोत्यग्र्यं कनकतुरगं रूप्यरत्नादिकोशमायुः कीर्तिं जयति च तदा मत्तमातं-गयूथम् ॥ ४१ ॥ लग्नारिकर्महिबुकेषु शुभेक्षितेषु द्यूनांत्यलग्नरहितेष्वशुभग्रहेषु । यातुर्भयं न भवति प्रतरेत्समुद्रं यद्यश्मनापि किमुतारिसमागमेषु ॥ ४२ ॥ एकांतरर्क्षे भृगुजात्कुजाद्वा सौम्ये स्थिते सूर्यसुताद्गुरोर्वा । प्रध्वस्यतेऽरिर्न चिराद्गतस्य वेषाधिको भृत्य इवेश्वरस्य ॥४३॥ शुक्राद्भौमाद्वा सौराज्जीवाद्वा बुधः एकांतरे तृतीयस्थाने यत्र कुत्र स्यात्तदा योगः । निरंतरं यदि भवनेषु पंचसु ग्रहाः स्थिता दिवसकरेण वर्जिताः । यियासतो यदि च भवंति पृष्ठत-स्तदा परान्बलभिदिवाशु कृंतति ॥ ४४ ॥ प्राक्कपालस्थैर्ग्रहैः पश्चिमदिशि पृष्ठगतत्वम् । अपरकपालस्थैः प्राच्यां खमध्यस्थैरुत्तरादिशि अर्धरात्रस्थैर्दक्षिणदिशि बुधभार्गवमध्यगते हिमगौ हिबुकोपगते च नृपः प्रवसेत्पुरुहूतदिशं यदिवांतकृतः पुरुहूतयमं प्रति ॥ ४५ ॥

Aho ! Shrutgyanam

सितेंदुजौ चतुर्थगौ निशाकरश्च सप्तमे । यदा तदा गतो नृपः प्रशास्त्यरीन् विनारणात् ४६ शुक्रवाक्पतिबुधैर्धनसंस्थैः सप्तमे शशिनि लग्नगतेऽर्के । निर्गतो नृपतिरेति कृतार्थो वर्षांते यदरीन्विनिहत्य ॥४७॥ सूर्येंदु बलवर्जितौ बलयुतौ लग्नेशजन्मेश्वरौ पाताले दशमेऽपि वा शशिसुतो लग्नस्थितो वाक्पतिः । षट्सप्ताष्टमवर्जितेषु भृगुजः स्थानेषु यस्य स्थितो यातुस्तस्य न विद्विषो रणमुखे तिष्ठंति योषा इव ॥ ४८ ॥ सौरे भौमे लग्नगेऽर्के खमध्ये कर्मण्याये भार्गवे चंद्रजे वा । यायाद्भूपः शत्रुगेहं निहंतुं दृप्तं शत्रुं कालवत्क्रूरचेष्टः ॥ ४९ ॥ गुरौ विलग्ने यदि वा शशांके षष्ठे रवौ कर्मगतेऽर्कपुत्रे ॥ सितज्ञयोर्बंधुसुतस्थयोश्च यात्रा जनित्रीव हितानि धत्ते ॥ ५० ॥ त्रिनिधनतनुसप्तमारिसंस्थाः कुजसितजीवबुधा रविश्च यस्य । खलजनजनितेव लोकयात्रा न भवति तस्य चिराय शत्रुसेना ॥ ५१ ॥ कुजरविजयुतेऽरिभे गतानां जलसहजायगतैः सितार्कजीवैः । परबलमुपयाति नाशमाशु श्रुतमधनस्य कुटुंबचिंतयेव ५२ भृगुपुत्रमहेंद्रगुरू गमने सहितौ यदि भं युगपत्त्यजतः । ज्ञगुरू यदि वांशकमेकगतौ समरेऽमरराडिव भाति तदा ॥५३॥ क्षितितनययुतान्नवांशकाद्यदि शतमे भृगुजोऽथवा गुरुः । शतगुणमपि हंत्यरेर्बलं विषमिव कायमसृक्पथोपगम् ॥५४॥ स्वोच्चोपगैर्जीवकुजार्कखेटैरेभिस्त्रिभिर्वा कथितैर्विलग्ने । राज्ञः प्रणाशं समुपैति शत्रुः सौख्यं द्विभार्यस्य यथा धनस्य ॥ ५५ ॥ शतांशकादूर्ध्वमवस्थिते बुधे यमारयोस्तत्र गतस्य भूभृतः । प्रयाति नाशं समरे द्विषद्बलं यथार्थिभावोपगतस्य गौरवम् ॥ ५६ ॥ भौमाधिष्ठितनवांशाद्यदि बुधो नवांशकशतादूर्ध्वं तिष्ठति । एवं शनिरपि । सिंहाजतौलिमिथुना मृगकर्कटौ च स्वेशान्विता भवति यस्य शनिश्च लग्ने । तत्सैनिकाः परबलं क्षपयंति यातुर्मूर्खस्य वित्तमिव चारणचट्टमंक्षाः ॥ ५७ ॥ चट्टा धूर्ताः मंक्षा अलीकवादिनः । अथ समरयात्रा । गुरौ वीर्ये केंद्रयुते बुधे वा भृगुनंदने । विजयो नाम योगोऽयं यातुर्विजयदः सदा ॥ ५८ ॥ स्वराशिगे बुधे लग्ने सिते वा सुरवंदिते । नंद्यावर्ताह्वयो योगो यातुरिष्टार्थसिद्धिदः ॥ ५९ ॥ स्वांशसंस्थे बुधे लग्ने शुक्रे वा सुरपूजिते । शंखसंज्ञाह्वयो योगो यातुः कीर्तिप्रदः सदा ॥ ६० ॥ स्वराशौ स्वांशगे सौम्ये लग्नस्थे वा भृगोः सुते । जीवे वा व्रजयोगोऽयं यातुः शत्रुविनाशकृत् ॥ ६१ ॥ अधिमित्रांशगे सौम्ये सिते वाथ सुरार्चिते । लग्नगे मातृयोगोऽयं शत्रूणां संधिकृत्सदा ॥ ६२ ॥ यत्रैकादशगश्चंद्रो भानुर्वा प्रबलः शुभः । अभयो नाम योगोऽयमरिभूतिविनाशकृत् ॥ ६३ ॥ त्रिकोणगे शुभे खेटे सबले वा द्वितीयगे । कल्याणसंज्ञो योगोऽयं यायिनां मंगलप्रदः ॥ ६४ ॥ यत्र स्वोच्चगतश्चंद्रो लग्नादेकादशे स्थितः ॥ जयंतो नाम योगोऽयं शत्रुपक्षविनाशकृत् ॥ ६५ ॥ वर्गोत्तमगते लग्ने शुभे वाथ बलान्विते । शुभग्रहयुतैः केंद्रैर्योगोऽयं सिद्धिदायकः ॥ ६६ ॥ षष्ठे वायगते सूर्ये तामगे हरसंज्ञकः । योगो महारणे शत्रुपक्षक्षयकरः सदा ॥ ६७ ॥ उच्चस्थे लाभगे शुक्रे त्रिषष्ठे देवपूजिते । सुदर्शनो महायोगः

Aho ! Shrutgyanam

शत्रुध्वंसकरो रणे ॥ ६८ ॥ लग्नान्यकेंद्रगे चंद्रे लग्नस्थे देवपूजिते । महाशंखाह्वयो योगः प्रतिपक्षाच्च मानदः ॥ ६९ ॥ भूसुते स्वोच्चगे लाभे मृगकुंभगते यमे । नंद्यावर्ताह्वयो योगो रणे शत्रुतृणानलः ॥ ७० ॥ मेषगे भास्करे षष्ठे लाभगे स्वोच्चगे यमे । नक्षत्रपादयोगोऽयं शत्रुमेघानिलो रणे ॥ ७१ ॥ भौमे स्वराशिगे लग्ने सौम्ये केंद्रत्रिकोणगे । पुष्ययोगोऽरिविपिनकुठारः संगरांगणे ॥ ७२ ॥ एकांतरगते लग्नाच्छुभखेटेऽथवाऽशुभे । वापीयोगस्त्वरिव्राततिमिरौघदिवाकरः ॥ ७३ ॥ आवश्यके तथा याने सौम्योऽस्ते निधनेऽपि वा । व्रजेदर्कोदयेऽस्ते वा मध्याह्ने वाप्यशंकितः ॥ ७४ ॥ प्रभ्रष्टद्युतितारकास्फुटतटी प्राची भवेन्निर्मला त्वीषद्रक्तविलोहिता न धवला देवैः सदावांछिता । नो वारं न तिथिं न चापि करणं लग्नं च नापेक्षते हत्वादोषसहस्रकं चयमुखा नूनं करोत्युन्नतिम् ॥ ७५ ॥ मध्यव्योमप्रयाते स्फुरदनलनिभे केसरैरर्कबिंबे छाया साध्वीव कांता प्रचलति पुरुषे यत्र तत्पादलग्ना । तावत्सौरिर्न विष्टिः कुजकृतमशुभं नैव ऋक्षं न योगः संमानारोग्यसंपत्क्षितिमथ युवतिं तत्र गंता लभेत ॥ ७६ ॥ यावत्सिंदूरवर्णं गगनतलगतं भानुबिंबं च नास्तं यावन्नो दिक्षु शांतिं व्रजति खुरपुटैरुद्धतो रेणुसंघः । तावन्नैवास्ति दोषः प्रभवति न च सा क्रूरदृष्टिर्ग्रहाणां यात्रायां वा विवाहे सकलशुभकरी सर्वकार्येषु सिद्धिः ॥ ७७ ॥ इत्यलं ग्रंथविस्तरेण । इति यात्रालग्ने राजयोगाः ॥

अथ विजयादशमीसंज्ञकं सिद्धमुहूर्तं तोटकेन सगणचतुष्टयेनाह—

इषमासि सिता दशमी विजया शुभकर्मसु सिद्धिकरी कथिता ॥
श्रवणर्क्षयुता सुतरां शुभदा नृपतेस्तु गमे जयसंधिकरी ॥ ७७ ॥

इषमासीति ॥ स्पष्टार्थः । कश्यपः । मासीषे शुक्लदशमी सर्वदा विजयाभिधा । विजयस्तत्र यातॄणां संधिर्वा न पराजय इति ॥ ७७ ॥

अथान्यद्वसंततिलकयाह—

चेतो निमित्तशकुनैः खलु सुप्रशस्तै-
र्ज्ञात्वा विलग्नबलमुर्व्यधिपः प्रयाति ॥
सिद्धिर्भवेदथ पुनः शकुनादितोऽपि
चेतोविशुद्धिरधिका न च तां विनेयात् ॥ ७८ ॥

चेतोनिमित्तेति ॥ चेतोऽतःकरणम् निमित्तमंगस्फुरणादि शकुनानि वक्ष्यमाणानि एतैः सुप्रशस्तैः सद्भिः खलु निश्चयेन लग्नबलं ज्ञात्वा उर्व्यधिपो राजा प्रयाति तदा सर्वसिद्धिर्वांछितसिद्धिर्भवति । यदा तु लग्नादिबले सत्यपि निंद्यानि शकुनानि स्युस्तदा यात्रा निषिद्धैव । वसिष्ठः । अशुभानि निमित्तानि उत्पातशकुनानि च । यात्राकाले नृणां तेषां निधनायाधनाय चेति । यदा तु दैवात् शकुनलग्नादीन्यनिंद्यानि चेतोविशुद्धिश्च नास्त्येवात्र

Aho ! Shrutgyanam

कस्य प्राबल्यमित्यत आह । अथेति शकुनादितोऽपि सकाशाच्चेतोविशुद्धिरधिका तां चेतोविशुद्धिं विना नेयात् न गच्छेत् । कश्यपः । निमित्तशकुनादिभ्यः प्रधानं हि मनोजयः । तस्माद्धिया सतां नृणां फलसिद्धिर्मनोजयादिति ॥ ७८ ॥

अथ यात्रायामवश्यनिषिद्धनिमित्तानि वसंतमालिकाछंदसाह—

तल्लक्षणम् । विषमे ससजा गुरू समे चेत् सभरायश्च वसंतमालिका सा । विषमे समे चरणे ॥

व्रतबंधनदेवताप्रतिष्ठाकरपीडोत्सवसूतकासमाप्तौ ॥
न कदापि चलेदकालविद्युद्घनवर्षातुहिनेऽपि सप्तरात्रम् ॥ ७९ ॥

व्रतबंधनेति ॥ व्रतबंधनं यज्ञोपवीतम् देवप्रतिष्ठा प्रसिद्धा करपीडा विवाहः उत्सवो होलिकादिः सूतकं द्विविधं जननसूतकं मरणसूतकं च एषां शास्त्रोक्तयावद्दिनसमाप्त्यानामसमाप्तौ समाप्तिं विना कदापि नैव चलेत् गच्छेत् । नारदः । उत्सवोपनयोद्वाहप्रतिष्ठाशौचसूतके । आसमाप्तेर्न कुर्वीत यात्रां तत्र जिजीविषुरिति । अकालेति विद्युत् प्रसिद्धा घनो मेघगर्जितम् वर्षा वृष्टिः तुहिनं नीहारः एषु पदार्थेष्वकालेषु सत्सु सप्तरात्रं दिनसप्तकं न चलेत् । नारदः । अकालजेषु नृपतिर्विद्युद्गर्जितवृष्टिषु । उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं न तु व्रजेदिति ॥ ७९ ॥

अथैकदिनसाध्ये गमनप्रवेशे विशेषं वंशस्थवृत्तेनाह—

महीपतेरेकदिने पुरात्पुरे यदा भवेतां गमनप्रवेशकौ ॥
भवारशूलप्रतिशुक्रयोगिनीर्विचारयेन्नैव कदापि पंडितः ॥ ८० ॥

महीपतेरिति ॥ स्पष्टार्थः । यथा वाराणसीस्थानाच्चरणाद्रिनगरे प्रवेशः तत्रैतान् दोषान् पंडितो नैव विचारयेत् ॥ ८० ॥

अथैकदिनमध्ये निर्गमप्रवेशाख्यरूपे कार्ये विचिकीर्षिते किंविचार्यमित्यार्ययाह—

यद्येकस्मिन् दिवसे महीपतेर्निर्गमप्रवेशौ स्तः ॥
तर्हि विचार्यः सुधिया प्रवेशकालो न यात्रिकस्तत्र ॥ ८१ ॥

यद्येकस्मिन्निति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ८१ ॥

अथ प्रयाणे नवमीदोषमनुष्टुभाह—

प्रवेशान्निर्गमं तस्मात्प्रवेशं नवमे तिथौ ॥
नक्षत्रे च तथा वारे नैव कुर्यात्कदाचन ॥ ८२ ॥

प्रवेशादिति ॥ गृहप्रवेशतिथितो नवमे तिथौ निर्गमं न कुर्यात् । पुनश्च गमनदिवसात् नवमे तिथौ गृहप्रवेशं न कुर्यात् । एवं नक्षत्रान्नवमे नक्षत्रे गृहप्रवेशं तथा गृहप्रवेशनक्षत्रान्नवमनक्षत्रे गमनं च न कुर्यात् । वारे च गमनवारान्नवमवारे गृहप्रवेशं गृहप्रवेश-

Aho ! Shrutgyanam

वासरान्नवमवारे गमनं न च कुर्यात् । गर्गः । प्रवेशान्निर्गमश्चैव निर्गमाच्च प्रवेशनम् । नवमे यातुर्नो कुर्याद्धिष्ण्ये वारे तिथावपीति ॥ ८२ ॥

अथ यात्रादिनीयं विधिं शालिन्याह—

अग्निं हुत्वा देवतां पूजयित्वा
नत्वा विप्रानर्चयित्वा दिगीशम् ॥
दत्त्वा दानं ब्राह्मणेभ्यो दिगीशं
ध्यात्वा चित्ते भूमिपालोऽधिगच्छेत् ॥ ८३ ॥

अग्निं हुत्वेति ॥ स्पष्टार्थम् ॥ ८३ ॥

अथ नक्षत्रदोहदान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कुल्माषांस्तिलतंडुलानपि तथा माषांश्च गव्यं दधि
त्वाज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा ॥
तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा
षाष्टिक्यं च प्रियंग्वपूपमथवा चित्रांडजान् सत्फलम् ॥ ८४ ॥

कुल्माषानिति ॥ अत्र चतुर्थचरणे प्रियंग्वपूपेत्यत्र छंदोभंगोऽस्ति सगणप्रक्षेपाकरणात् । सत्यम् प्रे ह्रे ऱ्हे वेति पिंगलसूत्रेण पकारे रेफसंयोगे च प्राग्वर्णस्य लघुत्वाभिधानात् सगणप्रक्षेप एव । तथा च कालिदासः । गृहीतप्रत्युद्गमनीयवस्त्रेति । हयाद्दक्षे अश्विन्यादिसप्तविंशतिभेषु कुल्माषादिकं नक्षत्रदोहदम् । इदं भक्ष्याभक्ष्यं वर्णभेदेन देशभेदेन विचार्यम् । भक्ष्यसंभवे भक्षयेत् अभक्ष्यसंभवे आलोकयेत् पश्येत्स्पृशेद्वेति ध्येयम् । यथाऽश्विन्यां कुल्माषानक्षतस्विन्नमाषान् भरण्यां तिलमिश्रतंडुलान् कृत्तिकायां माषान् रोहिण्यां गव्यम् गोरसं च दधि मृगे गव्यमाज्यं घृतम् आर्द्रायां दुग्धं गव्यमेव पुनर्वसावेणमांसं हरिणमांसम् पुष्ये मृगस्य रक्तम् आश्लेषायां पायसम् मघायां चाषस्य पललं मांसम् पूर्वाफल्गुन्यां मृगस्येदं मार्गं मांसं उत्तराफल्गुन्यां शशस्येदं शाशं मांसं हस्ते षाष्टिक्यं षष्टिकान्नं चित्रायां प्रियंगुः फलिनीत्येके स्वात्यामपूपं विशाखायां चित्रान् नानावर्णानंडजान्पक्षिणः अनुराधायां सत्फलं उत्तमफलमाम्रादिकम् ॥ ८४ ॥

ज्येष्ठादिदोहदं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कौर्मं सारिकगौधिकं च पललं शाल्यं हविष्यं हया-
द्दक्षे स्यात्कृसरान्नमुद्गमपि वा पिष्टं यवानां तथा ॥
मत्स्यान्नं खलु चित्रितान्नमथवा दध्यन्नमेवं क्रमा-
द्भक्ष्याभक्ष्यमिदं विचार्य मतिमान् भक्षेत्तथालोकयेत् ॥ ८५ ॥

Aho ! Shrutgyanam

कौर्ममिति ॥ ज्येष्ठायां कूर्मस्य कच्छपस्येदं कौर्मं मांसं मूले सारिकायाः पक्षिण्या इदं सारिकं मांसं पूर्वाषाढायां गोधायाः इदं गौधिकं मांसं उत्तराषाढायां शलस्य पक्षिण इदं शाल्यं मांसम् । श्वावित्तु शल्य इत्यमरः । अभिजिति हविष्यं मुद्गादि श्रवणे कृसरान्नं खिच्चडिका धनिष्ठायां मुद्गौदनं शतभे यवानां यवपिष्टं पूर्वाभाद्रपदायां मत्स्यान्नं मत्स्यमिश्रितमोदनम् उत्तराभाद्रपदायां चित्रान्नं चित्रवर्णमोदनम् रेवत्यां दध्यन्नं दधिभक्तमिति । नारदः । कुल्माषांश्च तिलान्माषान्दधि गव्यं घृतं पयः । मृगमांसं च तत्सारं पायसं चाषकं मृगम् ॥ शशमांसं च षाष्टिक्यं प्रियंगुकमपूपकम् । चित्रांडजान् फलं कूर्मं सारीं गोधां च शल्यकम् ॥ हविष्यं कृसरान्नं च मुद्गान्नं यवपिष्टकम् । मत्स्यान्नं चित्रितान्नं च दध्यन्नं दस्रभात् क्रमादिति । गुरुः । अलभ्या लभ्या भक्ष्या वा स्मृत्वा स्पृष्ट्वाथ तान्व्रजेत् । गत्वा सिद्धिमवाप्नोति दुष्टभादिषु भूपतिः । दोहदेषु ग्रंथांतरे भेदस्तत्र विकल्पो ज्ञेयः ॥ ८५ ॥

अथ दिग्दोहदमनुष्टुभाह—

आज्यं तिलौदनं मत्स्यं पयश्चापि यथाक्रमम् ॥
भक्षयेद्दोहदं दिश्यमाशां पूर्वादिकां व्रजेत् ॥ ८६ ॥

आज्यमिति ॥ आज्यं घृतं पूर्वस्याम् तिलमिश्रमोदनं दक्षिणस्याम् मत्स्यं पश्चिमायाम् पयो दुग्धमुत्तरस्याम् । दिशि भवं दिश्यं एतद्दोहदं भक्षयेत् । ततः पूर्वाद्यामाशां व्रजेत् ॥ ८६ ॥

वारदोहदमनुष्टुभाह—

रसालां पायसं कांजीं शृतं दुग्धं तथा दधि ॥
पयोऽशृतं तिलान्नं च भक्षयेद्वारदोहदम् ॥ ८७ ॥

रसालामिति ॥ रसाला शर्करा दधिमरीचकर्पूरैलासंस्पृष्टा लोके शिखरिणीति प्रसिद्धा तां रविवारे पायसं सोमवारे कांजी प्रसिद्धा तां भौमवारे शृतं पक्वदुग्धं बुधे दधि गुरौ अशृतं अपक्वदुग्धं शुक्रे तिलमिश्रमोदनं शनिवारे एतद्वारदोहदं रविवारादौ क्रमेण भक्षयेत् । स्याद्रसाला तु मार्जिकेत्यमरः ॥ ८७ ॥

अथ तिथिदोहदं वसंततिलकयाह—

पक्षादितोऽर्कदलतंडुलवारि सर्पिः
श्राणा हविष्यमपि हेमजलं त्वपूपम् ॥
भुक्त्वा व्रजेद्रुचकमंबु च धेनुमूत्रं
यावान्नपायसगुडानसृगन्नमुद्गान् ॥ ८८ ॥

पक्षादित इति ॥ पक्षादितः प्रतिपदमारभ्य पंचदशतिथिषु क्रमेण तिथिदोहदं

Aho ! Shrutgyanam

भुक्त्वा व्रजेत् । यथा । प्रतिपदि अर्कस्य प्रसिद्धस्य दलानि पर्णानि द्वितीयायां तंडुलवारि प्रक्षालिततंडुलजलम् तृतीयायां सर्पिर्घृतम् चतुर्थ्यां श्राणा यवागूः पंचम्यां हविष्यान्नं मुद्रादि षष्ठ्यां हेमजलं प्रक्षालितसुवर्णजलम् सप्तम्यां अपूपम् अष्टम्यां रुचकं बीजपूरफलम् । रुचको मातुलिंगक इत्यमरः । नवम्यां अंबु जलम् दशम्यां धेनुमूत्रम् एकादश्यां यवान्नं यवविकारम् द्वादश्यां पायसम् त्रयोदश्यां गुडमिक्षुविकारम् चतुर्दश्यामसृक् रुधिरम् पंचदश्यामन्नमुद्गान् अन्नमिश्रितमुद्गान् । गुरुः । अर्कपत्रं भवेद्यातुः प्रथमायां तु भक्षणम् । द्वितीयायां भवेद्यातुर्भक्ष्यं सत्तंडुलोदकम् ॥ तृतीयायां तथा सर्पिर्यवागूः स्यात्ततः परम् । पंचम्यां तद्धविष्यं स्यात्षष्ठ्यां वा कांचनोदकम् ॥ अपूपभुक्तिः सप्तम्यामष्टम्यां बीजपूरकम् । नवम्यां तोयपानं स्याद्गोमूत्रं तु ततः परम् ॥ एकादश्यां यवानद्याद्द्वादश्यां पायसं भवेत् । त्रयोदश्यां गुडं लेह्यं रुधिरं स्याच्चतुर्दशे ॥ मुद्गौदनं भवेद्भोज्यं पंचदश्यां यियासतः । पक्षयोरुभयोरेवं यात्रायोगे विधिः स्मृत इति । अत्र दुष्टभादिषु दोहदभक्षणेन दोषापाकरणं युक्तं विधिकरणं तु व्यर्थमिति चेन्न । आवश्यकगमने महादोषाणामपि पारिघदंडविरुद्धताराक्रूरसाहित्यादीनां दोषवारणाय दोहदोक्तेः सार्थक्यात् । एवं विहिततिथिदोहदाभिधानं योगिन्यादिदोषनाशार्थम् वारदोहदोक्तिरपि वक्रिग्रहवासरवारशूलादिदोषहान्या सार्थिका ॥ ८८ ॥

अथ गमनसमये विधिं प्रहर्षिण्याह–

उद्धृत्य प्रथमत एव दक्षिणांघ्रिं
द्वात्रिंशत्पदमभिगत्य दिश्ययानम् ॥
आरोहेत्तिलघृतहेमताम्रपात्रं
दत्त्वादौ गणकवराय च प्रगच्छेत् ॥ ८९ ॥

उद्धृत्येति ॥ राजा गमनसमय एव प्रथमतो दक्षिणांघ्रिं दक्षिणचरणमुद्धृत्य पश्चाद्द्वात्रिंशत्पदपरिमितां भूमिं गत्वादिश्ययानं वक्ष्यमाणं हस्त्यादियानमारोहेत् । तिलेति । आरोहणसमये एव च तिलघृतहेमसहितं ताम्रपात्रमादौ गणकवराय ज्योतिर्विच्छ्रेष्ठाय च चकारादन्येभ्योऽपि ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दानं दत्त्वा प्रगच्छेत् ॥ ८९ ॥

अथ दिश्ययानमनुष्टुभाह–

प्राच्यां गच्छेद्गजेनैव दक्षिणस्यां रथेन हि ॥
दिशि प्रतीच्यामश्वेन तथोदीच्यां नरैर्नृपः ॥ ९० ॥

प्राच्यामिति ॥ नरैर्नरवाह्यैः सुखासनादिभिः अन्यत् स्पष्टार्थम् ॥ ९० ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ निर्गमस्थानानि पादाकुलकच्छंदसाह—

देवगृहाद्वा गुरुसदनाद्वा स्वगृहान्मुख्यकलत्रगृहाद्वा ॥
प्राश्य हविष्यं विप्रानुमतः पश्यन् शृण्वन्मंगलमेयात् ॥ ९१ ॥

देवगृहादिति ॥ देवगृहाद्देवपूजागृहात् गुरोरध्यापकस्य गृहात्कुलगुरोर्वा स्वगृहात् स्वशयनगृहात् बहुस्त्रीत्वसंभवे मुख्यकलत्रं पट्टराज्ञी तद्गृहाद्वा हविष्यं प्राश्य भक्षयित्वा विप्रैर्ब्राह्मणैरनुमतः मंगलद्रव्यं मनोभीष्टं पश्यन् शृण्वन् सन् एयात् गच्छेत् ॥ ९१ ॥

अथ प्रस्थानवस्तूनि वर्णक्रमात् प्रहर्षिण्याह—

कार्याद्यैरिह गमनस्य चेद्विलंबो भूदेवादिभिरुपवीतमायुधं च ॥
क्षौद्रं चामलफलमाशु चालनीयं सर्वेषां भवति यदेव हृत्प्रियं वा ९२

कार्याद्यैरिति ॥ किंचिदावश्यकं कार्यं माभूदिति चेद्गमनस्य विलंबः स्यात्तदा विधारितयात्रालग्ने ब्राह्मणादिभिरेतानि वस्तूनि आशु चालनीयानि । यथा ब्राह्मणेनोपवीतं क्षत्रियेणायुधं वैश्येन मधु शूद्रेणामलफलं नारिकेलादि । राजमार्तंडः । प्रस्थाने ब्राह्मणादीनां यज्ञसूत्रमथायुधम् । मध्वामलफलं चैव प्रशस्तं वृद्धिकारणमिति । वाऽथवा सर्वेषां वर्णानां यदेव हृत्प्रियं मनोभीष्टं तदेव प्रस्थापनीयम् । वसिष्ठः । श्वेतातपत्रध्वजचामरांश्च विभूषणोष्णीषगजांबराणि । आंदोलिकारत्नरथाश्ववारान् शय्यासनाद्यं मनसस्त्वभीष्टमिति ॥ ९२ ॥

अथ प्राच्यमतेन प्रस्थानपरिमाणं मंदाक्रांतयाह—

गेहाद्गेहांतरमपि गमस्तर्हि यात्रेति गर्गः
सीम्नः सीमांतरमपि भृगुर्बाणविक्षेपमात्रम् ॥
प्रस्थानं स्यादिति कथयतेऽथो भरद्वाज एवं
यात्रा कार्या बहिरिह पुरात्स्याद्वसिष्ठो ब्रवीति ॥ ९३ ॥

गेहादिति ॥ स्वगृहात्परगृहमतिसमीपवर्त्यपि तत्रापि चेद्गमः स्यात्तर्हि यात्रा जातेति गर्गः कथयते । अथवा स्वसीमामुल्लंघ्य सीमांतरं ग्रामांतरसीमां प्राप्य वसेदिति भृगुः कथयते । अथवा महता योद्धा स्वबलेन क्षिप्यमाणशरो यावद्दूरं गच्छति तावन्मात्रं प्रस्थानं स्यादिति भरद्वाजः कथयते । अथवा पुरात् नगरात् बहिः यात्रा कार्येति वसिष्ठः कथयते ॥ ९३ ॥

अथ मुनिमतेन प्रस्थानपरिमाणं वसंततिलकयाह—

प्रस्थानमत्र धनुषां हि शतानि पंच
केचिच्छतद्वयमुशंति दशैव चान्ये ॥

Aho ! Shrutgyanam

संप्रस्थितो य इह मंदिरतः प्रयातो
गंतव्यदिक्षु तदपि प्रयतेन कार्यम् ॥ ९४ ॥

प्रस्थानमत्रेति ॥ धनुःप्रमाणं चतुःकराः तादृशानां धनुषां पंचशतानि हस्तसहस्रद्वयमिति यावत् । स्वगृहात्तावद्धस्तेषु प्रस्थानं स्यादिति केचिदूचुः अन्ये तु तादृशानां धनुषां शतद्वयं अष्टौ शतानि हस्तास्तावत्प्रस्थानमित्याहुः । अपरे तु इह यात्राकाले मंदिरतः स्वगृहाद्दशैव धनूंषि चत्वारिंशद्धस्तास्तावद्दूरप्रास्थितः प्रयातः एवं ज्ञेयमित्याहुः । प्रस्थानं धनुषां पंचशतान्युत शतद्वयम् । स्वदेवसदनाद्वापि दशभिः प्रस्थितो द्रुत इति वसिष्ठोक्तेः । गंतव्यदिक्ष्विति तदपि प्रस्थानं प्रयतेन सावधानेन राज्ञा गंतव्यदिक्षु यस्यां दिशि गमनं चिकीर्षितं तद्दिगभिमुखं कार्यम् । गंतव्यदेशाभिमुखे प्रदेशे प्रस्थानमाहुः शुभदं नराणामिति राजमार्तंडोक्तेः ॥ ९४ ॥

अथान्यदपि स्रग्धरयाह—

प्रस्थाने भूमिपालो दशदिवसमभिव्याप्य नैकत्र तिष्ठे-
त्सामंतः सप्तरात्रं तदितरमनुजः पंचरात्रं तथैव ॥
ऊर्ध्वं गच्छेच्छुभाहेऽप्यथ गमनदिनात्सप्तरात्राणि पूर्वं
चाशक्तौ तद्दिनेऽसौ रिपुविजयमना मैथुनं नैव कुर्यात् ॥९५॥

प्रस्थाने भूमिपाल इति ॥ भूमिपालो राजा प्रस्थाने दशदिवसमभिव्याप्य दशाहोरात्राणि न वसेत् । सामंतो मांडलिकश्चतुर्द्वारिकः एकत्र प्रस्थाने सप्तरात्रं न वसेत् । तदितरमनुजो ब्राह्मणादिस्तथैव एकत्र प्रस्थाने पंचरात्रं न वसेत् । यदि दैवाद्वसेत्तदा किं कुर्यादित्यत आह । ऊर्ध्वमिति अवधिदिवसातिक्रमानंतरं पुनर्गेहमागत्य शुभाहे पूर्वोक्तप्रकारेण विचारिते शुभदिवसे गच्छेत् । क्वचिद्दिग्विशेषेण प्रस्थाने दिवसनियमोऽभिहितः । राजमार्तंडः । प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदंति सप्त याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पंच । त्रीण्येव पश्चिमदिशि क्षितिनायकानां प्रस्थानकेषु दिवसद्वयमुत्तरस्यामिति । अथ प्रस्थानकर्तुर्नियममाह । अथेति असौ राजादिः रिपुविजयमनाः शत्रुजयकृतांतःकरणो यात्रादिनात्पूर्वं सप्तरात्राणि मैथुनं संभोगं नैव कुर्यात् । च्यवनः । त्रिरात्रं वर्जयेत्क्षीरं पंचाहं क्षुरकर्म च । तदहश्चावशेषाणि सप्ताहं मैथुनं त्यजेत् । वा अथवा अशक्तौ सप्ताहमतिकामितया स्थातुमशक्तौ तद्दिने यात्रादिवसे मैथुनं नैव कुर्यात् । गर्गः । यात्राकाले तु संप्राप्ते मैथुनं यो निषेवते । रोगार्तः क्षीणकोशश्च स निवर्तेत वा नवेति । यदा तु प्रयाणदिने स्त्री ऋतुस्नाता भवति गमने चावश्यकता तत्र निर्णयमाह । च्यवनः । आत्ययिककार्यपाते पुष्पस्नातासमागमं कृत्वा । मुदितो गच्छेल्लभते मनोरथानचिरकालेनेति । यदा पुनर्गमनार्थं कालांतरमस्ति तदा तद्दिने मैथुनं कृत्वा कालांतरे सुलग्ने यायादित्यर्थसिद्धम् ॥ ९५ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अन्यदपि शालिन्याह—

दुग्धं त्याज्यं पूर्वमेव त्रिरात्रं क्षौरं त्याज्यं पंचरात्रं च पूर्वम् ॥
क्षौद्रं तैलं वासरेऽस्मिन्वमिश्च त्याज्यं यत्नाद्भूमिपालेन नूनम् ॥९६॥

दुग्धमिति ॥ यात्रादिनात्पूर्वं भूमिपालेन राज्ञोपलक्षणत्वात् गमनकर्त्रा यत्नात् दुग्धं पेयत्वेन त्रिदिनं त्याज्यम् । न तु द्रव्यत्वेन तद्विकारः पायसं च निषिद्धम् । च पुनः पंचरात्रं पूर्वं क्षौरं क्षुरसंबंधि कृत्यं मुंडनं श्मश्रुकर्म च त्याज्यम् । अस्मिन्वासरे यात्रादिने क्षौद्रं मधु भक्ष्यत्वेन तैलं तैललापनं त्याज्यम् । वमिश्चेद्दैवोद्भूता शरीरशोधनार्थं बलात्कारकृता वा यात्रादिने निषिद्धा ॥ ९६ ॥

अन्यदपि गीत्याह—

भुक्त्वा गच्छति यदि चेत्तैलगुडक्षारपक्कमांसानि ॥
विनिवर्तते स रुग्णः स्त्रीद्विजमवमान्य गच्छतो मरणम् ॥९७॥

भुक्त्वेति ॥ यदि तैलपक्कानि वटकादीनि गुडमिक्षुविकारम् क्षारं सलवणम् पक्कमांसानि यो भुक्त्वा गच्छति स राजातिरुग्णो रोगसहितो विनिवर्तते । गर्गः । कटुतैलगुडक्षारं पक्कमांसाशनं तथा । भुक्त्वा यो यात्यसौ मोहाद्व्याधितः सन्निवर्तत इति । मांसदुग्धादिनिषेधो दोहदव्यतिरिक्तविषयः । स्त्रीद्विजमिति स्त्री च द्विजश्च तयोः समाहारः स्त्रीद्विजं अवमान्य धिकूशब्दताडनादिना मानभंगं कृत्वा गच्छतः पुंसो मरणं स्यात् । गर्गः । यस्तु संप्रस्थितो यात्रां भार्यां नैवाभिनंदति । भार्या वा नाभिनंदेत न स प्रतिनिवर्तते ॥ परकीयां स्वकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव च । ताडयित्वा तु यो मोहात्तदंतं तस्य जीवितम् ॥ यात्रायां प्रस्थितो यस्तु ब्राह्मणानवमानयेत् । नासौ प्रतिनिवर्तेत तदंतं तस्य जीवितम् ॥ केचिच्छुभाशुभशब्दान्यात्राकाले शुभाशुभसूचकानाहुः । लल्लः । प्रापय गच्छ विसर्जय निर्गच्छ व्रज सरेति सिद्धिकराः । खल्वेतेष्वप्यधिका प्रमोदजयजीवशब्दाश्च ॥ मागास्तिष्ठ निवर्तय क्व गम्यते मूढ दुर्मते मोहात् । यात्रां नेच्छंति बुधाः क्षुतकासितभीतशब्दैश्चेति । कासितं रोगार्तध्वनिर्हिक्कादिः ॥ ९७ ॥

अथाकालवृष्ट्याख्यदोषं वसंतमालिकयाह—

यदि मा:सु चतुर्षु पौषमासादिषु वृष्टिर्हि भवेदकालवृष्टिः ॥
पशुमर्त्यपदांकिता न यावद्वसुधा स्यान्न हि तावदेव दोषः ॥ ९८ ॥

यदीति ॥ पौषमाघफाल्गुनचैत्रेषु चतुर्षु मासेषु यदि वृष्टिर्भवेत्साऽकालवृष्टिः । पौषादिचतुरो मासान् प्राप्ता वृष्टिरकालजेति वचनात् । तत्राकालवृष्ट्यां जातायां यदि वसुधा पृथ्वी यावत् पशवो गवादयः मर्त्या मनुष्यास्तेषां पदैश्चरणैरङ्किता चिह्निता न भवति तावदकालवृष्टेर्दोषो नास्ति यदि पशुचरणांकिता स्यात्तदा दोषोऽस्त्येव । अत्र प्राच्या अल्पवृष्टौ

Aho ! Shrutgyanam

कर्दमादिबाहुल्यात् अत्यल्पावृष्टिर्दोषाय न महतीति वदंति तत्र बहुवृष्ट्या कर्दमापाकरणात् तन्न । सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा । पूर्वाषाढागते चंद्रे गर्भाणां धारणं भवेदिति कश्यपोक्तेर्मार्गादिमासा गर्भग्रहणकालस्तत्र वृष्टिरावश्यकी । यदाह वराहः । पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः स भवति बहुतोयः पंचरूपस्तु मेघ इति ॥ ततश्च गर्भग्रहणयोग्या अल्पा वृष्टिर्न दोषदा महती वृष्टिस्तु गर्भगलनम् । यतो वराहेणोक्तम् । गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय निमित्तकृतेति । निमित्तं शुक्रास्तादिकम् सा गर्भगलनरूपा विकृतिः विद्युतोपचीयमाना महांतं दोषमुपजनयति । एतावता महावृष्टेरेव दोषवत्त्वम् । अत एव । भृशं क्षरंतो जलदा न शस्ता इति बृहद्यात्रायामुक्तम् । तस्मादत्यल्पायामकालवृष्टौ दोषाभावः । अल्पायां त्वल्पदोषः महत्यां तु महादोष इति । स च सप्तरात्रिक इत्युक्तं प्राक् । एकैकमहः प्रोक्तं द्वितीयेन त्रिरात्रकम् । तृतीयेन तु पंचाहं दशरात्रमतः परम् ॥ पौषे तु त्रिदिनं वर्ज्यं माघमासे दिनद्वयम् । फाल्गुने दिनमेकं तु चैत्रे तु घटिकाद्वयमिति तु आवश्यककार्यविषयम् ॥ ९८ ॥

पूर्वोक्तमेवार्थं स्पष्टीकुर्वन्नावश्यकयात्रायां तच्छांतिकं दुष्टशकुनशांतिकं चातिशक्र्या गाथाछंदसाह—

अल्पायां वृष्टौ दोषोऽल्पो भूयस्यां दोषो भूयान्
जीमूतानां निर्घोषे वृष्टौ वा जातायां भूपः ॥
सूर्येंद्वोर्बिंबे सौवर्णे कृत्वा विप्रेभ्यो दद्याद्दुःशा-
कुन्ये साज्यं स्वर्णं दत्वा गच्छेत्स्वेच्छाभिः ॥ ९९ ॥

अल्पायामिति ॥ स्पष्टार्थं प्रथममर्धम् । अतो यत्प्राच्याः पठंति । तावत्प्रयाणादिषु भूपतीनामकालवृष्टिः प्रकरोति दोषम् । यावद्भवेत्संचरतां जनानां तथा पशूनां चरणांकिता भूरिति तन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम् । स्वयं प्रस्थाने सति मार्गमध्ये नास्त्ययं दोषः । आवश्यकयात्रायां दानमाह जीमूतानामिति । जीमूतानां मेघानां निर्घोषे शब्दे अकालवृष्टौ वा जातायां सूर्येंद्वोर्यथाशक्त्या सौवर्णे सुवर्णनिर्मिते बिंबे कृत्वा भूपो राजा ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्ततः स्वेच्छया गच्छेत् । प्रसंगाद्दुष्टशकुनानां दानमाह । दुःशाकुन्य इति ॥ शकुनस्य भावः शाकुन्यं दुष्टं च तच्छाकुन्यं च दुःशाकुन्यं तस्मिन्दुष्टे शकुने प्रस्थानकाले संभूते सति साज्यं सघृतं स्वर्णं विप्रेभ्यो दत्वा स्वेच्छाभिर्गच्छेत् ॥ ९९ ॥

अथ शुभसूचकान् शकुनान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्मांबरं
वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम् ॥

Aho ! Shrutgyanam

सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशश्छत्राणि मृत्कन्यका
रत्नोष्णीषसितोक्षमद्यससुतस्त्रीदीप्तवैश्वानराः ॥ १०० ॥

विप्राश्वेति ॥ विप्रा बहवो द्वौ वा न त्वेकः अश्वः प्रसिद्धः इभो हस्ती अनुन्मत्तः फलान्नदुग्धदधीनि प्रसिद्धानि गौः धेनुः सिद्धार्थः सर्षपः पद्मं कमलं अंबरं वस्त्रं स्वच्छं वेश्या गणिका वाद्यं मर्दलादि मयूरचाषौ पक्षिणौ नकुलः प्रसिद्धः बद्धैकपशुः रज्ज्वादिबद्धो वृषादिः आमिषं मांसम् सद्वाक्यं कार्यसिद्धिरस्त्वित्याकिदं कुसुमानि चंपकादीनि इक्षुः प्रसिद्धः सकलः न तु खंडितः जलपूर्णकलशः संमुखः छत्रं प्रसिद्धम् मृत्तिका कन्या कुमारी रत्नं माणिक्यादि उष्णीषं शिरोवेष्टनम् सितोऽक्षः श्वेतवृषः अयमबद्धोऽपि मद्यं प्रसिद्धम् ससुतस्त्री सपुत्रा स्त्री दीप्तो जाज्वल्यमानोऽग्निरिति ॥ १०० ॥

अन्यच्छार्दूलविक्रीडितेनाह—

आदर्शांजनधौतवस्त्ररजका मीनाज्यसिंहासनं
शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम् ॥
भारद्वाजनृयानवेदनिनदा मांगल्यगीतांकुशा दृष्टाः
सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तो घटः स्वानुगः ॥ १०१ ॥

आदर्शांजनेति ॥ आदर्शो दर्पणं अंजनं कज्जलम् धौतवस्त्र उज्ज्वलीकृतवस्त्रो रजकः वस्त्रनिर्णेक्ता मीनो मत्स्यः आज्यं घृतं सिंहासनं देवादेः शवमेव शावं मृतकं पृष्ठगामिलोकरोदनरहितम् ध्वजः पताका मधु क्षौद्रम् छागो मेषः अस्त्रं धनुरादि गोरोचनं प्रसिद्धम् भारद्वाजः पक्षी नृयानं सुखासनादि वेदनिनादो वेदध्वनिः मांगल्यं प्रसिद्धम् गीतं गानम् अंकुशो हस्तिनिवारणार्थमस्त्रम् एते पदार्थाः गंतुर्भूपतेः प्रयाणसमये संमुखं दृश्यमानाः सत्फलदाः शुभफलदाः । तथा रिक्तो जलरहितो घटः कुंभः स्वानुगः स्वस्य पश्चाद्भागगामी सोऽपि शुभफलदः । कश्यपः । कार्यसिद्धिर्भवेद्दृष्टे शवे रोदनवर्जिते । प्रवेशे रोदनयुतः शवः स्यादशिवप्रदः ॥ वसंतराजः । आदाय रिक्तं कलशं जलार्थी यदि व्रजेत्कोऽपि सहाध्वगेन । पूर्णं समादाय निवर्ततेऽसौ यथा कृतार्थः पथिकस्तथैवेति । अथ कैश्चिल्लग्नवशेन शकुना उक्ताः । लग्ने वाक्पतिशुक्राणां ब्राह्मणाः संमुखाः स्त्रियः । बुधशुक्रौ च केंद्रस्थौ सवत्सा गौः प्रदृश्यते ॥ चंद्रः सूर्यश्च भवति दशमस्थो यदाथवा । दीपादर्शौ सुमनसौ रजका धौतवाससः ॥ सुतस्थाने यदा सौम्यो वृषो बद्धस्तु संमुखः । चंद्रो गुरुश्च सहजे श्वानो वामांगभागतः ॥ सर्वे कर्मायनवमे भारद्वाजोऽथ नाकुलः । चाषस्य दर्शनं वा स्याद्वामांगेऽत्यंतदुर्लभम् ॥ आदित्यो राहुसौरी च सहजस्थौ कुमारिका । प्रौढानां सुभगानां वा दर्शनं सर्वकामदम् ॥ षष्ठे तृतीये कर्मांये भौमश्चेत्तत्फलं भवेत् । दास्यो वेश्याः सुरा मांसं लाभश्चैव सुनिश्चितः ॥ सप्ताष्टपंचमे यस्य जीवो ज्ञो वा प्रवर्तते । आ-

Aho ! Shrutgyanam

दर्शपुष्पमांसानि सुरादर्शश्च लाभदः ॥ राहुर्भौमश्च मंदश्च लग्नाद्यदि तृतीयगाः । उद्धृतं गोमयं पश्येच्छीघ्रं लाभधनं दिशेत् ॥ इत्यादयः शकुनाः शकुनग्रंथेभ्यो ज्ञेया विस्तरभयादिह नोक्ताः ॥ १०१ ॥

अथापशकुनान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वंध्या चर्म तुषास्थि सर्पलवणांगारेंधनक्लीबविट्-
तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राट्तृणव्याधिताः ॥
नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिता व्यंगक्षुधार्ता असृक्
स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम् ॥ १०२ ॥

वंध्येति ॥ वंध्या प्रसिद्धा चर्म प्रसिद्धम् तुषं धान्यादितुषम् अस्थि सर्पलवणानि प्रसिद्धानि अंगारो निर्धूमोऽग्निपिंडः इंधनं पाकयोग्यम् क्लीबः षंढः विट् उद्धृता विष्ठा । अस्त्री विष्ठाविशौ स्त्रियावित्यमरः । तैलं प्रसिद्धम् उन्मत्तो मद्यभूताद्यावेशवान् वसा शरीरांतर्धातुविशेषः औषधं प्रसिद्धम् अरिः शत्रुः जटिलो जटावान् प्रव्राट् संन्यासी तृणं प्रसिद्धम् व्याधितोऽचिकित्स्यव्याधिमान् नग्नः अपरिहितवस्त्रः कुमारव्यतिरिक्तः अभ्यक्तः कृततैलाभ्यंगोऽस्नातः विमुक्तकेशः असंयतकेशः पतितो मद्यपानाद्यभिशापवान् द्विजः व्यंगश्छिन्ननासिकादिः क्षुधार्तः क्षुत्पीडितः असृक् रुधिरम् स्त्रीणामृतुः सरठः कृकलासः स्वगेहदहनं स्वगेहदाहः मार्जारयुद्धं प्रसिद्धम् क्षुतं छिक्का ॥ १०२ ॥

अन्यदपि शार्दूलविक्रीडितेनाह—

काषायी गुडतक्रपंकविधवाकुब्जाः कुटुंबे कलिर्व-
स्त्रादेः स्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च ॥
कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरुट् गर्भिणी
मुंडार्द्रांबरदुर्वचोंऽधबधिरोदक्या न दृष्टाः शुभाः ॥ १०३ ॥

काषायीति ॥ काषायो रागविशेषः तेन रक्तं वस्त्रं काषायं तद्वान् गुडतक्रे प्रसिद्धे पंकः कर्दमः विधवाकुब्जौ प्रसिद्धौ कुटुंबे कलिः पुत्रादिभिः कलहः वस्त्रादेः स्खलनं आदिशब्देन कमंडलुछत्रादेः स्खलनं मिर्निमित्तं स्वहस्तात्पतनम् लुलाया महिषास्तेषां समरं युद्धम् कृष्णवर्णानि धान्यानि माषादीनि कार्पासं तूलम् वमनं वांतम् दक्षे दक्षिणभागे गर्दभशब्दः अतिरुट् क्रोधाधिक्यम् गर्भिणी गर्भवती मुंडो मुंडितशिरस्कः आर्द्रांबरः आर्द्रवस्त्रः दुर्वचः स्वमुखोत्थं परमुखोत्थं वा दुष्टवाक्यम् अंधबधिरौ प्रसिद्धौ उदक्या रजस्वला स्त्री एते पदार्थाः गंतुः पुंसः यानसमये दृष्टाः संतो न शुभाः किंतु अशुभफलदाः । नारदः । सर्वदिक्षु क्षुतं नेष्टं गोक्षुतं मरणप्रदम् । अफलं तच्छ्रुतं वाक्यं वृद्धपीनसकैतवैरिति । औषधे वाहनारोहे विवादे शयनेऽशने । विद्यारंभे बीजवापे क्षुतं सप्तसु शोभनमिति ॥ १०३ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अन्याञ्छकुनान् शार्दूलविक्रीडितेनाह–

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं नो
शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्ययः ॥
नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे व्यत्यस्ताः
शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिताः शोभनाः ॥ १०४ ॥

गोधाजाहकेति ॥ गोधा प्राणिविशेषः गोह इति भाषया । जाहको गात्रसंकोची प्राणिविशेषः सूकरः प्रसिद्धः अहिः सर्पः शशकः प्रसिद्धः यानसमये एषां गोधादीनां कीर्तनं स्वमुखेनान्यमुखेन वोच्चारणं शुभम् । न पुनरेतेषां गोधादीनां शब्दो रुतं अथवा विलोकनं दर्शनं शुभं निषिद्धमित्यर्थः । कपिऋक्षाणां कपीनां वानरादीनां ऋक्षाणां भल्लुकादीनां अतो गोधादिभ्यो व्यत्ययो ज्ञेयः । यथा वानराणां भल्लुकानां कीर्तनं निषिद्धम् तेषामेव दर्शनं शब्दितं वा न निषिद्धम् शुभमित्यर्थः । नद्युत्तार इति । नद्या गंगादेरुत्तारणे भये भयसंबंधिनि कार्ये पलायनादिके प्रवेशे गृहप्रवेशे समरे संग्रामे नष्टार्थस्य नष्टद्रव्यस्य संवीक्षणे गवेषणे प्रागुक्ताः शकुनाः व्यत्यस्ता विपरीता ज्ञेयाः । शुभशकुना विप्राश्वेत्यादयोऽशुभा ज्ञेयाः । वंध्याचर्मेत्याद्यशुभशकुनाः शुभफलदा ज्ञेयाः । नृपेति । नृपदर्शनार्थं गमने यात्रायामुदिता विप्राश्वेत्यादयः शकुनाः शुभा ज्ञेयाः । नृपावलोके शकुनः प्रयाणवदित्युक्ते राजदर्शनस्य भयस्थानत्वाद्विप्राश्वेत्यादीनामपशकुनत्वप्राप्तौ तदपवादोऽयम् ॥ १०४ ॥

अथान्यदप्यनुष्टुभाह–

वामांगे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला ॥
पिंगला छुछुका श्रेष्ठा शिवा पुरुषसंज्ञिताः ॥ १०५ ॥

वामांगे इति ॥ कोकिलापल्ल्यौ प्रसिद्धे पोतकी दुर्गा सूकरी जात्यचटका रला पक्षिविशेषः । पिंगला भैरवी छुछुका छुछुंदरी शिवा सृगाली पुरुषसंज्ञिताः पुंनामानः कपोतखंजनतित्तिरिहंसादयः एते गच्छतां राजादीनां वामांगे शरीरवामभागे शस्ताः स्युः॥१०५॥

अन्यदप्यनुष्टुभाह–

छिक्करः पिक्को भासः श्रीकंठो वानरो रुरुः ॥
स्त्रीसंज्ञकाः काकऋक्षश्वानः स्युर्दक्षिणाः शुभाः ॥ १०६ ॥

छिक्कर इति ॥ छिक्करो मृगजातिः पिक्कः पक्षिविशेषः भासः श्रीकंठः वानरः एते प्रसिद्धाः रुरुर्मृगविशेषः स्त्रीसंज्ञकाः स्त्रीनामानो मृगपक्षिणः दक्षिणभागगाः शुभाः शेषाः प्रसिद्धाः ॥ १०६ ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथोक्तव्यतिरिक्तानां मृगपक्षिणां सामान्यतः प्रादक्षिण्येन शकुनमनुष्टुभाह-

प्रदक्षिणगताः श्रेष्ठा यात्रायां मृगपक्षिणः ॥
ओजा मृगा व्रजंतोऽतिधन्या वामे खरस्वनः ॥ १०७ ॥

प्रदक्षिणगता इति ॥ रुरुव्यतिरिक्तमृगाः पक्षिणश्च यात्रायां प्रादक्षिण्येन गताश्चलिताः श्रेष्ठाः शुभफलदाः स्युः परंतु ओजा मृगा विषमसंख्यास्त्रिपंचसप्तादयश्चेद्व्रजंतो दृष्टास्तदाऽतिधन्याः स्युः । वामे इति स्ववामभागे खरस्वनो गर्दभशब्दोऽतिधन्यः । अथ शकुनानां कियतां कालविशेषैर्नैर्बल्यमाह । वराहः । न ग्रामेऽरण्यगो ग्राह्यो नारण्यो ग्रामसंस्थितः । दिवाचरो न शर्वर्यां न च नक्तंचरो दिवा ॥ द्वंद्वरोगार्दितस्तत्र कलहामिषकांक्षिणः । आपगांतरिता मत्ता न ग्राह्याः शकुनाः क्वचित् ॥ रोहिताश्वाजवालेयकुरंगोष्ट्रमृगाः शशाः । निष्फलाः शिशिरे ज्ञेया वसंते काककोकिलौ ॥ न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सूकराश्च वृकादयः । शरद्यृक्षादयः क्रौंचाः श्रावणे हस्तिचातकौ ॥ व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिमहिषाः सबिलेशयाः । हेमंते निष्फला ज्ञेया बालाः सर्वे विमानुषा इति । प्रभग्नशुष्कद्रुमकंटकीषु श्मशानभस्मास्थितुषाकुलेषु । प्राकारशून्यालयजर्जरीषु सौम्योऽपि पापः शकुनः प्रकल्प्यः ॥ दैवज्ञमनोहरे । वरं श्रयेद्दुर्जनकालसर्पौ वरं क्षिपेद्व्याघ्रमुखे स्वमंगम् । वरं तरेद्वारिनिधिं भुजाभ्यां नोल्लंघयेद्दुःशकुनं कदापि ॥ १०७ ॥

अथावश्यककार्ये विरुद्धशकुने जातेऽपि परिहारमनुष्टुभाह-

आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत् ॥
द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद्व्रजेत् ॥ १०८ ॥

आद्य इति ॥ आवश्यककार्ये विरुद्धशकुने जाते एकादश प्राणान् स्थित्वा एकादशप्राणपरिच्छेद्यं कालं स्थित्वेत्यर्थः । ततः समीचीने शकुने व्रजेत् । तत्रापि द्वितीये विरुद्धे शकुने संवृत्ते षोडशसंख्याकान् प्राणान् स्थित्वा शुभशकुने व्रजेत् । तत्रापि पुनस्तृतीये विरुद्धे शकुने संवृत्ते क्वचिदपि न व्रजेत् । किंतु परावृत्य गृहमागच्छेत् । दश गुर्वक्षरैः प्राण इति । कश्यपेन तु प्राणायामत्रयमेव प्रतीक्ष्यमित्युक्तम् । यायी विरुद्धं शकुनमादौ दृष्ट्वा प्रयत्नतः । प्राणायामत्रयं कुर्याद्द्वितीये द्विगुणं चरेत् ॥ तृतीये पुनरावृत्य शांत्या यायाद्दिनांतरे इति ॥ १०८ ॥

अथ यात्रानिवृत्तौ गृहप्रवेशमुपजात्याह-

यात्रानिवृत्तौ शुभदं प्रवेशनं मृदुध्रुवैः क्षिप्रचरैः पुनर्गमः ॥
द्वीशेऽनले दारुणभे तथोग्रभे स्त्रीगेहपुत्रात्मविनाशनं क्रमात् ॥ १०९ ॥

यात्रानिवृत्ताविति ॥ मृदूनि चित्रानुराधामृगरेवत्यः ध्रुवाणि रोहिण्युत्तराश्च एभिर्नक्षत्रैः राज्ञो यात्रानिवृत्तौ प्रवेशनं शुभदम् । क्षिप्रचरैर्नक्षत्रैः अश्विनीपुष्यहस्ताभि-

Aho ! Shrutgyanam

जिद्भिः श्रवणधनिष्ठाशततारापुनर्वसुस्वातीभिश्च प्रवेशने पुनरपि गमो यात्रा स्यात्। तस्मादेतानि मध्यमानि। द्वीशादिनक्षत्रेषु प्रवेशे क्रमात् स्त्र्यादीनां नाशः यथा विशाखायां प्रवेशे स्त्रिया राज्ञ्या नाशः। कृत्तिकायां प्रवेशे गृहं दग्धं स्यात्। दारुणभे मूलज्येष्ठाद्रार्श्लेषासु प्रवेशे पुत्रस्य नाशः उग्रभे पूर्वात्रयभरणीमघासु प्रवेशे आत्मनः स्वस्यैव राज्ञो नाशः स्यादित्यर्थः। लग्नादिविचारो गृहप्रवेशप्रकरणाज्ज्ञेयः। अत्रेदं विचार्यम्। यत्र मासे यात्रा कृता तन्मासान्नवमे मासि यात्रादिनान्नवमदिने च प्रवेशो न विधेयः। गुरुः। निर्गमान्नवमे मासि प्रवेशो नैव शोभनः। नवमे दिवसे चैव प्रवेशं नैव कारयेदिति ॥ १०९ ॥

अथ विवाहप्रकरणोक्तदोषातिदेशं प्रागुक्तदोषांश्च शिष्याणामविस्मरणार्थं मंजुभाषिण्याह—

अयनर्क्षमासतिथिकालवासरो-
द्भवशूलसंमुखसितज्ञदिक्पाः ॥
भृगुवक्रतादिपरिघाख्यदंडकस्त्र्यृतु-
जाद्यशौचमपि चोत्सवादिकम् ॥ ११० ॥

अयनर्क्षेति ॥ एते अयनशूलादयो दोषा विवाहप्रकरणोक्तदोषाश्च यात्रायां नेष्टाः। तत्रायनशूलः सौम्यायने सूर्यविधू तदोत्तरामिति मासोद्भवः शूलो द्विविधः ग्रंथांतरोक्तः वृषादित्रित्रिराशिष्वर्के प्राच्यादिदिक्षु न गंतव्यमित्येकः। कपाटकंटकादिश्च द्वितीयस्तु स्वरोदये। त्रयस्त्रयो वृषाद्याश्च पूर्वाशादि बुधैः क्रमात् ॥ राशयो द्वादशैवं तु मेषांताः सृष्टिमार्गगाः। यत्र पूर्वादिकाष्ठायां वृषराश्यादिगो रविः ॥ सा दिशास्तमिता ज्ञेया तिस्रः शेषाः सदोदिता इति। कपाटकंटकादिर्यथा। कपाटं पूर्वतो ज्ञेयं कार्तिकादित्रिकं तथा। नभस्यतो वास्तुमध्ये मधोरेकेन कंटक इति ज्योतिषार्कवचनात्। नक्षत्रशूलः। न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथेति। तिथिशूलः योगिनीनवभूम्य इति संमुखसितज्ञदिक्पाः संमुखः शुक्रः संमुखो बुधः संमुखो दिक्स्वामी ललाटी भृगुवक्रतादि आदिशब्दात् क्षीणत्वास्तमितत्वपराजितत्वबाल्यादिकम् वक्रास्तनीचेत्युक्तम् परिघाख्यदंडः पूर्वादिषु चतुर्दिक्ष्वित्युक्तः स्त्र्यृतुजाद्यशौचम् स्वस्त्रीऋतुजं आर्तवं स्नानकालपर्यंतम् अशौचं जननाशौचं मरणाशौचं च उत्सवो दीपोत्सवः आदिशब्देन विवाहव्रतबंधनादिरिति ॥ ११० ॥

अन्यदपि मंजुभाषिणीछंदसाह—

मृतपक्षरिक्तरवितर्कसंख्यका-
स्तिथयश्च सौरिरविभौमवासराः ॥
अपि वामपृष्ठगविधुस्तथाडलो
वसुपंचकाभिजिदथापि दक्षिणे ॥ १११ ॥

Aho ! Shrutgyanam

मृतपक्षेति ॥ मृतपक्षः तमोभुक्ततारा: स्मृता विश्वसंख्या इत्याद्युक्तः रिक्तरवितर्कसंख्यकाः चतुर्थीनवमीचतुर्दशीद्वादशीषष्ठयस्तिथयः उपलक्षणत्वादष्टमीपूर्णिमामावास्याशुक्लपक्षप्रतिपदः सौरिभौमरविवाराः वामपृष्ठगविधुः अजवृषभमिथुनकुलीरा इत्यादि जातकोक्त्या वामपृष्ठराशिगतः आडलो रवेर्भतोऽब्जभोन्मितिरिति भ्रमणमपि ज्ञेयम् । वसुपंचकं धनिष्ठोत्तरार्धात्पंच नक्षत्राणि अभिजिन्मुहूर्तश्च दक्षिणे वर्ज्यः एते पंचांगदोषाः ॥ १११ ॥

अथ लग्नदोषान् स्रग्धरयाह–

लग्ने जन्मर्क्षतन्वोर्मृतिगृहमहितर्क्षाच्च षष्ठं तदीशा
वा लग्ने कुंभमीनर्क्षनवलवतनूचापि पृष्ठोदयं च ॥
पृष्ठाशामृक्षसंस्थं दशमशनिरथो सप्तमे चापि काव्यः
केंद्रे वक्राश्च वक्रीग्रहदिवसविवाहोक्तदोषाश्च नेष्टाः ॥ ११२ ॥
इति मुहूर्तचिंतामणौ यात्राप्रकरणं समाप्तम् ॥

लग्ने इति ॥ जन्मराशेर्जन्मलग्नाद्वाऽष्टमगृहं अहितर्क्षाच्छत्रुजन्मराशेर्जन्मलग्नाद्वा षष्ठम् लग्ने यात्रालग्ने तदीशाः तेषां जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमभवनयोः स्वामिनः रिपुजन्मराशिजन्मलग्नाभ्यां षष्ठभवनयोः स्वामिनो वा कुंभमीनयोर्नवलवो नवांशो लग्नं च । पृष्ठोदया गोजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः पृष्ठोदया विमिथुना इत्युक्ताः पृष्ठाशासंस्थमृक्षं गंतव्यदिग्विलोमलग्नम् दशमे शनिः सप्तमे काव्यः शुक्रः केंद्रे वक्राः वक्रिणो ग्रहाः वक्रिग्रहवाराश्च एते दोषा विवाहोक्तदोषा उत्पातान् सहपातदग्धतिथिभिरित्याद्युक्तास्ते सर्वे यात्रायां वर्ज्याः । तत्र सप्तमशुक्रव्यतिरिक्तो जामित्रदोषो नास्तीति ज्ञेयम् ॥ ११२ ॥

इति प्रमिताक्षरायां यात्राप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ अथ वास्तुप्रकरणप्रारंभः ॥

अथ वास्तुप्रकरणं व्याख्यायते । गृहनिर्माणप्रयोजनं भविष्यपुराणे । गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिद्ध्यंति गृहं विना । यतस्तस्माद्गृहारंभप्रवेशसमयौ ब्रुवे ॥ गृहं स्वसत्ताकम् । न सिद्ध्यंति निष्फला भवंतीत्यर्थः । इत्येतन्मनस्यालोच्य ग्रामादिषु स्वस्य शुभाशुभं लाभालाभादिविचारं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

यद्भं द्व्यंकसुतेशदिङ्मितमसौ ग्रामः शुभो नामभा-
त्स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढ्यं गजैः शेषितम् ॥
काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकाः सोऽर्थ-
दोऽथद्वारं द्विजवैश्यशूद्रनृपराशीनां हितं पूर्वतः ॥ १ ॥

यद्भमिति ॥ नामभात् व्यावहारिकनामभात् व्यावहारिकनामराशेः यस्य ग्रामादेर्भं

Aho ! Shrutgyanam

राशिः स चेद्द्वितीयो नवमः पंचमः एकादशसंख्यो दशमश्च स्यात्तदासौ ग्रामः स्वस्य शुभः स्यात् । अन्यथा न शुभ इत्यर्थः । यथा नीलकंठराशेर्वृश्चिकाख्यात्पंचमो मीनराशिश्चरणाद्रेरतश्चरणाद्रिर्नीलकंठस्य वासयोग्यः । अत्र नामराशिरेव ग्राह्यः । काकिण्यां वर्गशुद्धौ च वादे द्यूते स्वरोदये । मंत्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानतेति । अथ ग्रामात्मनोरुत्तमर्णत्वमधमर्णत्वं चाह । स्ववर्गमिति वर्गास्तु । अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम् । सर्पाखुमृगावीनां निजपंचमवैरिणामष्टौ इत्युक्ताः । तत्र यस्य पुंसो यत्संख्याको वर्गो गरुडादिस्तद्वर्गसंख्यां द्विगुणां विधाय परस्य ग्रामादेर्वर्गसंख्ययाढ्यां च कृत्वा गजैरष्टभिः शेषितमवशिष्टं ताः पुंसः काकिण्यो ज्ञेयाः एवंग्रामादेरपि वर्गसंख्यां द्विगुणां कृत्वा परस्य पुंसो वर्गसंख्ययाढ्यां कृत्वा गजैर्भजेदवशिष्टाः ग्रामस्य काकिण्यो भवंति । एवमनयोः पुरुषग्रामयोः काकिणीनां विवराद्यस्याधिका अवशिष्यंते सोऽर्थदः परस्य लाभदः । यथा नीलकंठस्य वर्गः सर्पः तत्संख्या ५ द्विगुणा १० चरणाद्रिवर्गः सिंहः ३ तत्संख्यया युक्ता १३ गजभक्तावशेषं ५ नीलकंठस्य काकिण्यः एवं ग्रामवर्गसंख्या ३ द्विगुणा ६ नीलकंठवर्ग ५ संख्यया युक्ताः ११ अष्टभक्ता शेषं ३ ग्रामस्य काकिण्यः द्वयोरंतरशेषं २ नीलकंठस्याधिकत्वेन दातृत्वाद्द्रव्यहानिरित्यर्थः । उक्तं च । स्वं वर्गं द्विगुणीकृत्य परवर्गेण योजयेत् । अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेदिति । अथ द्वारवेशनमाह अथेति द्विजादिराशीनां पुंसां क्रमेण पूर्वतः प्राच्यादिदिक्चतुष्टये द्वारं हितम् । यथा । द्विजराशीनां कर्कवृश्चिकमीनानां पूर्वदिशि वैश्यराशीनां वृषकन्यामकराणां दक्षिणदिशि शूद्रराशीनां मिथुनतुलाकुंभानां पश्चिमदिशि नृपराशीनां मेषसिंहधनुषां उत्तरदिशि द्वारं हितम् ॥ १ ॥

अथ राशिपरत्वेन ग्रामविवासे निषिद्धस्थानानि वसंततिलकयाह–

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषांगनाश्च ॥
कर्कौ धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्वद्वर्गाः
स्वपंचमपरा बलिनः स्युरैंद्र्याः ॥ २ ॥

गोसिंहेति ॥ वस्तुमिष्टस्य ग्रामस्य वस्त्रविभागवन्नवधा विभागं कृत्वा मध्ये विभागे गोसिंहनक्रमिथुनं न निवसेत् वृषसिंहमकरमिथुनराशिमंतः पुरुषा न वसेयुः । अथ पूर्वककुभः पूर्वदिशातोऽष्टदिक्षु अलिर्वृश्चिकः तदादिराशिमंतः पुरुषा न वसेयुः । यथा । पूर्वस्यां वृश्चिकः आग्नेय्यां झषो मीनः दक्षिणस्यां कन्या नैर्ऋत्यां कर्कः पश्चिमायां धनुः वायव्यां तुला उत्तरस्यां मेषः ईशान्यां कुंभः न वसेदित्यर्थः । यथा । अवर्गः पूर्वस्याम् कवर्ग आग्नेय्याम् चवर्गो दक्षिणस्याम् टवर्गो नैर्ऋत्यात् तवर्गः पश्चिमायाम् पवर्गो वायव्याम् यवर्ग उत्तरस्याम् शवर्ग ईशान्याम् बली इत्यर्थः । कीदृशा वर्गाः स्वपंचमपराः स्वस्मात्पंचमः

Aho ! Shrutgyanam

परः शत्रुर्येषां ते । यस्य वर्गः पूर्वस्यां बली तेन पश्चिमायां द्वारं निवासो व विधेयः । एवं कवर्गादिभिर्द्विरपि वायव्यादौ द्वारं निवासो वा न विधेयः ॥ २ ॥

अथेष्टनक्षत्रायाभ्यां इष्टभूम्या विस्तारायामाविंद्रवज्रेंद्रवंशापूर्वार्धेनाह—

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्यो रूपोनितेष्टायहतेंदुनागैः ॥
युक्ता घनैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिंडः॥३॥

एकोनितेति । स्वेष्टायेति च ॥ तत्र राशिकूटादिकं सर्वं दंपत्योरिव चिंतयेदिति वसिष्ठोक्तेर्यदेव नक्षत्रं व्यवहारनाम्ना विवाहोक्तमेलापकविधिना शुभदं स्यात्तदेव स्वेष्टभं कल्प्यम् । यश्च ध्वजाद्यष्टायेषु विषम आय ईप्सितः स्यात्स एवेष्टायः कल्प्यः ताभ्यां विस्तारायामज्ञानम् । यथा नीलकंठस्यानुराधानक्षत्रं तस्य रोहिण्या सह मेलापकः संभवतीतीष्टभं रोहिणी कल्पितम् तत्संख्या ४ एकोनितेष्टर्क्षं ३ अनेन द्वितिथ्यो १५२ हताः ४५६ इष्टायः सिंहः कल्पितः तृतीयः रूपोनित इष्टायः २ अनेनेंदुनागाः ८१ गुणिताः १६२ तैर्युताः ६१८ घनैश्च १७ युताः ६३५ भूपाश्विभि २१६ विभक्तः २०३ इदमेव क्षेत्रफलं गृहस्य इष्टायनक्षत्रभवम् । अथ कल्पितदैर्घ्यं २९ अनेन भक्तो लब्धो विस्तारः ७ अथ कल्पितविस्तृतिः ७ भक्तो लब्धदैर्घ्यं २९ अत्र गोपिराजाचार्यकृतं सूत्रम् । विष्णुं व्येकायगोभू १९ हतिभयुजि फलं गोपिराजो भशेषात्सायं वाहाष्टिदृग्घ्नेष्ट २१६ युतमहि-८ हता दृक् २ प्रकृत्या २१ ख्यविश्वे १३ ॥ बाणाः ५ सिद्धा २४ ष्टि १६ नागो-८ द्रु २७ तिधृति १९ गिरिश ११ त्र्या ३ कृतीं २२ द्र १४ तु ६ तत्त्वा २५ त्यष्टचं १७ क ९ क्ष्मा १ नखे २० ना १२ र्णव ४ विकृति २३ दिना १५ द्या ७ कृती २२ भेंदु १८ काष्ठाः २० ॥ गोपिराजः । विष्णुम् व्येकायगोभूहतियुजिसति भशेषात् अहिहता दृक्प्रकृत्याख्यविश्वादयः सायं फलमाहेत्यन्वयः । विगतः एको यस्मात्स व्येकः स चासौ आयश्च व्येकायः ध्वजादिरिष्टायः स च गोभुवश्च एषां हतिः परस्परगुणनं व्येकायगोभूहतिश्च भं च व्येकायगोभूहतिभे तयोर्युक् व्येकायगोभूहतिभयक् तस्मिन् सति भशेषात् भै २७ भक्ते सति यच्छेषं तस्माद्विष्णुनामानं शिष्यं अहिहता अष्टगुणिता दृक् द्वौ प्रकृत्याख्या एकविंशतिः विश्वे त्रयोदशेत्यादयो गृहक्षेत्रफलम् सायं इष्टायसहितम् आह वदति । अत्रोदाहरणम् इष्टायः ३ व्येकः २ गोभू १९ हतिः ३८ इष्टर्क्षं रोहिणी तत्संख्यया ४ युतम् ४२ अस्माद्भैः २७ शेषं १५ एतत्संख्यया फलम् २५ अहि ८ हतम् २०० सायम् २०३ इदं स्वेष्टायनक्षत्रभवं क्षेत्रफलं । पूर्वसममेव महागृहप्रमाणमाह । वेति वा अथवा इष्टायसहितं जातं यत् क्षेत्रफलं अष्टिदृग्घ्नेष्टयुतं अष्टिश्च दृशश्च अष्टिदृशः अष्टिदृग्भिः षोडशाधिकद्विशत्या २१६ हतो गुणितो य इष्टः एकद्वित्र्याद्यंकः तेन युक्तं कार्यं तन्मनोऽभीष्टस्य महागृहस्य क्षेत्रफलं स्यादित्यर्थः । अत्रैवाचार्यप्रपौत्रगो-

Aho ! Shrutgyanam

पिराजस्यापि पद्यम् । इष्टर्क्षाढ्यमुनींदवो द्विराहि ८ हृच्छेषात्त्यजेत्स्वायतो नोचेच्छुद्ध्यति शोध्यमष्टसहिताच्छेषं त्रिहृत्साग्रकम् चेत्स्यादिष्टयुतं यथा तु तदशेषं स्यादथो रामहृत्प्राप्तघ्नाद्विकरान्विताः फलमभीष्टायर्क्षजं जायते ॥ सिद्धैर्भक्तः स्यात्करादीष्टदीर्घमानार्थं चैकादिनिघ्नान् भभोगान् । तावद्यावत्प्रक्षिपेदिष्टभानि विस्तारः स्यादिष्टदैर्घ्येण भक्ते ॥ ३ ॥

अथेंद्रवंशोत्तरार्धेन ध्वजाद्यायान्वदन्नायैर्वर्णपरत्वेन च द्वारनिवेशनमुपजात्याह—

स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथदैर्घ्यहृत्स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दीर्घता ॥
आया ध्वजोधूमहरिश्वगोखरेभध्वांक्षकाः पिंड इहाष्टशेषिते ॥ ४ ॥
ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा ॥
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः ॥ ५ ॥

आया इति ॥ ध्वजादिका इति ॥ पिंडे क्षेत्रफले अष्टशेषिते यदवशिष्टं तत्परिमिता ध्वजादिका आयाः स्युः ध्वजधूमौ प्रसिद्धौ हरिः सिंहः श्वा कुकुरः गौर्वृषः खरो गर्दभः इभो हस्ती ध्वांक्षकः काकः स्वार्थे कः सर्वदिशीति ध्वजाख्ये आये सर्वदिशि दिक्चतुष्टयेऽपि गृहद्वारं कार्यम् । हरौ सिंहाये पूर्वदक्षिणोत्तरादिक्षु द्वाराणि स्युः न पश्चिमदिशि । तथा वृषाख्ये प्राच्यां दिश्येव द्वारं कार्यं नान्यदिक्षु गजाख्ये आये प्राग्यमयोः पूर्वदक्षिणदिशोः गृहद्वारं कार्यम् आयानां प्रयोजनमाह विश्वकर्मा । वृषसिंहौ गजश्चैव कुंडे कर्पटकाटयोः । द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरःसु च ॥ मृगेंद्रमासने दद्याच्छयनेषु गजं पुनः । वृषं भोजनपात्रेषु छत्रादिषु पुनर्ध्वजम् ॥ अग्निवेश्मसु सर्वेषु गृहे वह्न्युपजीविनाम् । धूमं नियोजयेत्केचिच्छ्वानं म्लेच्छादिजातिषु ॥ खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वांक्षश्चापि कुटीषु च । वृषसिंहौ ध्वजश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु ॥ गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम् । अश्वालयं ध्वजाये वा खराये वृषभेऽपि वा ॥ उष्ट्राणां मंदिरं कार्यं गजाये वा वृषे ध्वजे । पशुसद्म वृषाये वा ध्वजाये वा शुभप्रदम् ॥ शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः । अमत्रछत्रवस्त्राणि वृषाये वा ध्वजेऽपि वा ॥ पादुकोपानहौ कार्यं सिंहाख्येऽप्यथवा ध्वजे । उक्तानामप्यनुक्तानां सर्वेषां च ध्वजः शुभ इति । अथ ब्राह्मणादिवर्णपरत्वेन द्वारनिवेशनमाह द्विजादितो अथवेति । ब्राह्मणादिवर्णविभागेन पश्चादुदक्पूर्वयमे । यथा । ब्राह्मणस्य पश्चान्मुखं द्वारं क्षत्रियस्योदङ्मुखम् वैश्यस्य पूर्वमुखम् शूद्रस्य दक्षिणमुखमित्यर्थः । श्रीपतिः । ध्वजे प्रतीचीमुखमग्रजानामुदङ्मुखं भूमिभृतां च सिंहे । विशो वृषे प्राग्वदनं गजे तु शूद्रस्य याम्याननमामनंतीति ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ गृहारंभे विशिष्यकालनिषेधमुपजात्याह—

गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशोऽर्केंदुईज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे ।
कर्त्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे पुरस्थिते पृष्ठगते खानिः स्यात् ॥ ६ ॥

Aho ! Shrutgyanam

गृहेशेति ॥ अर्केंद्वीज्यशुक्रे विबले निर्बले अस्ते अस्तंगते नीचराशिगते सति क्रमात् गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशो भवति । यथा । सूर्ये निर्बले नीचास्थिते गृहेशस्य नाशः । इंदौ चंद्रे निर्बले अस्तमिते नीचगते वा गृहेशस्य स्त्रीनाशः । गुरौ ईज्ये निर्बलेऽस्तगे नीचगते वा गृहेशस्य सुखनाशः । शुक्रे निर्बलेऽस्तगे नीचगते वा वित्तनाशः । वासिष्ठस्तु । नीचे शत्रुगते जीवे शुक्रे चंद्रेऽथ वा रवौ । निर्मितं सदनं शश्वदतिनिःस्वत्वमाप्नुयादिति । अस्तदोषोऽत्र न ग्राह्यः प्रातिदैवसिको बुधैः । नास्ते दोषः सदा चंद्रे न मैत्रेऽब्जस्य नीचेतेति । कर्तुरिति । यन्नक्षत्रे दिनचंद्रस्तद्विधुभम् । यद्गृहस्य विस्तारायामवशादुत्पन्नभं तद्गृहभं तस्मिन्पुरस्थिते संमुखस्थे सति कर्तुर्गृहनिर्माणकर्तुस्तद्गृहे स्थितिर्निवासो न स्यात् । पृष्ठगते वा विधुवास्तुनोर्भे सति खनिः खननं चोरकृतापद्वारं तद्वशात्सर्वस्वहानिः स्यादित्यर्थः । पुरः पृष्ठस्थितत्वं च दिग्द्वारभक्रमेण । यथा । गृहद्वारं यस्यां दिशि विधित्सितं तद्दिङ्नक्षत्रे च गृहारंभो न कार्यः । वामदक्षिणनक्षत्रेषु गृहारंभः सुखेन कार्यः । यदुक्तं ब्रह्मशंभुना । गृहायलब्धऋक्षे च यन्नक्षत्रे च चंद्रमाः । शलाकासप्तके देयं कृत्तिकादिक्रमेण च ॥ वामदक्षिणभागे तत्प्रशस्तं शांतिकारकम् । अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ऋक्षं चंद्रस्य वास्तोश्च अग्रे पृष्ठे न शस्यत इति । अयमाशयः । कृत्तिकादिसप्त नक्षत्रेषु अनुराधादिसप्तसु वा गृहनक्षत्रे चंद्रनक्षत्रे च सति पूर्वद्वारं पश्चिमद्वारं वा न कार्यम् । तत्र चंद्रः पृष्ठस्थितोऽग्रस्थितो वा भवति एवं मघादि सप्तसु धनिष्ठादि सप्तसु वा गृहनक्षत्रे चंद्रनक्षत्रे वा सति दक्षिणद्वारमुत्तरद्वारं वा न कार्यमित्यर्थः ॥ ६ ॥

इदानीं व्ययकथनपुरःसरं सफलमंशकज्ञानं उपजात्याह—

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक् सपिंडः ॥
तष्टो गुणैरिंद्रकृतांतभूपा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोंऽतकोऽत्र ॥ ७ ॥

भमिति ॥ प्रागुक्तदिशाकल्पितं यद्गृहभं तन्नागैरष्टभिस्तष्टं अवशिष्टं व्यय ईरितः । यथा रोहिणीभं ४ अयमेव व्ययः असौ व्ययः ध्रुवादिनामाक्षरयुक् ध्रुवादिनामान्यग्रेनैव वक्ष्यति । यानि दिक्षु द्वाराणि चिकीर्षितानि तदनुरोधेन यदागतं ध्रुवादिनाम तदक्षरसंख्यया युक्तः ततः स पिंडः प्रागानीतपिंडयुक्तः गुणैस्त्रिभिस्तष्टो भक्तावशिष्टः एकद्वित्रिशेषेण इंद्रयमराजसंज्ञकास्त्रयोंऽशाः स्युः । अत्र गृहारंभेऽतको यमाख्योंऽशको न शुभः । अर्थादिंद्रराजानौ शुभफलदौ ॥ ७ ॥

अथ शालाध्रुवाद्यानयनमनुष्टुभाह—

दिक्षु पूर्वादितः शाला ध्रुवाभूद्वौ कृता गजाः ॥
शालाध्रुवांकसंयोगः सैको वेश्मध्रुवादिकम् ॥ ८ ॥

दिक्ष्विति ॥ प्राच्यां द्वारे चिकीर्षिते शालाध्रुवांक एकः दक्षिणस्यां द्वौ पश्चिमायां

Aho ! Shrutgyanam

कृताश्चत्वारः उत्तरस्यां गजा अष्टौ । अथ दिक्परत्वेन यावंति द्वाराणि एकं द्वे त्रीणि चत्वारि वा चिकीर्षितानि तावतां शालाध्रुवांकानां संयोगः सैकः एकयुतः सन् ध्रुवादिकं वेश्म गृहं स्यात् । यथा । पूर्वस्यां पश्चिमायां द्वारे अभीष्टे शालाध्रुवौ १। ४ अनयोर्योगः ५ सैकः ६ गृहं जातं कांताख्यम् एवं पूर्वदक्षिणोत्तरदिक्षु शालाध्रुवाणां १,२,८ संयोगः ११ सैकः १२ धनदाख्यं गृहम् दिक्चतुष्टये विजयाख्यं गृहं षोडशमिति ॥ ८ ॥

अथ ध्रुवादीनां नामाक्षरसंख्यां पथ्यावक्त्रछंदसाह—

तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे नामाक्षरं त्रयम् ॥
भूद्व्यब्धीष्वंगदिग्वह्निविश्वेषु द्वौ नगेऽब्धयः ॥ ९ ॥

तिथ्यर्केति ॥ दिक्षु पूर्वादित इत्यादिना यत् ध्रुवादि वेश्म समागतं तस्य शालाध्रुवांकसंयोगः सैको वेश्मेत्युक्तदिशासंख्यामवधारयेत् । सा चेत्संख्या पंचदशी द्वादशी अष्टमी षोडशी नवमी एकादशी चतुर्दशी वा स्यात्तदा गृहनामाक्षरं त्रयात्मकं स्यात् । यथा १५,१२,८,१६,९,११,१४, अत्र त्रीण्येवाक्षराणि सैव संख्या। प्रथमा द्वितीया चतुर्थी पंचमी षष्ठी दशमी तृतीया त्रयोदशी वा स्यात् तदा गृहनाम द्वौ अक्षरद्वयात्मकं स्यात् । यथा १,२,४,५,६,१०,३,१३ अत्र द्वे अक्षरे पुनः सा संख्या सप्तमी स्यात्तदा अब्धयश्चतुरक्षरं गृहनाम । यथा ७ अत्र चत्वार्यक्षराणि ॥ ९ ॥

अथ यद्यपि ध्रुवादिनामाक्षरसंख्याज्ञानं प्राक्पद्ये नैव जातं तथापि तन्मध्ये कानि शुभानि कान्यशुभानीत्यसद्दशफलसूचनार्थं षोडशगृहाणां नामानि आर्यागीतिच्छंदसाह—

ध्रुवधान्ये जयनंदौ खरकांतमनोरमसुमुखदुर्मुखोग्रम् ॥
रिपुदं वित्तदनाशे चाक्रंदं विपुलविजयाख्यं स्यात् ॥ १० ॥

ध्रुवधान्येति ॥ अत्रार्यागीतिलक्षणं वा आर्यापूर्वार्धे यदि गुरुणैकेनाधिकेन निधने युक्तम् । इतरत्तद्वन्निखिलं यदीयमुदितेयमार्यागीतिरिति । अत्रार्यापूर्वार्धे ॥ऽऽ॥ऽऽ॥ऽ॥ऽ॥।॥ऽ।ऽऽ उत्तरार्धे ॥ ऽऽ॥ऽऽऽऽऽ ॥॥। ऽऽऽ सामान्यलक्षणमप्यनुसंधेयम् । विशेषलक्षणस्य सामान्यलक्षणाधीनत्वात् निधने प्रांते ध्रुवमूर्ध्वमुखं प्रथमं गृहम् । धान्यं पूर्वद्वारं द्वितीयम् । जयं दक्षिणद्वारं तृतीयम् । नंदं प्राक्दक्षिणद्वारं चतुर्थम् । खरं पश्चिमद्वारं पंचमम् । कांतं प्राक्पश्चिमद्वारं षष्ठम् । मनोरमं दक्षिणपश्चिमद्वारं सप्तमम् । सुमुखं प्राग्दक्षिणपश्चिमद्वारमष्टमम् । दुर्मुखमुत्तरद्वारं नवमम् । उग्रं पूर्वोत्तरद्वारं दशमम् । रिपुदं विपक्षाख्यं दक्षिणोत्तरद्वारमेकादशम् । वित्तदं पूर्वदक्षिणोत्तरद्वारं त्रयोदशम् । नाशाख्यं पश्चिमोत्तरद्वारं द्वादशम् । आक्रंदं प्राक्पश्चिमोत्तरद्वारं चतुर्दशम् । विपुलाख्यं दक्षिणपश्चिमोत्तरद्वारं पंचदशम् । विजयं चतुर्दिग्द्वारं षोडशम् ॥ १० ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ केषांचिन्मतेन गृहस्यायादिनवकमुपजातिकापथ्यावक्राभ्यामाह—

पिंडे नवां९कां९ग६गजा८ग्नि ३नाग८-
नागा८ब्धि४नागै८र्गुणिते क्रमेण ॥
विभाजिते नाग८नगां७क९सूर्य१२नाग ८-
र्क्ष२७तिथ्य१५र्क्ष२७खभानुभि१२०श्च ॥ ११ ॥
आयो वारोंऽशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः ॥
आयुश्चाथ गृहेशर्क्षगृहभैक्यं मृतिप्रदम् ॥ १२ ॥

पिंड इति । आय इति ॥ पिंडे क्षेत्रफले नवधा स्थापिते क्रमेण नवादिभिरंकैर्गुणिते क्रमेण नागादिभिरंकैर्भक्ते च सति यदवशिष्टं तदायादिकं स्यात् । यथा । क्षेत्रफलं नवभिर्गुणितं अष्टभिर्भक्तं शिष्टमायःस्यात् । तद्यथा । पिंडः २०३ नवगुणितः १८२७ अष्टभक्ते शेषं ३ सिंहायो जातः एवं सर्वेऽप्यानीताः वारः ७ अंशकः ३ द्रव्यम् ४ ऋणम् १ नक्षत्रम् ४ रोहिणीतिथिश्चतुर्थी ४ योगः २ प्रीतिः आयुः ६४ । उक्तं च । गों ९ क ९ र्त्वे ६ ष्ट ८ गुणा ३ ष्ट ८ नाग ८ जलधि ४ व्यालै ८ र्हतं भूफलं नागा ८ द्यं ७ क ९ दिवाकरा १२ ष्ट ८ भ २७ तिथी १५ योगैः २७ खसूर्यै १२० र्भजेत् । आयं वारमथांशकं धनमृणं तारां तिथिं चिंतयेद्योगं चायुरितीह शेषकपदे भागैर्हृते तांत्रिकैरिति । अथैषां प्रयोजनम् । विषमायः शुभायैव समायः शोकदुःखदः । वाराणां च । सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः । यथा । गणितागतो भौमवारः स निंद्यः तद्राशी मेषवृश्चिकौ तौ निंद्यौ तदंशा यस्मिन् कस्मिंश्चिल्लग्ने मेषवृश्चिकनवांशा निषिद्धाः । एवं सूर्यवारोऽपि अन्येषां वारराश्यंशाः शुभाः अंशानां च । गृहस्यागतनक्षत्रं तद्द्विराश्यात्मकं यदि । तन्नवांशवशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा गृहमिति । कृत्तिका द्विराश्यात्मिका तत्रैकावशेषे मेषः द्व्यादिशेषे वृषः मृगे द्व्यधिके शेषे मिथुनम् अन्यथा वृषः पुनर्वसावप्यंशकत्रयं यावन्मिथुनम् अन्यथा कर्कः एवमुत्तराफाल्गुन्यादिषु द्विराश्यात्मकेषूहनीयम् । न तु निःसंदिग्धेष्वश्विन्यादिषु धनर्णयोश्च । धनादिकं गृहं वृद्धौ निर्धनं यदृणाधिकमिति । नक्षत्रस्य । विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरा प्रतिकूलदा । निधनाख्या तारका तु सर्वदा निधनप्रदा । अस्यार्थः । गृहकर्तुर्नक्षत्राद्गृहभसंख्या नवभक्तावशिष्टं यदि विपत्तारादिकं स्यात् तदा तद्गृहमनिष्टं स्यात् । अन्यथा शुभमिति । कश्यपः । दत्ते दुःखं तृतीयर्क्षे पंचमर्क्षे यशः क्षयम् । आयुःक्षयं सप्तमर्क्षे कर्तृभाद्यदि सद्मभमिति । यदा तु गृहकर्तुर्गृहस्य चैकमेव नक्षत्रं तत्र स्वयमेव निर्णयमाह । गृहेति । गृहेशर्क्षं स्वामिनक्षत्रं प्रागुक्तप्रकारेणानीतं गृहभं च तयोरैक्यं एकमेव चेद्गृहं स्यात्तद्गृहकर्तुर्मरणप्रदं स्यात् । गृहस्य तत्पतेस्त्वेकं धिष्ण्यं चेन्निधनप्रदमिति वसिष्ठोक्तेः । वास्तुशास्त्रे द्विराश्यात्मकभेषु राश्यादिनिर्णयोऽन्यथाभिहितः । अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् ।

Aho ! Shrutgyanam

मूलादित्रितयं चापे शेषेषु नव राशय इति । अयं पक्षो वास्तुशास्त्रे नवांशानुक्तेरुक्तः । गृहस्य नक्षत्रराशिज्ञाने वर्णो वश्यमित्याद्युक्तप्रकारेण गृहस्वामिनक्षत्रराशिवशाद्धटितादिविचारो विधेयः । तत्र नाडीवेधे प्राशस्त्यमुक्तं चिंतामणौ । सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि । परस्परं मित्रयोश्चेदेकनाडी प्रशस्यत इति तिथिप्रयोजनं दर्शं रिक्तां च वर्जयेदिति । योगानामपि दुष्टयोगाश्च वर्ज्याः । आयुःप्रयोजनं तावत्कालं गृहावस्थितिरिति । अत्राभीष्टांशादिसिद्ध्यर्थं अंगुलादिकं प्रक्षिप्य विशोध्य वा क्षेत्रफलं साध्यम् ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ गृहारंभे वृषवास्तुचक्रं शालिनीभ्यामाह—

गेहाद्यारंभेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे रामै ३ र्दाहो वेद ४ भैरग्रपादे ॥
शून्यं वेदैः ४ पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः ३ पृष्ठे श्रीर्युगै ४ र्दक्षकुक्षौ ॥१३॥
लाभो रामैः ३ पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नैस्व्यं वामकुक्षौ मुखस्थैः ॥
रामैः पीडा संततं वार्कधिष्ण्यादश्वैरुद्रैर्दिग्भि १० रुक्तं ह्यसत्सत् ॥१४॥

गेहाद्यारंभ इति । लाभो रामैरिति ॥ गेहं गृहं आदिशब्देन प्रासादग्रामादि तदारंभे सति अर्कभात् सूर्याक्रांतनक्षत्रात् रामैस्त्रिभिर्भैः वृषस्य वत्सस्य शीर्षस्थितैः सद्भिः दाहः फलं स्यात् । ततो वेदभैः अग्रपादे पुरःस्थितपादद्वयस्थितैः शून्यं गृहं जनवासरहितं स्यात् । ततश्चतुर्भैः पृष्ठपादद्वयस्थैः स्थिरत्वं गृहकर्तुः ततो रामैः पृष्ठस्थैः श्रीः स्यात् । ततो युगैश्चतुर्भिः दक्षिणकुक्षिस्थितैः लाभः । ततस्त्रिभिः पुच्छगैः स्वामिनो गृहकर्तुर्नाशः ततो वेदैः वामकुक्षौ स्थितैः नैस्व्यं दारिद्र्यम् ततस्त्रिभिर्मुखस्थैः गृहकर्तुः पीडा संततं अनवरतं स्यात् । उक्तं च भ्रातृचरणैः । त्रिवेदवेदाग्नियुगाग्निवेदत्रिकेषु भानोः शशिभं गृहेषु । दाहो विनाशः स्थिरता धनं श्रीः शून्यं च दारिद्र्यमृती क्रमेणेति । अथैतस्य निष्कृष्टार्थमाह । वेति अर्कधिष्ण्यादश्वैः सप्तभैरसत्फलम् ततोरुद्रैरेकादशधिष्ण्यैः सत्फलम् ततो दिग्भिर्दशनक्षत्रैरसत्फलं स्यादिति । उक्तं च । रविभात्सप्त नेष्टानि शुभान्येकादशाष्टभात् । दशशेषाण्यनिष्टानि साभिजिद्वृषवास्तुनीति ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ सूर्यचंद्रमासैक्येन प्रागादिदिक्षु द्वाराणि गृहनिर्माणनक्षत्राणि च स्रग्धरयाह—

कुंभेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोजगेऽर्के च राधे ॥
मार्गे जूकालिगे सत् ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः
सूतीगेहं त्वदित्यां हरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः ॥ १५ ॥

कुंभेर्क इति ॥ कुंभस्थे सूर्ये फाल्गुने च मासि प्रागपरमुखगृहं प्राङ्मुखं पश्चिममुखं वा गृहं सत् शुभफलं स्यात् । श्रावणे मासे सिंहकर्किसंक्रांत्योश्च प्राङ्मुखं पश्चिममुखं वा गृहं

Aho ! Shrutgyanam

स्यात् । पौषे मासे नक्रे मकरसंक्रांतौ च प्रागपरमुखं गृहं स्यात् । अथ गोजगेऽर्के वृषमेषगे सूर्ये राधे वैशाखे मासि याम्योत्तरमुखं सदनं शुभं स्यात् । मार्गे मार्गशीर्षे जूकालिगे तुलावृश्चिकगते सूर्ये सति याम्योत्तरमुखसदनं दक्षिणमुखमुत्तरमुखं वा सदनं गृहं स्यात् ॥ नारदः । गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषगे शुभदं भवेत् । वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥ कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम् । कन्या रोगं तुला सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् ॥ कार्मुके च महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः । कुंभे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्मभयावहमिति । चांद्रमासानाह श्रीपतिः । शोको धान्यं मृतिपशुहृती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो युद्धं भृत्यक्षतिरथ धनं श्रीश्च वह्नेर्भयं च । लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारंभकर्तुः क्रमेण चैत्रादूचे मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टमिति । अत्र सौरचांद्रमासानां महान् शुभाशुभफलविरोधः । अत्र चिकीर्षितगृहद्वारानुकूलरविसंक्रमसमीचीनविहितमासेष्वेव वैशाखादिषु गृहारंभः कार्य इति विरोधाभाव इति तथैवोपनिबद्धम् । द्वारनियममाह श्रीपतिः । कर्किनक्रहरिकुंभगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि । तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् । अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकभयनाशमश्नुते । मीनचापमिथुनांगनागते कारयेत्तु गृहमेव भास्कर इति । तत्र कुंभार्कसहिते फाल्गुने प्रागपरमुखं गृहं कार्यम् उभयोर्विहितयोरेकवाक्यता श्रवणात् एवमग्रेऽपि सर्वत्र । जगन्मोहने । पाषाणेष्टकादिगेहानि निंद्यमासे न कारयेत् । तृणदारुगृहारंभे मासदोषो न विद्यते इति । अथ नक्षत्राण्याह ध्रुवेति । ध्रुवाणि रोहिण्युत्तरात्रयं मृदूनि मृगरेवतीचित्रानुराधाः वरुणः शततारका स्वाती वसुधनिष्ठा अर्को हस्तः पुष्यश्च एषु भेषु गृहनिर्माणं सत् शुभं स्यात् । गर्गः । त्र्युत्तरेऽपि च रोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करद्वये । धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारंभः प्रशस्यते इति । अत्र मृगो नोक्तः तदुक्तिश्च महेश्वराद्युक्तेः । सूतीगेहमिति अदित्यां पुनर्वसौ सूतिकागृहनिर्माणं प्रशस्तम् । तत्रेति । तत्र सूतीगृहे हरिभविधिभयोः श्रवणाभिजितोर्नक्षत्रयोः प्रवेशः शस्तः । लल्लः । पुनर्वसौ नृपादीनां कर्तव्यं सूतिकागृहम् । श्रवणाभिजितोर्मध्ये प्रवेशं तत्र कारयेदिति । अत्र नृपपदोपादानात् ब्राह्मणानां पूर्वोक्तनक्षत्रेष्वेव कार्यम् । आवश्यकत्वे तु श्रवणाभिजितोर्मुहूर्तः तदुदयो वा ग्राह्यः । तच्च सूतीगृहं नैर्ऋत्यां कार्यम् । नैर्ऋत्यां सूतिकागृहमिति वसिष्ठोक्तेः । वराहेणात्रानेकनक्षत्राण्यभिहितानि । हस्तादित्यशशांकपुष्यपवनब्राह्मेशमित्रोत्तराचित्राश्विश्रवणेषु वृश्चिकघटौ हित्वा विरिक्ते तिथौ । शुक्राचार्यशनैश्चरज्ञशशिनां वारेऽनुकूले विधौ सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमंकरः कीर्त्यते इति । वेश्मनि चतुर्थस्थाने सद्भिः शुभग्रहैः नवममासि सूतिकागृहप्रवेशः कार्यः । गर्गः । मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभे दिने । प्रसूतिसंभवे काले सद्य एव प्रवेशयेत् । रोहिण्यैंदवपौष्णेषु स्वातीवारुणयोरपि । पुष्ये पुनर्वसौ हस्ते धनिष्ठात्र्युत्तरासु च ॥ मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेश-

Aho ! Shrutgyanam

नम् । सर्वे शुभग्रहाः केंद्रे पापाश्च त्रिषडायगाः । शुभांशे शुभसंदृष्टौ सूतिकावेशनं शुभमिति ॥ १९ ॥

अथ प्रागभिहितानां सौराणां चांद्राणां मासानां प्रकारांतरेणैकवाक्यतां शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कैश्चिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे
भाद्रे सिंहगते धटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके ॥
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जे न सत्कन्यायां
च तथा धनुष्यपि न सत्कृष्णादिमासाद्भवेत् ॥ १६ ॥

कैश्चिदिति ॥ पूर्वं दिग्द्वारवशेनैकवाक्यतोक्ता इदानीं मेषस्थे रवौ मधौ चैत्रमासे गेहं प्रारब्धं शुभं स्यात् । तथा वृषस्थे सूर्ये ज्येष्ठमासे कर्कस्थेऽर्के शुचावाषाढे सिंहगतेऽर्के भाद्रपदे मासि धटे तुलास्थे रवौ अश्वयुज्याश्विने मासे अलौ वृश्चिकस्थेऽर्के ऊर्जे कार्तिकमासे मृगे मकरस्थेऽर्के पौषमासे नक्रघटे मकरकुंभेऽर्के माघे प्रारब्धं गृहं शुभं स्यादित्यर्थ इति कैश्चिन्निगदितम् । अनेन मेषेऽर्के चैत्रेऽपि शुभं गृहं यस्तु चैत्रनिषेधः स मीनार्कविषयः वृषस्थेऽर्के ज्येष्ठेऽपि शुभम् यस्तु ज्येष्ठनिषेधः स मिथुनार्कविषयः कर्कस्थेऽर्के आषाढेऽपि शुभम् आषाढनिषेधस्तु मिथुनार्कविषयः सिंहेऽर्के भाद्रेपि शुभम् भाद्रनिषेधस्तु कन्यार्कविषयः श्रावणस्तु तत्र विहितत्वादेव शुभः तुलास्थेऽर्के आश्विनेऽपि शुभं । अस्य निषेधः कन्यार्कपरः वृश्चिकेऽर्के कार्तिकेऽपि शुभं निषेधविषयं स्वयमेव वक्ष्यति मार्गशीर्षस्तु विहित एव मकरस्थेऽर्के पौषेऽपि शुभं धनुरर्कसाहित्ये सोऽप्यशुभः मकरकुंभस्थेऽर्के माघेऽपि शुभम् निषधेस्तु धनुरर्कविषयः अतएव। सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः। मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदा इति नारदवाक्यम् । मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे। ऊर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रप्रवर्धनमिति वसिष्ठवाक्यं च आश्विनकार्तिकमाघानां शुभत्वप्रतिपादकं तुलावृश्चिकमकरकुंभार्कराहित्ये प्राशस्त्यपरं वचनांतरैरबोधि तन्निषेधः प्रागुक्तविषय एव। एवं फाल्गुनस्य शुभत्वं कुंभार्कविषयम् कुंभार्कराहित्ये तु निषिद्धम् ननु कार्तिकमाघमासौ श्रीपतिना निषिद्धौ तयोः को विषय इत्यत आह । अथेति । ऊर्जः कार्तिको मासः कन्यागतेऽर्के न सत् न शुभः । च पुनः तथा माघमासः धनुष्यपि धनुरर्के न सत्। नन्वेतदयुक्तम्। यतः शुक्लादिचांद्रमासे चैत्रादिमाससंज्ञाः संति तत्र कार्तिके कन्यासंक्रांतिमासे धनुःसंक्रांतिश्च कदापि न संभवति अत आह। कृष्णादिमासादिति। मासो द्विविधः शुक्लादिः कृष्णादिश्च तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदमारभ्यामावास्यापर्यंतं शुक्लादिः। कृष्णप्रतिपदमारभ्य पूर्णिमापर्यंतं कृष्णादिः उभयत्रापि शास्त्रे व्यवहारः । आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद्दिने दिने इति । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके । भवेत्प्रोष्ठपदे मासि ज-

Aho ! Shrutgyanam

यंती नाम सा स्मृतेति च । अत्र यदि दर्शांतो मासो विवक्ष्यते तदा भाद्रपदकृष्णपक्षे श्रावणे मासे चेत्येवं ब्रूयात् । तदेतन्मासस्य कृष्णादित्वे प्रमाणम् । तत्राश्विनपूर्णिमातः कार्तिकपूर्णिमांतं कृष्णादित्वेन व्यवहारात्तत्र कन्यासंक्रांतिसंभवान्निषेध उपपन्नो भवति एवमेव माघे मासि धनुरर्कसंभवेन निषेधसार्थक्यमित्यलम् ॥ १६ ॥

अथ तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधमुपजातिकयाह—

पूर्णेंदुतः प्राग्वदनं नवम्यादिषूत्तरास्यं त्वथ पश्चिमास्यम् ॥
दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदंति ॥ १७॥

पूर्णेंदुत इति ॥ पूर्णेंदुतः पूर्णिमातः कृष्णाष्टमीपर्यंतं प्राङ्मुखं गृहं शुभं न वदंति कृष्णनवमीतः चतुर्दशीपर्यंतं क्रियमाणमुत्तरास्यं न शुभम् अथ दर्शादितः शुक्लाष्टमीपर्यंतं पश्चिमास्यं गृहं न शुभं शुक्लनवमीतश्चचतुर्दशीपर्यंतं दक्षिणास्यं गृहं शुभं न वदंति तासु तासु तिथिषु तत्तद्दिङ्मुखं गृहं न कर्तव्यमित्यर्थः । व्यवहारोच्चये । पूर्णिमातोऽष्टमीं यावत्पूर्वास्यं वर्जयेद्गृहम् । उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम् । अमायाश्चाष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत् ॥ नवम्यादौ दक्षिणास्यं यावच्छुक्लचतुर्दशीमिति । वेधादिविचारो न लिखितः ग्रंथगौरवात् ॥ १७ ॥

अथ पंचांगशुद्धिं लग्नशुद्धिं चानुष्टुभाह—

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनेंऽगे विपंचके ॥
व्यष्टांत्यस्थैः शुभैर्गेहारंभस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥ १८ ॥

भौमार्केति ॥ भौमार्कवारौ रिक्ताश्च प्रसिद्धाः अमावास्या आदिः प्रतिपत् उपलक्षणत्वादष्टम्यपि एतैरूने काले तथा चरराशिर्मेषकर्कतुलामकरै रहिते लग्ने स्थिरे द्विस्वभावे तथा विपंचके रुगनलनृपचोरमृत्युसंज्ञकपंचकरहित इत्यर्थः । उक्तं च । दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी । अष्टम्युच्चाटनं चैव नवमी शस्त्रघातिनी ॥ दर्शे राजभयं ज्ञेयं भूते दारविनाशनमिति । मांडव्येन स्तंभोच्छ्रये । धनिष्ठापंचके नैव कुर्यास्तंभसमुच्छ्रयम् । सूत्रधारशिलान्यासप्राकारादिसमारंभेदिति ॥ व्यष्टांत्य इति अष्टमद्वादशस्थानव्यतिरिक्तस्थैः शुभैः पापैस्तृतीयैकादशषष्ठस्थानस्थैश्चोपलक्षिते लग्ने गृहारंभः कार्यः ॥ १८ ॥

अथ देवालयादौ विदिक्षु राहुमुखमिंद्रवंशयाह—

देवालये गेहविधौ जलाशये
राहोर्मुखं शंभुदिशो विलोमतः ॥
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते
मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत् ॥ १९ ॥

Aho ! Shrutgyanam

देवालय इति ॥ अत्र यथासंख्यं संबंधः । देवालयप्रारंभे राहुमुखं मीनार्कतस्त्रिराश्यवस्थिते सूर्ये ऐशानीतो विलोमतो विपरीतं विदिक्षु वायव्यादिषु राहुमुखं स्यात् । यथा मीनमेषवृषराश्यवस्थिते सूर्ये ईशान्यां राहुमुखम् । मिथुनकर्कसिंहस्थितेऽर्के वायव्याम् कन्यातुलावृश्चिकस्थितेऽर्के नैर्ऋत्याम् धनुर्मकरकुंभस्थेऽर्के आग्नेय्यां राहुमुखमित्यर्थः । एवं गृहारंभेऽपि सिंहार्कतस्त्रिराश्यवस्थितेऽर्के विलोमत ऐशान्यां राहुमुखं स्यात् वृश्चिकादित्रिभे वायव्यां कुंभादित्रिभे नैर्ऋत्यां वृषादित्रिभे आग्नेय्यां राहुमुखमित्यर्थः । तथा जलाशयप्रारंभेऽपि मकरतस्त्रिराश्यवस्थितेऽर्के विलोमत ऐशान्यां राहुमुखं स्यात् । मेषादित्रिभे वायव्याम् कर्कादित्रिभे नैर्ऋत्याम् तुलादित्रिभे आग्नेय्यां राहुमुखं स्यादित्यर्थः । फलमाह खात इति । देवालयादिविषयके खाते भूमिशोधने कर्तव्ये सति राहुमुखाक्रांतदिशः सकाशात्पृष्ठवर्तिनी विदिक् शुभा भवेत् । यथैशान्यां राहुमुखं तत्पृष्ठदिगाग्नेयी तस्यां प्रथमखातारंभः शुभफलदः एवं वायव्यां राहुमुखं तत्पृष्ठविदिगैशानी तस्यां खातारंभः एवं सर्वत्र । उक्तंच । ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद्विदिक्षु । शेषोऽस्य वास्तोर्मुखमध्यपुच्छं त्रयं परित्यज्य खनेच्चतुर्थम् ॥ वृषार्कादित्रयं वेद्यां सिंहादिगणयेद्गृहे । देवालये च मीनादि तडागे मकरादिकमिति । खातारंभादिनक्षत्राण्याह । मांडव्यः । अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् । तिर्यङ्मुखैर्द्वारि कपाटदानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवर्क्षैरिति ॥ १९ ॥

अथ गृहे कूपनिर्माणादिगवस्थित्या फलं शालिन्याह—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वै-
शान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ॥
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च
संपत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥ २० ॥

कूप इति ॥ वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियामिति वास्तुशब्दः पुल्लिंगः । वास्तोर्गृहस्य मध्यभागे कूपे जलकूपे सति स्वामिनोऽर्थनाशः स्यात् अथैशान्यादिषु सृष्टिमार्गेणाष्टदिक्षु पुष्टिरित्यादि फलं । यथैशान्यां कूपे पुष्टिः पूर्वस्यामैश्वर्यवृद्धिः आग्नेय्यां पुत्रनाशः दक्षिणस्यां स्त्रीविनाशः नैर्ऋत्यां गृहपतेर्मृतिः पश्चिमायां संपत् वायव्यां शत्रुतः सकाशात्पीडा स्यात् उत्तरस्यां कूपे सुखं गृहस्वामिन एव । वसिष्ठः । ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत् । संपच्छत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात् ॥ कूपे कृते मध्यमे तु धनहानिर्हि वास्तुनीति । अथ कूपारंभे चक्रमाह । कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः स्वादूदकं पूर्वदिशि त्रिभिर्भैः । खंडं जलं स्वादुजलं जलक्षयं स्वादूदकं क्षारजलं शिलाजलम् । क्षारं जलं मृष्टजलं क्रमाद्गवेद्या सूर्यभात्त्रित्रिमितैः शुभाशुभमिति ॥ २० ॥

Aho ! Shrutgyanam

अथ दिक्परत्वेन उपकरणगृहाणि वसंततिलकयाह—

स्नानस्य पाकशयनास्त्रभुजेश्च धान्य-
भांडारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः ॥
तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्या-
भ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम ॥ २१ ॥

स्नानस्येति ॥ पूर्वतः पूर्वाद्यष्टदिक्षु स्नानगृहादीनि गृहाणि स्युः । यथा । पूर्वस्यां स्नानगृहम् आग्नेय्यां पाकगृहम् दक्षिणस्यां शयनगृहम् नैर्ऋत्यां शस्त्रगृहम् पश्चिमायां भोजनगृहम् वायव्यां धान्यसंग्रहगृहम् उत्तरस्यां भांडारं कोशगृहम् ऐशान्यां दैवतगृहम् । वसिष्ठः । ऐंद्र्यां दिशि स्नानगृहमाग्नेय्यां पचनालयम् । याम्यायां शयनं वेश्म नैर्ऋत्यां शस्त्रमंदिरम् ॥ वारुण्यां भोजनगृहं वायव्यां धान्यमंदिरम् । उदीच्यां हाटकं सद्म ऐशान्यां देवमंदिरमिति । नारदस्तु विशेषमाह । भांडागारं तूत्तरस्यां वायव्यां पशुमंदिरमिति । पूर्वाद्यष्टदिक्षु तन्मध्यतः तयोर्दिग्विदिशोर्मध्येऽष्टसंख्याके मथनाद्यष्टौ गृहाणि स्युः। यथा पूर्वाग्नेययोर्मध्ये मथनस्य दध्यालोडनस्य गृहं स्यात् आग्नेयीदक्षिणयोर्मध्ये आज्यस्य घृतसंग्रहस्य दक्षिणनैर्ऋत्योर्मध्ये पुरीषस्य विष्ठात्यागस्य गृहम् नैर्ऋतीपश्चिमयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य पश्चिमवायव्ययोर्मध्ये रोदनस्य गृहम् वायव्योत्तरयोर्मध्ये रतस्य संभोगस्य गृहम् उत्तरैशान्ययोर्मध्ये औषधस्य गृहम् ऐशानीप्राच्योर्मध्ये उक्तव्यतिरिक्तसर्ववस्तूनां धाम गृहं कार्यं स्यादित्यर्थः । वसिष्ठः । इंद्राग्न्योर्मथनं मध्ये याम्याग्न्योर्घृतमंदिरम् । यमराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्यागमंदिरम् ॥ राक्षसांबुपयोर्मध्ये विद्याभ्यासस्य मंदिरम् । तोयेशानिलयोर्मध्ये रोदनं मंदिरं ततः ॥ कामोपभोगसदनं वायुकौबेरमध्यमे । कौबेरैशानयोर्मध्ये चिकित्सामंदिरं सदा ॥ गृहं हरीशयोर्मध्ये सर्ववस्तुसुसंग्रहम् । सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडशेति ॥ २१ ॥

अथ विशेषमुपजातिकयाह—

जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारिजामित्रसुखत्रिगेषु ॥
स्थितिः शतं स्याच्छरदां सितार्कारेज्ये तनुत्र्यंगसुते शते द्वे ॥२२॥

जीवार्केति ॥ अत्र योगद्वये ग्रहस्थानयोर्यथासंख्यं संबंधः । यथा जीवो लग्ने अर्कोऽरौ षष्ठे विद्बुधो जामित्रे सप्तमे शुक्रश्चतुर्थे शनिस्तृतीये एवंविधे लग्ने प्रारब्धस्य गृहस्य स्थितिरब्दशतं वर्षशतं स्यात् । अयमेको योगः । सितेति शुक्रो लग्ने अर्कस्तृतीये आरः षष्ठे ईज्यः पंचमे एवंविधे प्रारब्धस्य गृहस्य स्थितिर्द्वे शते वर्षशतद्वयं स्यात् ॥२२॥

२८

Aho ! Shrutgyanam

अथान्ययोगद्वयमिंद्रवंशयाह–

लग्नांबरायेषु भृगुज्ञभानुभिः केंद्रे गुरौ वर्षशतायुरालयम् ॥
बंधौ गुरुर्व्योम्नि शशी कुजार्कजौ लाभे तदाशीतिसमायुरालयम्२३

लग्नांबरायेष्विति ॥ अत्रापि योगद्वये स्थानग्रहयोर्यथासंख्यं संबंधः । लग्ने शुक्रः दशमे बुधः एकादशे सूर्यः लग्नव्यतिरिक्तकेंद्रे गुरुः तदैवंविधे योगे प्रारब्ध आलयः गृहं वर्षशतमायुरवस्थानं यस्य तादृशं स्यात् । अथ द्वितीयः बंधाविति चतुर्थे गुरुः दशमे चंद्रः मंगलशनैश्चरावेकादशे तदा गृहमशीतिसमा वर्षाण्यायुर्यस्य तादृशं स्यात्॥२३॥

अथान्ययोगत्रयमनुष्टुभाह–

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथवा ॥
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्या युक्तं चिरं गृहम् ॥ २४ ॥

स्वोच्च इति ॥ स्वोच्चस्थमीनस्थे शुक्रे लग्नगते अथवा स्वोच्चस्थे कर्कस्थे गुरौ चतुर्थस्थानगते सति अथवा स्वोच्चस्थे तुलास्थे शनौ एकादशस्थानगते सति चिरं लक्ष्म्या युक्तं गृहं स्यात् । यदा समुदायो भवेत् तदा पतनावधि लक्ष्म्या युतं स्यात् ॥ २४ ॥

अथ गृहस्य परहस्तगामित्वयोगमनुष्टुभाह–

द्यूनांबरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम् ॥
अब्दांतःपरहस्तस्थं कुर्याच्चेद्वर्णपोऽबलः ॥ २५ ॥

द्यूनांबर इति ॥ एकोऽपि ग्रहोत्युत्कृष्टशुभफलदाता परांशस्थः सन् यदि द्यूने सप्तमे स्यात् अथवांऽबरे दशमे स्यात् तदा स ग्रहः तद्गृहं प्रारब्धं अब्दांतः वर्षमध्ये एव परहस्तस्थं अन्यहस्तगामि कुर्यात् । चेद्वर्णपः ब्राह्मणादिवर्णस्वामी विप्राधीशौ भार्गवेज्यावित्याद्यभिहितः स चेदबलः स्यात् यदा स्ववर्णाधीशः सबलः स्यात्तदा परहस्तगामि न स्यादित्यर्थः ॥ २५ ॥

अथान्यं विशेषं वसंततिलकयाह–

पुष्यध्रुवेंदुहरिसर्पजलैः सजीवै-
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ॥
द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रैर्वारे
सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥ २६ ॥

पुष्येति ॥ पुष्यः ध्रुवाणि प्रसिद्धानि इंदुर्मृगः हरिः श्रवणः सर्प आश्लेषा जलं पूर्वाषाढा एतैर्नक्षत्रैः सजीवैः गुरुयुक्तैः तद्वासरेण गुरुवासरेण कृतं कर्तुमारब्धं गृहं सुतान् पुत्रान् राज्यं च ददाति तादृशं स्यात् अत्र संमतिर्वसिष्ठनारदवाक्यतः । द्वीशेति । द्वीशं विशाखा

Aho ! Shrutgyanam

अश्विनी तक्षः चित्रा वसुर्धनिष्ठा पाशी शतभम् शिव आर्द्रा एतैर्नक्षत्रैः सशुक्रैः शुक्रसहितैः सितस्य शुक्रस्य वासरे च कृतं गेहं धनानि सुवर्णादीनि धान्यानि व्रीह्यादीनि ददाति तादृशं गृहं स्यात् । तथा च नारदः । श्रवणाषाढयोश्चैव रोहिण्यां चोत्तरात्रये । गुरुवारे कृतं वेश्म राजयोग्यमिहोच्यते ॥ तद्गृहे जातपुत्रस्य राज्यं भवति निश्चयात् । अत्र वसिष्ठवाक्ये नक्षत्राधिख्यं तदनुसारेण मूलनक्षत्राभिधानम् । ईज्योत्तरात्रयाहींदुविष्णुधातृजलोडुषु । गुरुणा सहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रियान्वितमिति वसिष्ठोक्तेः । अश्विनीशततारासु विशाखाभाद्रचित्रके । धनिष्ठा शतभे शुक्रसंयुक्ते शुक्रवासरे ॥ तद्वेश्मनि प्रजातस्तु कुबेरसदृशो भवेत् । अत्रापि नक्षत्रभेदैः प्राग्वत्समाधिः ॥ २६ ॥

अथान्ययोगद्वयमिंद्रवज्रयाह—

सारैः करेज्यांत्यमघांबुमूलैः कौजेऽह्नि वेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात् ॥
सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तैर्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥ २७ ॥

सारैरिति ॥ हस्तपुष्यरेवतीमघापूर्वाषाढामूलैः सारैर्मंगलसहितैः कौजे भौमसंबंधिनि अह्नि वारे कृतं गृहं अग्निसुतार्तिदं अग्निपीडां सुतपीडां ददाति तादृशं स्यात् । उक्तं च । मूलं च रेवती चैव कृत्तिकाषाढमेव च । एषु भौमेन युक्तेषु वारे तस्यैव निर्मितम् । अग्निना दह्यते कृत्स्नं पुत्रनाशश्च जायत इति । सज्ञैरिति । रोहिण्यश्विन्युत्तराफाल्गुनीचित्राहस्तैः सज्ञैः बुधयुक्तैः ज्ञस्य च वारे कृतं गृहं सुखदं पुत्रदं च स्यात् । उक्तं च । हस्तार्यमत्वाष्ट्रदास्त्रचतुरास्येंदुभेऽपि च । सबुधे बुधवारे च धनपुत्रसुखप्रदमिति ॥ २७ ॥

अथान्यं योगमनुष्टुभाह—

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलांतकैः ॥
समंदैर्मंदवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥ २८ ॥

अजैकपादिति ॥ पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदाज्येष्ठानुराधास्वातीभरणीनक्षत्रैः समंदैः शनैश्चरयुक्तैः मंदस्यैव वारे च प्रारब्धं गृहं रक्षोभिर्भूतैश्च युतं स्यात् । उक्तं च । अजपाद्दितये याम्यमित्रेंद्रानिलभेऽपि वा । समंदे मंदवारे च गृह्यते यक्षराक्षसैः । पुत्रे जातेऽथवा तस्मिन् गृह्यते यक्षराक्षसैरिति । अत्रायं निकृष्टोऽर्थः पूर्वं गृहारंभनक्षत्राण्यवधेयानि ततो वृषवास्तुचक्रे शोध्यानि पश्चादिदं योगपंचकं विचार्यम् एवं गृहारंभः शुभफलदो भवेत् २८

अथ केषांचिन्मतेन द्वारचक्रं सफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-
र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासुसौख्यं भवेत् ॥

Aho ! Shrutgyanam

देहल्यां गुणभैर्मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ॥२९॥

इति मुहूर्तचिंतामणौ वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ॥

सूर्यर्क्षादिति ॥ सूर्याधिष्ठितनक्षत्रात् युगभैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैः शिरसि उपरि अवस्थितैः फलं कर्तुर्लक्ष्मीप्राप्तिः स्यात् ततः । नागभैः अष्टभिः कोणगैः कोणेष्ववस्थितैः उद्वसनं जनावासरहितं स्यात् तदग्रभैर्गजमितैरष्टमितैर्द्वारशाखास्थितैर्गृहस्वामिनः सौख्यं स्यात् तदग्रिमैः गुणभैस्त्रिभिर्नक्षत्रैर्देहल्यामवस्थितैर्गृहस्वामिनो मृतिः स्यात् ततस्तदग्रिमैर्वेदभैश्चतुर्भिर्नक्षत्रैः मध्यरूपे अवकाशे स्थितैः सौख्यं स्यात् फलितार्थमाह । चक्रमिति । इदं चक्रं विलोक्य सुधिया शुभं शुभफलदं द्वारं विधेयं कर्तव्यमिति अनेनोपसंहरति ॥ २९ ॥

इति मुहूर्तचिंतामणिटीकायां प्रमिताक्षरायां द्वादशं वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ अथ गृहप्रवेशप्रकरणप्रारंभः ॥

अथ गृहप्रवेशप्रकरणं व्याख्यायते । तत्र प्रवेशश्चतुर्धा । अपूर्वप्रवेशः सपूर्वप्रवेशः द्वंद्वाभयप्रवेशः वधूप्रवेशश्चेति । तत्र वधूप्रवेशस्यान्वर्थसंज्ञकत्वाल्लक्षणं नोक्तम् स च प्रागभिहितः । अन्येषां लक्षणमाह वसिष्ठः । अपूर्वसंज्ञः प्रथमप्रवेशो यात्रावसाने तु सपूर्वसंज्ञः । द्वंद्वाभयस्त्वग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्ट इति । नवगृहं निर्माय यः प्रथमः प्रवेशः सोऽपूर्वसंज्ञः प्रवेशः यस्तु यात्रानिवृत्त्यनंतरं गृहप्रवेशः स सपूर्वसंज्ञः यस्तु अग्निभयेनाग्निदाहेन आदिशब्देन क्रुद्धेन राज्ञा पातनेन गृहनाशस्तद्गृहं यदा पुनः संपाद्यते तस्मिन् यः प्रवेशः स द्वंद्वाभय इत्युच्यते अन्वर्थसंज्ञा चेयम् । द्वंद्वं शीतोष्णम् अत्र शीतशब्देन जलम् उष्णशब्देनाग्निरुच्यते लक्षणया जलाप्लावेनानवरतवृष्टिपातेन वा गृहपातस्तज्जलभयम् अग्निकृतदाहेन यो गृहनाशस्तदग्निभयम् तस्माच्छीतोष्णरूपात् द्वंद्वात्पुनरुत्थापनेन यदभयं तत् द्वंद्वाभयमित्युच्यते द्वंद्वाभयं विद्यते यस्मिन्नित्यर्थः । अर्शआदिभ्योऽजिति मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः । तादृशः प्रवेशो द्वंद्वाभय इति । तत्रापूर्वसपूर्वप्रवेशयोः कालशुद्ध्यादिकमिंद्रवंशयाह—

सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे ॥
स्याद्वेशनं द्वास्थमृदुध्रुवोडुभिर्जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिरे ॥ १ ॥

सौम्यायने इति ॥ एषु सौम्यायन इत्यादिकेषु पदार्थेषु सत्सु नृपतेर्यात्रानिवृत्तौ अथवा नवे नूतनोत्थापिते गृहे वेशनं प्रवेशनं स्यात् अत्र सौम्यायन इति मंदबुद्धीनां शीघ्रप्रतिपत्त्यर्थम् ज्येष्ठेति ज्येष्ठमाघफाल्गुनवैशाखेष्वेव सत्यप्युत्तरायणे प्रवेशनं शुभम् । नारदः । अपि सौम्यायने कार्यं नववेश्मप्रवेशनम् । राज्ञा यात्रानिवृत्तौ चेति तथा माघफा-

Aho ! Shrutgyanam

ल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः । प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोरिति मध्यमोक्तिरावश्यकविषया । द्वास्थेति यस्मिन्गृहे प्रवेशः कर्तुमिष्यते तस्य यस्यां दिशि मुखं तद्दिङ्नक्षत्रैः पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु सप्तसप्तानलर्क्षात इत्याद्युक्तैर्मृदुध्रुवनक्षत्रैः प्रवेशनं स्यात् । यद्दिक्द्वारं मंदिरं तद्दिगृक्षैरुक्तर्क्षे स्यात्स प्रवेशो न सर्वैरिति वसिष्ठोक्तेः । अन्यदपि तत्रैव । अर्कानिलेयादितिदस्त्रविष्णुऋक्षे प्रविष्टं नवमंदिरं यत् । अब्दत्रयात्तत्परतस्तु यातं शेषेषु धिष्ण्येषु च मृत्युदं स्यादिति । जन्मर्क्षेति । जन्मर्क्षं जन्मराशिः जन्मलग्नं प्रसिद्धम् ताभ्यामुपचयं तृतीयषष्ठदशमैकादशस्थानं तस्मिन् उदये लग्ने स्थिरे स्थिराख्ये वृषसिंहवृश्चिककुंभाख्ये लग्ने प्रवेशनं शुभम् । नारदः । कर्तुर्जन्मभलग्ने वा ताभ्यामुपचयेऽपि वा । प्रवेशलग्ने स्याद्वृद्धिरन्यभे शोकनिःस्वतेति । सौम्ये स्थिरे भे शुभदृष्टियुक्ते लग्नेऽथवा द्व्यंगगृहे विलग्ने इति च सौम्यग्रहयुक्ते द्व्यंगे द्विस्वभावराशौ ॥ १ ॥

अथ जीर्णगृहप्रवेशे विशेषमिंद्रवज्रयाह—

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सत्स्यात् ॥
वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ॥ २ ॥

जीर्णगृह इति ॥ जीर्णे पुरातनेऽन्यनिर्मिते गृहे अग्निभयात् अग्निना दाहात् आदिशब्देन बहुवृष्टिराजकोपाद्युपद्रवात्पतिते गृहे पुनरपि सम्यगेव कृते उत्थापिते पूर्वोक्ताः। सर्वेऽपि मासा ज्ञेयाः । किंच मार्गोर्जयोः मार्गशीर्षकार्तिकयोश्च श्रावणिकेऽपि श्रावणेऽपि वेशः प्रवेशः सन् शुभफलदः स्यात् । सनत्कुमारः । गृहारंभोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशेद्गृहमिति । अत्र सामान्यतो गृहारंभोदिता मासा गृहप्रवेशेऽभिहिताः । ते च । सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः । मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदा इति नारदोक्तेर्मार्गशीर्षफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः विहिताः । तत्रोत्तरायण एव गृहप्रवेशस्य वाक्यांतरेण विहितत्वात् श्रावणकार्तिकमार्गशीर्षाणामुत्तरायणत्वाभावात् विरोधे नूतनजीर्णगृहप्रवेशाभ्यां व्यवस्था । कथं प्रागभिहितनारदवाक्येन उत्तरायणसाहचर्येण नूतनगृहप्रवेशपूर्वप्रवेशयोर्विधानात् गृहारंभोदितैर्मासैरित्यनेन तु सामान्यतस्त्रिविधस्यापि प्रवेशस्य विधानादुत्तरायणीयमासास्त्रिविधगृहप्रवेशे शुभाः । दक्षिणायनीयमासाः श्रावणादयस्तु जीर्णगृहप्रवेशविषयाः । अत एव नारदो मार्गशीर्षकार्तिकयोर्नूतनप्रवेशे मध्यमत्वमाह । अर्थादेव जीर्णगृहप्रवेशे उत्कृष्टत्वमध्यवस्यते । अंबुपेति । अंबुपः शततारका ईज्यः पुष्यः अनिलः स्वाती वासवं धनिष्ठा एषु भेषु जीर्णगृहे अग्न्यादिभयान्नवेऽपि गृहप्रवेशः शुभः प्राक् पद्योक्तनक्षत्रेषु तु शुभ एवेति कैमुतिकन्यायादवगम्यते । ज्योतिःप्रकाशे । प्रवेशो नूतने हर्म्ये ध्रुवैर्मित्रैः सुखाप्तये । पुष्यस्वातीयुतैस्तैस्तु जीर्णे स्याद्वासवद्वये इति । नावश्यमिति अत्रैवंविधे जीर्णे गृहे अग्न्यादिभयान्नवेऽपि आवश्यकमस्तादिविचारणा शुक्रास्तगुर्वस्तबाल्यवार्धकसिंहस्थ-

Aho ! Shrutgyanam

गुर्वादिदोषाणां विचारणा विचारो नास्ति अस्तादयः कालदोषाः संतु मा वा संतु तथापि गृहप्रवेशः कार्यः। सोऽपि पंचांगशुद्धिमात्रमंगीकृत्य विहितनक्षत्रेष्वेव कार्यः। ज्योतिःप्रकाशे। नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके। वधूप्रवेशे मांगल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोरिति। वसिष्ठः। नवप्रवेशे ह्यथ कालशुद्धिर्न द्वंद्वसौपूर्विकयोः कदाचित्। प्रवेशपंचांगदिने सुलग्ने वास्त्वर्चनं पूर्ववदेव कुर्यात्। पूर्ववदेव नूतनप्रवेशे यथा वास्तुपूजा तथा द्वंद्वसौपूर्विकयोरपि कार्येत्यर्थः। नारदेन तु यात्रानिवृत्तिप्रवेशे कालशुद्धिरपेक्षितैवेति तद्वाक्यं प्रागभिहितं तदेतयोर्वाक्ययोरावश्यकानावश्यत्वेन व्यवस्था। अत्र त्रिविधेऽपि प्रवेशे प्रवेशनक्षत्रं क्रूराक्रांतं क्रूरविद्धं वा सर्वथा वर्ज्यम्। वसिष्ठः। क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेश इति ॥ २ ॥

अथ गृहप्रवेशदिनात् प्राक्कर्तव्यवास्तुपूजां विवक्षुस्तन्नक्षत्राणि उपजातिकापूर्वार्धेनाह—

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत् ॥

मृदुध्रुवेति ॥ एषु सप्तदशसु नक्षत्रेषु वास्तुपुरुषस्यार्चनं भूतबलिं च कारयेत्. गृहपतिर्वास्तुपूजां च कुर्यात्। पुरोहितो गृहपतिं वास्तुपूजादि कारयेत्। ह्रक्रोरन्यतरस्यामित्यणौ कर्तुः कर्मत्वम्। वास्तुपूजाप्रकारमाह। वसिष्ठः। निर्माणे मंदिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि च। वास्तुपूजा प्रकर्तव्या यस्मात्तां कथयाम्यतः ॥ गृहमध्ये हस्तमात्रं समंतात्तंडुलोपरि। एकाशीतिपदं कार्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम् ॥ एकद्वित्रिपदाः पंच चत्वारिंशत्सुरार्चिताः। द्वात्रिंशद्बाह्यतो वक्ष्यमाणाश्चांतस्त्रयोदश ॥ तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वरकोणतः। तत्राग्निः शंभुकोणस्थस्त्वसौ चैकपदेश्वरः ॥ तस्माद्द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेकपदेश्वरः। जयंतेंद्रार्कसत्याख्या भृशश्च द्विपदेश्वराः ॥ आकाशवायुपरतः क्रमादेकपदेश्वरौ। एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा त्वेवमेवान्यदिक्षु च ॥ आद्यश्चांत्यावेकपदौ द्विपदाः पंचमध्यगाः। शिख्याद्यष्टावाकाशांता अमराः पूर्वभागगाः ॥ आद्यश्चांत्यावेकपदौ द्विपदाः पंच मध्यगाः। पूषाद्यष्टौ यमांताः स्युरमरा याम्यभागगाः ॥ आद्यश्चांत्यावेकपदौ द्विपदाः पंच मध्यगाः। अष्टौ पितृगणाधीशात् पापांताः पश्चिमे सुराः ॥ आद्यंतौ द्वावेकपदौ द्विपदाः पंच मध्यगाः। रोगादिदित्यंतसुराः सप्त सौम्यदिशि क्रमात् ॥ तत्राधस्थचतुःकोणे त्वीशानादिषु च क्रमात्। आपः सावित्रविजयरुद्राश्चैकपदेश्वराः ॥ मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्यैशानादिकोणगाः। आपवत्सोऽथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकः ॥ राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः। ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी ॥ अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरः क्रमात्। स्वस्वस्थलेषु देवेषु स्थापितेष्वीदृशं भवेत्। कोणेषु पंचपंचैव चतुर्थैकपदाः सुराः। प्रागादिदिक्षुद्विपदाः पंच पंच यथाक्रमम् ॥ ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु द्विपदाः स्युः समीपगाः। हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयंतः पाकशासनः ॥ सूर्यः सत्यो भृशाकाशौ वायुः

Aho ! Shrutgyanam

पूषा च वै तथा । गृहक्षतः पितृपतिर्गंधर्वो भृंगराजकः ॥ मृगः पितृगणाधीशस्तथा दौवारिकाह्वयः । सुग्रीवः पुष्पदंतश्च जलाधीशो निशाचरः ॥ शोषः पापश्च रोगोहिर्मुख्यो भल्लाट एव च । सोमसर्पौ दित्यदिती द्वात्रिंशदमराः स्मृताः ॥ आपश्चैवापवत्सश्च जयो रुद्रस्तथैव च । मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्थौ तस्य समीपगाः ॥ प्राच्या द्व्यंतरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः । अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः ॥ मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् । आपवत्सोऽष्टमः पंचचत्वारिंशत्सुरोत्तमाः ॥ ज्ञात्वैवं स्थानमानानि ब्रह्मणा सहितान् न्यसेत् । वास्तुज्ञो वास्तुमंत्रेण गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥ प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्वनामभिः । शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद्धूपदीपफलैः सह ॥ अपूपैर्भूरिनैवेद्यैर्वाद्यैः सह समर्चयेत् । तांबूलं च ततो दद्याद्देवेभ्यश्च पृथक् पृथक् ॥ दत्वा पुष्पांजलिं कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम् । वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्यानिरत प्रभो ॥ मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा । इति प्रार्थ्य ततो दद्याद्दक्षिणामर्चकाय च ॥ विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा स्वयं भुंजीत बंधुभिः । एवं यः कुरुते सम्यग्वास्तुपूजां प्रयत्नतः ॥ आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धनं धान्यं लभेन्नरः । वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमंदिरम् ॥ रोगान्नानाविधान्क्लेशानश्नुते बहुसंकटम् ॥ इति वसिष्ठसंहितायां वास्तुशांतिः ॥ नारदादयः पंचांगशुद्धिमात्रयुक्ते पूर्वदिने एव वास्तुपूजामाहुः । विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजां बलिक्रियामिति तृतीयश्लोकार्धस्य टीका ॥

अथ लग्नशुद्धिं तिथिवारशुद्धिं चोपजातिकोत्तरार्धेनेंद्रवज्रया चाह—

त्रिकोणकेंद्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्ने त्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः ॥ ३ ॥
शुद्धांबुरंध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्कारिक्ताचरदर्शचैत्रे ॥ अग्रेऽबुपूर्णं कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम् ॥ ४ ॥

त्रिकोणेति ॥ शुद्धांबुरंध्र इति ॥ नवमपंचमप्रथमचतुर्थसप्तमदशमैकादशद्वितीयतृतीयस्थानानामन्यतमस्थानस्थितैः शुभैरुपलक्षिते तथा तृतीयषष्ठैकादशस्थानस्थैः पापग्रहैरुपलक्षिते च ॥ ३ ॥ तथांबु चतुर्थस्थानं रंध्रमष्टमस्थानं तस्मिन् शुद्धे सर्वग्रहरहिते अंबुरंध्रे यस्मिन् तादृशे लग्ने गृहं विशेत् । कीदृशे लग्ने जनुर्भमृत्यौ भं राशिर्लग्नं च जनुषि जन्मकाले भे जनुर्भे ताभ्यां मृत्युरष्टमभवनं जनुर्भमृत्युः विगतो जनुर्भमृत्युर्यस्मिन् स्वजन्मलग्नात् स्वजन्मराशेर्वाऽष्टमराशिः प्रवेशलग्ने नापेक्षित इत्यर्थः । पुनः कीदृशे लग्ने । व्यर्कारिक्ताचरदर्शचैत्रे अर्कारौ प्रसिद्धौ वारौ रिक्ताः ४, ९, १४ उपलक्षणत्वाद्दग्धतिथयोऽपि चरलग्नानि मेषकर्कतुलामकराख्यानि तदंशाश्च दर्शोऽमावास्या चैत्रमासः विगता अर्कादयो यस्मिन् । अर्कादयः प्रवेशदिने निषिद्धा इत्यर्थः । अग्र इति । गृहप्रवेशसमये जलपूर्णं कलशं स्वसंमुखं कृत्वा द्विजान्ब्राह्मणांश्चाग्रे कृत्वा वेश्म गृहं विशेत् । वसिष्ठः । कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान् पूज्यानग्रतः पूर्णकुंभम् । रम्यं हर्म्यं तोरणस्रग्वितानैः

Aho ! Shrutgyanam

स्त्रीभिः स्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेत्तदिति । अयं विधिः प्रवेशे साधारणः । कीदृशं वेश्म भकूटशुद्धं भकूटं षष्ठाष्टकादि उपलक्षणत्वाद्विवाहप्रकरणोक्तं वर्णो वश्यं तथा तारेत्यादिकं च तेनापि शुद्धम् । वसिष्ठः । राशिकूटादिकं सर्वं दंपत्योरिव चिंतयेदिति ॥ ४ ॥

अथ वामगतार्कज्ञानं पूर्वादिमुखगृहप्रवेशं चेंद्रवंशयाह–

वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के पंचभे प्राग्वदनादिमंदिरे ॥
पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो नंदादिके याम्यजलोत्तरानने ॥ ५ ॥

वामो रविरिति ॥ अष्टमपंचमद्वितीयैकादशस्थानेभ्यः पंचसु स्थानेषु स्थिते रवौ सति प्राग्वदनादिके मंदिरे प्रवेष्टव्ये गृहप्रवेशकर्तुर्वामो रविर्ज्ञेयः । यथा यस्मिँल्लग्ने गृहप्रवेशः कर्तुमिष्यते तस्मादष्टमं यत्स्थानं ततः पंचसु स्थानेष्वर्के सति पूर्वाभिमुखे गृहे प्रवेशकर्तुर्वामः सूर्यः स्यात् । तथा लग्नाद्यत्पंचमस्थानं ततः पंचसु स्थानेषु रवौ स्थिते दक्षिणाभिमुखे वामोऽर्कः । तथैव लग्नाद्यत् द्वितीयस्थानं ततः पंचसु स्थानेषु रवौ स्थिते पश्चिमाभिमुखे गृहे वामोऽर्कः । तथैव लग्नाद्यदेकादशस्थानं ततः पंचसु स्थानेषु सूर्ये स्थिते उत्तराभिमुखे गृहे प्रवेशकर्तुर्वामः सूर्य इत्यर्थः । उक्तं च । रंध्रात्पुत्राद्धनादायात्पंचस्वर्के स्थिते क्रमात् । पूर्वाशादिमुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यत इति । पूर्णातिथाविति । प्राग्वदने पूर्वाभिमुखे गृहे पूर्णातिथौ पंचम्यां दशम्यां पूर्णिमायां वा प्रवेशः नंदादिके तिथिगणे याम्यजलोत्तरानने गृहे प्रवेशः शुभः । यथा । दक्षिणाभिमुखे गेहे नंदायां प्रतिपदि षष्ठ्यामेकादश्यां वा प्रवेशः शुभः । जलं पश्चिमादिक् तद्दिङ्मुखे गृहे भद्रायां द्वितीयायां सप्तम्यां द्वादश्यां वा प्रवेशः शुभः । उत्तराभिमुखे गृहे जयायां तृतीयायामष्टम्यां त्रयोदश्यां वा प्रवेशः शुभः । गुरुः नंदायां दक्षिणद्वारं भद्रायां पश्चिमामुखं जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वतो विशेत् इति ॥ ५ ॥

अथ गृहप्रवेशे कलशवास्तुचक्रं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

वक्त्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुंभेऽग्निदाहः कृताः
प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे ॥
श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कंठे भवेत्सर्वदा ॥ ६ ॥

वक्त्रे भूरिति ॥ गृहप्रवेशसमय इति सर्वत्रापि संबध्यते । कुंभे कलशाकृतिवास्तौ रविभात् सूर्याक्रांतनक्षत्रात् ल्यब्लोपे पंचमी । रविभमारभ्य कलशस्य मुखे भूरेकं सूर्याक्रांतनक्षत्रमेव स्थाप्यम् तत्फलं गृहस्याग्निदाहः ततः सूर्यभात्कृताः अग्रिमाणि चत्वारि भानि प्राच्यां स्थाप्यानि फलमुद्वसनं जनवासशून्यं गृहं स्यात् ततः कृता यमगताः तदग्रिमाणि चत्वारि भानि दक्षिणे स्थाप्यानि फलं गृहपतेर्लाभः द्रव्यप्राप्तिः ततः कृताः पश्चिमे

Aho ! Shrutgyanam

तदग्रिमाणि चत्वारि भानि पश्चिमायां स्थाप्यानि फलं गृहपतेः श्रीप्राप्तिः ततो वेदा उत्तरे तदग्रिमाणि चत्वारि भानि उत्तरस्यां स्थाप्यानि फलं कलिः लोकैः सह गृहसंबंधी निरर्थको वादः झकटः स्यात् । ततो युगमितास्तदग्रिमाणि चत्वारि भानि गर्भे कलश-मध्ये स्थाप्यानि फलं विनाशो गर्भस्यैवेत्यर्थः । ततो रामास्तदग्रिमाणि त्रीणि भानि गुदे बुध्ने स्थाप्यानि फलं स्थैर्यं गृहपतेर्बहुकालं तत्र निवासः । ततोऽनलास्तदग्रिमाणि त्रीणि भानि कंठे स्थाप्यानि फलं स्थिरत्वं गृहपतेर्भवेत् । एवमभिहितानि सप्तविंशति भानि स्युः । ज्योतिःप्रकाशे भूर्वेदपंचकं त्रिस्त्रिः १,४,४,४,४,४,३,३ प्रवेशे कलशेऽर्कभात् । मृति-र्गतिर्धनं श्रीः स्याद्वैरं शुक् स्थिरता सुखमिति । अत्र कलशचक्रे शुभफलस्थाने याते सत्येव विहितनक्षत्राणां परिग्रहो युक्तस्तत्रापि यद्दिङ्मुखे प्रवेशे विधित्सिते तद्दिङ्मुखनक्षत्रपरिग्रहः । यथा पूर्वस्यां प्रवेशे विधित्सिते रोहिणी मृगो वा ग्राह्यः दक्षिणमुखग्रहप्रवेशे उत्तराफा-ल्गुनी चित्रे एवंपश्चिमाभिमुखे अनुराधोत्तराषाढे एवं उत्तराभिमुखे उत्तराभाद्रपदारेवत्यौ ग्राह्ये इति निष्कृष्टोऽर्थः । अत एवोक्तं वसिष्ठेन । यद्दिग्द्वारं मंदिरं तद्दिगृक्षैरुक्तर्क्षैः स्यात्सन्निवेशो न सर्वैरिति । तद्दिगृक्षैरिति उक्तर्क्षैरिति वानयोः सामानाधिकरण्येनान्वयः भिन्नवाक्ये तु चकारः कर्तव्यः स्यात् अतएव अर्कानिलेयादितिदस्रविष्णुऋक्षे प्रविष्टं नवमंदिरं यत् । अब्दत्रयात्तत्परहस्तमेति शेषेषु धिष्ण्येषु च मृत्युदं स्यादिति निषेधोऽप्युपपन्नो भवति ॥ ६ ॥

अथ गृहप्रकरणप्रबंधोपसंहारं सूचयन्प्रवेशोत्तरकालीनकर्तव्यविधिमुपजात्याह—

एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम् ॥
शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान् राजार्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः ॥ ७ ॥

इति श्रीदैवज्ञ० मुहूर्तचिंतामणौ० त्रयोदशं गृहप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

एवं सुलग्न इति ॥ एवं प्रागुक्तप्रकारेण विचारिते सुलग्ने शोभनगुणयुते स्थिरराश्यादिके राजा वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तं वितानानि सुवस्त्रमंडपाः पुष्पाणि स्वकालर्तुजानि माल्त्यादीनि श्रुतिघोषो वेदध्वनिश्चतैर्युक्तं उपलक्षणत्वात्तोरणाद्यनेकमांगल्यवस्तुसहितमेतादृशं स्वसत्ताकं गृहं प्रविश्य पश्चात् शिल्पज्ञान् गृहोत्थापकान् स्थपतिवर्धक्यादीन् दैवज्ञान् ज्योतिर्विदः विधिज्ञान् वास्तुपूजाभूतबलिगृहप्रवेशविधिज्ञान् पुरोहितप्रभृतीन् पौरान् नाग-रिकान् पंडितदीनानाथांधकृपणांश्च भूमिहिरण्यवस्त्रैर्यथाशक्त्या व्यस्तैः समस्तैर्वा उप-लक्षणत्वादश्वादिभिर्वा अर्चयेत्पूजयेत् । अत्र विशेषमाह वसिष्ठः । यद्वास्तुपूजारहितं त्वद-त्तबलिं त्वनाच्छन्नगृहं विरूपम् । कपाटहीनं न विशेद्यतस्तत्सर्वाऽपदामालयमेव तत्स्या-दिति । तस्मात् कपाटमुपरिष्टादाच्छादितं कृतवास्तुपूजं दत्तबलिमेव गृहं प्रविशेत् । प्रवेशो-

Aho ! Shrutgyanam

त्तरविधिमाह श्रीपतिः । ततो नृपो विप्रसुहृत्पुरोधसः शिल्पज्ञभूगोलविदश्च लिंगिनः । धनैश्च रत्नैः पशुभिः समर्चयन् सदांधदीनान्पुरवासिनस्तथेति ॥ ७ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितायां स्वकृतमुहूर्तचिंतामणिटीकायां प्रमिताक्षरायां गृहप्रवेशप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ ग्रंथसमाप्तौ पितामहवर्णनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

आसीद्धर्मपुरे षडंगनिगमाध्येतृद्विजैर्मंडिते ज्योतिर्वित्तिलकः फणींद्ररचिते भाष्ये कृतातिश्रमः ॥
तत्तज्जातकसंहितागणितकृन्मान्यो महाभूभुजां तर्कालंकृतिवेदवाक्यविलसद्बुद्धिः स चिंतामणिः ॥ १ ॥

आसीदिति ॥ धर्मपुरे नर्मदातीरग्रामविशेषे प्रसिद्धश्चिंतामणिरासीत् । किंभूते धर्मपुरे षडंगानि शिक्षादीनि तानि विद्यंते यस्य एतादृशो यो निगमो वेदस्तस्याध्येतारो ये द्विजा ब्राह्मणादयस्तैर्मंडिते भूषिते । कीदृशश्चिंतामणिः ज्योतिर्वित्सु तिलक इव ज्योतिर्वित्तिलकः ज्योतिर्विच्छ्रेष्ठ इत्यर्थः । पुनः कीदृशः फणींद्रः शेषनागः तद्रचिते भाष्ये महाभाष्ये कृतोऽतिश्रमोऽत्यभ्यासो येन । पुनः कीदृशश्चिंतामणिः तत्तज्जातकसंहितागणितकृत् तानि तानि स्वल्पबृहदादिभेदेनानेकविधजातकानि जातकशास्त्राणि संहिताः संहिताशास्त्राणि गणितानि गणितशास्त्राणि करोति तादृशः । पुनः कीदृशः महाभूभुजां मान्यः पूज्यः । पुनः कीदृशः तर्कालंकृतिवेदवाक्यविलसद्बुद्धिः तर्को न्यायशास्त्रं अलंकृतिः अलंकारशास्त्रम् वेदवाक्यं वेदवाक्यविचारप्रतिपादको ग्रंथो मीमांसाशास्त्रं वेदांतशास्त्रं च तेषु विलसतीति विलासयुक्ता बुद्धिर्यस्य सः ॥ १ ॥

अथ क्रमप्राप्तं तातवर्णनं तेनैव वृत्तेनाह—

ज्योतिर्विद्गणवंदितांघ्रिकमलस्तत्सूनुरासीत्कृती नाम्नाऽनंत इति प्रथामधिगतो भूमंडलाहस्करः ॥
यो रम्यां जनिपद्धतिं समकरोद्दुष्टाशयध्वंसिनीं टीकां चोत्तमकामधेनुगणितेऽकार्षीत्सतां प्रीतये ॥ २ ॥

ज्योतिर्विदिति ॥ तत्सूनुस्तस्य चिंतामणिदैवज्ञस्य सूनुः पुत्रोऽनंत इति नाम्ना प्रथां ख्यातिमधिगतः प्राप्त आसीत् । कीदृशः ज्योतिर्विद्गणवंदितांघ्रिकमलः ज्योतिर्विदां गणेन समूहेन वंदितं चरणकमलं यस्य सः । पुनः कीदृशः भूमंडलेऽहस्कर इव अध्यापनद्वारा प्रकाशक इत्यर्थः । पुनः कीदृशः कृती कुशलः ग्रंथकरणसमर्थ इति शेषः ग्रंथकर्तृत्वमेवोत्तरार्धेन प्रकाशयति यो रम्यामिति । जनिपद्धतिं जातकपद्धतिं दुष्टाशयध्वंसिनीं

Aho ! Shrutgyanam

ाः जन्मपद्धतिमार्गसंप्रदायानभिज्ञास्तेषामाशयमभिप्रायं ध्वंसयति इति दुष्टाशयध्वंसिनी करोत् । तथा । उत्तमे ब्रह्मपक्षार्यपक्षप्रतिपादके कामधेनुगणिते ग्रंथविशेषे टीकां च प्रीतयेऽकार्षीत् कृतवानित्यर्थः ॥ २ ॥

अथ स्वनामकथनपूर्वकं ग्रंथसमाप्तिं पृथ्वीछंदसाह—

तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकंठानुजो
गणेशपदपंकजं हृदि निधाय रामाभिधः ॥
गिरीशनगरे वरे भुजभुजेषुचंद्रे(१५२२)मिते
शाके विनिरमादिमं खलु मुहूर्तचिंतामणिम् ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीदैवज्ञरामविरचितमुहूर्तचिंतामणिः समाप्तः ॥

तदात्मज इति ॥ तस्यानंतस्यात्मजो रामाभिधो गिरीशनगरे वाराणस्यां मुहूर्त-तामणिं मुहूर्तचिंतामणिनामधेयं ग्रंथं भुजभुजेषुचंद्रे (१५२२) मिते शाके द्वाविंशत्य-कपंचदशशतमिते शाके विनिरमात् अकार्षीत् शेषं स्पष्टम् ॥ ३ ॥

इति श्रीदैवज्ञानंतसुतदैवज्ञरामविरचितायां स्वकृतमुहूर्तचिंतामणिटीकायां प्रमिताक्षरायां ंशावर्णनम् ॥ ॥ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ ॥ शुभंभवतु ॥ ॥

इदं पुस्तकं अन्यानि च संस्कृतपुस्तकानि मुम्बापुर्यां कालिकादेव्या राजमार्गे रामवा-ड्गके स्थले भगीरथात्मजहरिप्रसादस्य पुस्तकालये तथा कानपुरनगरे हनुमान्दासव्रज-भस्य पुस्तकालये यथायोग्यमौल्येन मिलिष्यंति ॥

Aho ! Shrutgyanam